'रघुवीर सहाय की काव्य चेतना और रचना शिल्प'

[इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी० फिल् उपाधि के लिये प्रस्तुत]

शोध-प्रबन्ध

निर्देशक

डा० मालती सिंह

प्रोफेसर, हिन्दी विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

शोधकर्ता

राजदेव दूबे

हिन्दी विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

हिन्दी-विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय

इलाहाबाद

सन् १९९७ ई०

विषयानुक्रम

शोध प्रबन्ध : रघुवीर सहाय की काव्यचेतना और रचनाशिल्प

आमुख

समकालीन एव साठोत्तर हिन्दी साहित्य मे गहरी अभिरूचि होने के कारण मैने "रघुवीर सहाय की काव्यचेतना और रचनाशिल्प" को अपने शोध का विषय चुना। आज के साहित्य मे ही आज की सभी **परिस्थितियाँ** चरितार्थ हो सकती है, चाहे वे सामाजिक हो या राजनीतिक, आर्थिक अथवा धार्मिक। नयी कविता एवं साठोत्तरी कविता, कहानी और उपन्यास के दौर में रघुवीर सहाय की रचनाओ की एक अलग पहचान है। जीवन के यथार्थ की सहज एव सीधी अभिव्यक्ति होने के कारण रघुवीर सहाय की रचनाओ मे मुझे विशेष रूचि रही है।

विषयवस्तु की दृष्टि से प्रस्तुत शोध प्रबन्ध पाँच अध्यायो मे विभक्त है।

अध्याय प्रथम– "रघुवीर सहाय तथा उनका काव्य–ससार" के अन्तर्गत, प्रयोगवाद और नयी कविता पर सक्षिप्त प्रकाश डालते हुए, रघुवीर सहाय की सृजन यात्रा तथा उनके सम्पूर्ण रचना– संसार की संक्षिप्त रूपरेखा प्रस्तुत करके, रघुवीर सहाय के काव्य–सग्रहों की कविताओं की सामान्य प्रवृत्तियो का विकासात्मक परिचय दिया गया है।

अध्याय द्वितीय– "राजनीतिक–चेतना" मे स्वतत्रता पूर्व एव स्वातन्त्र्योत्तर राजनीतिक परिदृश्य रेखाँकित करते हुए, रघुवीर सहाय की राजनीतिक चेतना पर गाँधीवाद, लोहियावादी–समाजवाद, साम्यवाद के प्रभाव का विवेचन प्रस्तुत है। तत्पश्चात् रघुवीर सहाय की राजनीतिक चेतना के विविध पक्षों पर विचार किया गया है। इस विवेचन में इस तथ्य को विशेष रूप मे उभारा गया है कि

रघुवीर सहाय भारतीय लोकतंत्र की दुर्गति लेकर सबसे अधिक क्षुब्ध थे। राजनीतिक स्थितियों के प्रति उनकी प्रतिबद्धता आपातकाल के समय और भी मुखरित हुई है। लोकतत्र पर प्रकाश डालते हुए, आपातकालीन मुखरता एव 1975 के बाद भारतीय राजनीतिक परिवेश को प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

अध्याय तृतीय– "सामाजिक चेतना और आर्थिक सन्दर्भ" के अन्तर्गत, सामाजिक वैषम्य, सामाजिक मूल्य चेतना का ह्रास, भारतीय औरतो तथा बच्चो की दुर्गति" पूँजीवाद का प्रसार, महानगरीय एव असहाय आदमी आदि विविध विन्दुओ का विवेचन प्रस्तुत है।

अध्याय चतुर्थ– "मानवीय मूल्य" मे मानवीय मूल्यो के ह्रास के प्रति चिन्ता, मनुष्यता से स्खलित आदमी का यथार्थ एव मानवीय भावो की स्थापना आदि पक्षो का विश्लेषण किया गया है।

अध्याय पंचम– "भाषा और रचना–शिल्प" का विवेचन है। इसके अन्तर्गत रघुवीर सहाय की भाषा को प्रभावित करने वाले घटको, नयी भाषा की खोज, सपाटबयानी, सघन एवं तुकात्मक गद्यात्मकता, वाक्य का महत्त्व, नाटकीयता एवं झटका देने की कला, व्यंग्यात्मक तेवर, बिम्ब और प्रतीक, भाषा की शाब्दिक संरचना शीर्षको से विषय वस्तु का विवेचन प्रस्तुत है। इसके अतिरिक्त छन्द, लयात्मकता एव संगीतात्मकता जैसे पहलुओ पर प्रकाश डाला गया है।

अन्त मे, "उपसंहार" मे शोध कार्य एव समग्र उपलब्धि पर विचार करने का प्रयास किया गया है।

इसके अतिरिक्त शोध से सम्बन्धित आधार पुस्तको, सहायक सन्दर्भ ग्रन्थो एव पत्र-पत्रिकाओ की सूची प्रस्तुत है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के सफलतापूर्वक सम्पन्न होने के लिए मै सर्वप्रथम अपने माता-पिता श्री राम चरित्र दुबे एवं श्रीमती हिरावती दुबे का चिर ऋणी हूँ, जिन्होंने मुझे निरन्तर प्रेरणा एव आर्शीवाद प्रदान कर प्रस्तुत शोध कार्य योग्य बनाया। तत्पश्चात् मै अपनी शोध-निर्देशिका डा0 मालती सिह, प्रो0 हिन्दी विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद का आजीवन आभारी रहूँगा, जिन्होने अपना बहुमूल्य समय निकालकर, शोध प्रबन्ध की बहुत सारी त्रुटियो को दूर करने का प्रयास करते हुए, अतिशय स्नेह एव प्रोत्साहन भी प्रदान किया है तथा समय-समय पर मेरा उचित मार्गदर्शन भी करती रही हैं।

तत्पश्चात मै अपने अग्रज श्री ब्रह्मदेव दुबे का भी आजीवन ऋणी हूँ, जिन्होंने अध्ययन के क्षेत्र मे तथा प्रस्तुत शोध प्रबन्ध को पूरा करने के लिए मुझे आर्थिक सहायता एव प्रोत्साहन दने की कृपा की है।

इसके अतिरिक्त मै अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय तथा अन्य गुरूजनो प्रो0 राजेन्द्र कुमार वर्मा, डा0 सत्यप्रकाश मिश्र, डा0 राजेन्द्र कुमार, डा0 रामकिशोर शर्मा, श्री दूधनाथ सिह, डा0 मीरा दीक्षित एव पूर्व गुरू श्री श्याम लाल का आभारी हूँ, जिन्होंने प्रस्तुत शोध के सम्पन्न होने में उचित सहयोग एव परामर्श दिया है।

तत्पश्चात् मै अपने श्वसुर श्री राम लोचन एव मित्रवर चन्द्र प्रकाश पाण्डेय के प्रति भी आभारी हूँ, जिन्होंने प्रस्तुत शोध के प्रति मुझे समुचित प्रेरणा एव सहयोग दिया है। इसके अतिरिक्त पत्नी शिवा दुबे का भी कृतज्ञ हूँ, जिन्होंने अपने दायित्वो से मुझे मुक्त रखा तथा इस कार्य को पूरा करने मे सहयोग दिया है।

मै सर पी0सी0 बनर्जी छात्रावास का भी आभारी हूँ, जहाँ रहकर मुझे ऐसा कार्य करने का सुअवसर प्राप्त हुआ। टाइपिस्ट **श्री राकेश कुमार शुक्ल** शुभम् फोटोकापियर्स मनमोहन पार्क, कटरा, इलाहाबाद का भी कृतज्ञ हूँ, जिन्होंने अपन अथक प्रयास के द्वारा प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के टकण का कार्य पूर्ण किया है।

तदोपरान्त, मै हिन्दी साहित्य सम्मेलन पुस्तकालय इलाहाबाद, इलाहाबाद विश्वविद्यालय पुस्तकालय इलाहाबाद, केन्द्रीय पुस्तकालय इलाहाबाद, केन्द्रीय पुस्तकालय दिल्ली विश्वविद्यालय दिल्ली, एवं केन्द्रीय पुस्तकालय जवाहर लाल नेहरू विश्वविधालय दिल्ली के कर्मचारियों का आभारी हूँ, जहाँ से मुझे अपने शोध प्रबन्ध के लिए प्रर्याप्त सामग्री के अध्ययन का सुअवसर प्राप्त हुआ।

अन्तत मै उन समस्त विद्वानों के प्रति कृतज्ञ हूँ, जिनकी उत्कृष्ट कृतियो का प्रयोग प्रस्तुत शोध– प्रबन्ध मे किया गया है। साथ ही उन समस्त व्यक्तियों एव मित्रो का भी हृदय से आभारी हूँ, जिन्होंने मुझे प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से इस शोध प्रबन्ध के लेखन एव टकण में सहयोग प्रदान किया है।

मानव सुलभ न्यूनताओ एव दुर्बलताओ के कारण, प्रस्तुत शोध प्रबन्ध मे भी त्रुटि का रह जाना स्वाभाविक है, जिसके लिए मै विद्वत समाज से क्षमा प्रार्थी हूँ।

राजदेव दुबे

अगस्त, सन् 1997 ई0

राजदेव दुबे
शोध छात्र (यू0जी0सी0)
(जे0आर0एफ0) हिन्दी विभाग,
इलाहाबाद विश्वविद्यालय,
इलाहाबाद।

अध्याय – प्रथम

"रघुवीर सहाय तथा उनका काव्य ससार"

अध्याय प्रथम

रघुवीर सहाय तथा उनका काव्य संसार

1 तार–सप्तक और प्रयोगवाद, 2 नयी कविता, 3 नयी कविता तथा रघुवीर सहाय, 4 रघुवीर सहाय की सृजन यात्रा,

5 काव्य ससार – क) सीढ़ियो पर धूप मे, ख) आत्महत्या के विरूद्ध ग) हँसो–हँसो जल्दी हँसो, घ) लोग भूल गये है, ड) कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ, च) एक समय था।

सचमुच दो महायुद्धो के बीच की स्वच्छन्दतावाद की कविता को सामान्यत छायावाद के नाम से अभिहित किया गया है। सामान्य तोर पर 1918 से लेकर 1938 तक का समय छायावाद के नाम से जाना जाता है, लेकिन छायावाद इसके पहले ही आरम्भ हो गया था। सत्याग्रह की असफलता और जीवनयापन की कठिनाइयो के फलस्वरूप उत्पन्न निराशा तथा पलायन की प्रवृत्ति ने छायावाद को जन्म दिया। व्यक्तिवाद की प्रधानता, प्रकृति-चित्रण, नारी सोन्दर्य वेदना और निराशा, स्वच्छन्तावाद एव रहस्यवाद आदि इसकी प्रमुख विशेषताएँ रही है। लेकिन कल्पना की अति ने छायावाद को हमारे जीवन से दूर हटा हटा दिया, और वही इसके पतन का कारण भी बना।

आगे चलकर काव्य की स्थिरता मे पतन आरम्भ हो जाता है। छायावाद की प्रतिक्रिया स्वरूप प्रगतिवाद का उदय हुआ। निश्चय ही जो विचारधारा राजनीतिक क्षेत्र मे साम्यवाद, सामाजिक क्षेत्र मे समाजवाद, और दर्शन के क्षेत्र मे द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद है, वही साहित्यिक क्षेत्र मे प्रगतिवाद के नाम से जानी जाती है- दूसरे शब्दो मे मार्क्सवादी या साम्यवादी दृष्टिकोण के अनुसार निर्मित काव्यधारा प्रगतिवाद है। उस समय यह देखा गया कि छायावाद तथा रहस्यवाद के रूप मे कवि लोग जीवन की कठोर भूमि से भाग चुके थे, उन्हे न राष्ट्र की चिन्ता थी और न दीन-दुखियो की। उन्हे वास्तविक जीवन मे निराशा ही निराशा दिखती थी। मार्क्सवाद का प्रभाव साहित्य पर भी पड रहा था। फलत गद्य साहित्य की भाँति पद्य साहित्य मे भी प्रगतिवाद ने अपने पाँव पसारे और कवि लोग रहस्यमय आकाश से पृथ्वी पर लोट आये और शोषितो तथा अत्याचार पीडितो का चित्रण हेय को गेय कहने लगे। वेदना एव निराशा, क्रान्ति की भावना मानवतावाद, नारी चित्रण, सामाजिक जीवन का चित्रण आदि इसकी प्रमुख विशेषताए है।

लेकिन प्रगतिवादी कविता भी अपने मे एकागीपन लिए हुए थी, फेशन और फरमायश के लिए लिखी गयी प्रगतिवादी कविताए उत्कृष्ट साहित्य की कोटि मे नही आ सकी। सामाजिकता की प्रधानता होते हुए भी प्रगतिवाद जीवन के केवल भौतिक पक्ष का ही अभ्युत्थान करने की कोशिश किया जिसके कारण इसकी नीव कमजोर पड गयी।

1 **तारसप्तक और प्रयोगवाद**

प्रगतिवाद के ही समानान्तर हिन्दी कविता मे व्यक्तिवाद की परिणति घोर अहवादी, स्वार्थ प्रेरित एव असन्तुलित रूप मे होने लगी। कविता की इस विद्रूप प्रवृत्ति का अभी तक अन्तिम रूप से नामकरण नही हो पाया।

सन् 1943 ई0 मे स0 ही वात्सायन अज्ञेय के सम्पादकत्व मे "तार सप्तक" का प्रकाशन आरम्भ हुआ। इस कृति के नाम से ही इस बात का पता चलता है कि सात (7) सख्या का प्रयोग किसी उद्देश्य विशेष को लेकर हुआ है। गजानन माधव मुक्तिबोध, नेमिचन्द्र जैन, भारत भूषण अग्रवाल, प्रभाकर माचवे, गिरिजाकुमार माथुर, रामविलास शर्मा एव अज्ञेय इन सात कवियो की यह प्रमुख देन है। "तार-सप्तक" का प्रकाशन भले ही 1943 ई0 मे हुआ, लेकिन उसमे सकलित कविताए उस युग की उपज है, जब देश मे छिडा स्वाधीनता सघर्ष एक निर्णायक दौर मे प्रवेश कर चुका था। इसमे समाहित आशावादिता, सामूहिक और व्यक्तिगत निराशाओ, पीडाओ को काफी सीमा तक विगलित कर रही थी, साथ ही साथ एक नये प्रकाश और सौन्दर्य के रूप को उभार रही थी। अज्ञेय सम्पादन एव सकलनकर्ता थे।

"तार–सप्तक" के सम्पादकीय वक्तव्य मे अज्ञेय ने कहा है कि– "सात कवि एक दूसरे से परिचित है, लेकिन, इसका तात्पर्य यह नही है कि वे कविता के किसी एक "स्कूल" के कवि है, या कि साहित्य जगत के किसी गुट अथवा दल के रहस्य या समर्थक है, बल्कि उनके तो एकत्र होने का कारण ही यही है कि वे किसी एक स्कूल के नही है, किसी मजिल प पहुँचे हुए नही है, अभी राही है , –राही नही, राहो के अन्वेषी"---[1]

इन सातो कवियो मे मतेक्य नही है। जीवन, समाज, धर्म, राजनीति, काव्य–वस्तु, भाषा–शेली, छन्द और तुक के बारे मे उनकी अलग–अलग राय है।

कवि की जिम्मेदारियो से सम्बन्धित प्रत्येक विषय मे उनका आपस मे मतभेद है। यह भेद इस सीमा तक है कि जगत के ऐसे सर्वमान्य और स्वयसिद्व मोलिक सत्यो को भी वे समानरूप से स्वीकार नही करते-- जैसे लोकतत्र की आवश्यकता, उद्योगो का समाजीकरण, यात्रिक युद्ध की उपयोगिता, वनस्पति घी की बुराई, अथवा कानन बाला अथवा सहगल के गानो की उत्कृष्टता इत्यादि, वे सभी कवि परस्पर एक दूसरे पर, एक दूसरे की रूचियो, कृतियो और आशाओ, विश्वासो पर, एक दूसरे के मित्रो ओर कुत्तो पर भी हँसते है। "तार–सप्तक" किसी गुट का प्रकाशन नही है, क्योकि सग्रहीत सात कवियो के साढे सात अलग–अलग गुट है, उनके साढे सात व्यक्तित्व । यही कारण है कि ऐसा बहुत कम है जो निरपवाद रूप से सभी कवियो के बारे मे कहा जा सके। ये सभी मन के इतने भिन्न है कि सबको किसी एक सूत्र मे गूँथने का प्रयास व्यर्थ ही होगा। हिन्दी कविता के इतिहास मे "तार–सप्तक" कई मायनो मे एक अविस्मरणीय

---

1 दूसरा सप्तक -- स0 अज्ञेय, 1951 पृ0स0 5

घटना है। प्रगतिवाद के दोर मे यह मान लिया गया था कि कविता का अन्तिम सत्य पा लिया गया है और अब केवल उसी की पुनरावृत्ति करना है। लेकिन "तार-सप्तक" ने कवि को सतत अन्वेषी और प्रगतिशील कह आगे खीचता रहा -

"आत्मवत् हो जाय
ऐसे जिस मनस्वी की मनीषा
वह हमारा मित्र है-
माता-पिता-पत्नी सुहृद पीछे रहे है छूट
उन सबके अकेले अग्र मे जो चल रहा है
ज्वलत तारक सा
वही तो आत्मा का मित्र है"---[1]

"तार-सप्तक" हिन्दी कविता की अविस्मरणीय घटना इसलिए है कि यह अविस्मरणीय होना, कविता मे उपस्थित होने वाले बुनियादी बदलाव, के कारण ही नही है, बल्कि उसकी सामूहिक योजना, सकलन, प्रकाशन, और प्रभाव के कारण भी है। मुख्य बात यह कि यह वास्तविक और तीखे अर्थो मे एक युगान्तकारी परिवर्तन का सचेत और सटीक उदाहरण है।

दूर से जब हम हिन्दी साहित्य के इतिहास को देखते है तो हर मोड पर यह व्यवस्था और सामूहिकता स्पष्ट नजर आती है। इसमे चाहे उलटवासियो की बात हो, चाहे नाथ सिद्धो की बात हो, या छन्द प्रबन्ध मे काव्य रचने वाले रासो कवि, चाहे भक्ति थे चारो मार्गो को अपनी-अपनी प्रतिभा से विकसित

---

1 तार-सप्तक, प्रकाशन- 1943 स0 अज्ञेय सकलित कविता, गजानन माधव मुक्तिबोध आत्मा के मित्र मेरे पृ0स0 11, भारतीय ज्ञानपीठ काशी।

करने वाले भक्त कवि हो, चाहे रीति–कालीन श्रृंगारिक कवि हो। सभी एक सामूहिक योजना का हिस्सा दिखाई पडते है। भारतेन्दु मण्डल, द्विवेदी युग, छायावाद, प्रगतिवाद, वगैरह के रूप मे आधुनिक हिन्दी कविता की जो क्रमबद्व व्यवस्था इतिहासकारो और समीक्षको ने तय की है, या उसे स्वीकृत किया है, उससे यह बात बिल्कुल प्रमाणित हो जाती है कि हिन्दी कविता आदि से अन्त तक सामूहिक प्रयासो की योजनाबद्व रचना रही है।

"तार–सप्तक" अपनी योजना से लेकर कविता की बुनियादी प्रतिपत्तियो के आधार पर एक सचेत सहयोगी प्रयास है। यही सहयोगी प्रयास उसे एक अनहोनी घटना का रूप देता है और इसी प्रयास की सफलता उसे अविस्मरणीय बनाती है। मुक्तिबोध, नेमिचन्द्र जैन आदि सात कवियो का मण्डल एक नयी प्रणाली खोजने का प्रयास करता रहा है।

अभिव्यक्ति की ऐसी प्रणाली जिसके द्वारा अपनी बात को पाठको तक आसानी से पहुँचायी जा सके। "तार सप्तक" के अधिकाश सभी कवियो मे "नये के प्रति" एक निष्ठा है, उत्सुकता है, चाहे वह विषय वस्तु हो अथवा अभिव्यक्ति का प्रयोग। लगभग हर काल मे प्रयोगशीलता प्राप्त होती है, लेकिन अज्ञेय ने उसे सर्वथा नये परिप्रेक्ष्य मे परखा है और भविष्य की नयी कविता के एक नये मानदण्ड के रूप मे उभारने का अथक प्रयास किया है।

"तार–सप्तक" के प्रकाशन का विरोध और स्वागत दोनो हुआ। जो शास्त्रीय समीक्षा और काव्य रसास्वादन के पक्षपाती थे। उन्होंने "तार–सप्तक" से ऐसे–ऐसे काव्य–खण्ड उदाहरण के रूप मे खोजने का प्रयास किये जो रूखेपन, भदेसपन, अनगढता और रसहीनता से युक्त थे। रामधारी सिह "दिनकर" ने तार–सप्तक की अपनी समीक्षा मे उसके महत्तव को स्वीकार किया था लेकिन उसकी बहुतेरी आलोचना भी की थी।

सन् 1951 ई0 मे "दूसरा–सप्तक" प्रकाशित हुआ। अज्ञेय जी सपादन एव सकलनकर्ता थे। भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन काशी द्वा यह भाग भी प्रकाशित हुआ।

भवानी प्रसाद मिश्र, शकुन्त माथुर, हरिनारायण व्यास, शमशेर बहादुर सिह, नरेश मेहता, रघुवीर सहाय, धर्मवीर भारती आदि सात कवियो का इस अक मे उल्लेखनीय योगदान रहा । यह देखा गया कि "तार–सप्तक" के प्रकाशन से अनेकानेक विवाद उत्पन्न हुए , जिसके कारण "दूसरा सप्तक" की भूमिका मे अज्ञेय ने बहुत सारे विवादो का निपटारा करने का प्रयास किया।

"दूसरा–सप्तक" के छठे प्रमुख कवि के रूप मे रघुवीर सहाय आते है। "दूसरा–सप्तक" के प्रकाशन के साथ ही रघुवीर सहाय की बहुत सारी कविताए प्रकाशित हुई।

अपनी काव्य यात्रा मे इन्होने बच्चन और माथुर को याद किया है। अज्ञेय और शमशेर बहादुर सिह की रचनाओ से भी सहाय ने बहुत कुछ सीखा है। वे सर्वत्र सामाजिक यथार्थ तक पहुँचने के लिए वैज्ञानिक तरीका अपनाते है। यह उनकी मार्क्सवादी चेतना है।

की बहुत

वे शमशेर बहादुर सिंह के इस वक्तव्य को स्वीकार करते है कि–"जिदगी में तीन चीजो/ बडी जरूरत है। आक्सीजन, मार्क्सवाद ओर अपनी वह शक्ल जो हम जनता मे देखते है"---[1]

---

1 दूसरा सप्तक की भूमिका स0 अज्ञेय 1951 भातीय ज्ञानपीठ काशी, रघुवीर सहाय का वक्तव्य , पृ0 138

"बसन्त" पहला पानी, प्रभाती, याचना, गजल, भला, सशय, कोशिश, अनिश्चय, लापरवाही, समझौता, एकोऽहं बहुस्याम, मुँह-अँधेरे, सायकाल, आदि (14) चोदह कविताए प्रकाशित हुई, जो कि रघुवीर सहाय की बिल्कुल आरम्भिक कविताए मानी जाती है। सहाय की ये कविताए प्रकृति की कविताए है।

> "वन की रानी हरियाली-सा भोला अन्तर
> सरसो के फूलो सी जिसकी खिली जवानी,
> पकी फसल सा गरूआ गदराया जिसका तन,
> अपने प्रिय का आता देख लजायी जाती,
> गरम गुलाबी शरमाहट सा हलका जाडा
> स्निग्ध गेहुए गालो पर कानो तक चढती लाली जेसा
> फेल रहा है।" ---[1]

जीवन के जीते-जागते यथार्थ का सहज चित्रण रघुवीर सहाय की "दूसरा-सप्तक" की कविताओ मे प्राप्त होता है। अपनी इन कविताओ मे जीवनोपयोगी विशेषताओ को प्रकट करते हुए सच्चे, सामाजिक यथार्थ के प्रति अपना लगाव व्यक्त करते है। सामाजिक विषमता एव अन्याय का वे आरम्भ से ही विरोध करते रहे। "दूसरा-सप्तक" की सहाय की ये कविताए, रोमाण्टिक भावभूमि को तेयार करती है, लेकिन बदलते परिवेश को यथार्थ और जीवनानुभय की बहुत सारी गेर-रोमाण्टिक दृष्टि भी दिखाई देती है। प्रकृति उनके लिए पलायन की शरण-स्थली नही, बल्कि उनके रोजमर्रा के यथार्य जीवन मे हिस्सा लेती हुई, तनाव मुक्ति तथा मानवीय सवदेना को जीवित रखने का कारण बनी है।

---

1 दूसरा सप्तक "स0 अज्ञेय, भारतीय ज्ञानपीठ काशी - 1951 पृ0- 141

"तुम अप्रस्तुत ही रहोगे क्या मरण पर्यन्त ?
जब निकट होगा तुम्हारा बिना बुलाया अन्त
आ रहा होगा विगत सुस्पष्ट तुमको याद,
मन तुम्हारा स्वस्थ होगा बहुत दिनो के बाद।"---[1]

"दूसरा सप्तक" की रघुवीर सहाय की कविताए प्रयोगवादी एव नयी कविता की मौलिकताओ को समेटकर उनके अन्य सग्रहो के लिए एक सशक्त मार्ग प्रस्तुत करती है।

सन् 1959 ई0 मे "तार-सप्तक" का तीसरा भाग भी भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन द्वारा प्रकाशित हुआ। अज्ञेय जी ही इस भाग के भी सपादन एव सकलनकर्ता थे। प्रयाग नारायण त्रिपाठी, कीर्ति चोधरी, मदन वात्सायन, केदारनाथ सिह, कुँवर नारायण, विजय देव नारायण साही, सर्वेश्वर, दयाल सक्सेना, इन सात प्रमुख कवियो की देन "तीसरा सप्तक" है। अज्ञेय जी के मतानुसार "तीसरा-सप्तक" के कवि रचनात्मक स्तर पर"प्रौढि" प्राप्तकर चुके थे।

सन् 1979 ई0 में"तार सप्तक" का चौथा भाग भी प्रकाशित हो चुका था। अवधेश कुमार, राजकुमार कुम्भज, स्वदेश भारती, नन्दकिशोर आचार्य, समुन राजे, श्रीराम वर्मा, राजेन्द्र किशोर आदि सात कवियो के सक्रिय सहयोग से यह सप्तक अस्तित्व मे आया। इस सकलन के सातो कवियो कवियो ने भी अन्य सप्तको के कवियो की तरह एक नवीन शैली, बिम्ब-विधान एवं नये प्रयोगो की तलाश करते हुए "नयी कविता के मैदान मे अपने को उतारने मे सफल होते है।

---

1 दूसरा सप्तक स0 अज्ञेय भारतीय ज्ञान पीठ काशी कविता सशय, पृ0 148

"तार–सप्तक" कविता की अपूर्ण आकाक्षा को पूरा करने मे **काफी सफल** हुआ। इसमे जो सुख–दु ख, हर्ष–विषाद, सघर्ष–पराजय, घुटन–टूटन आह्लाद है, वह सब कवि का अपना सर्वप्रथम है, किसी और का बाद मे। **यह भी** निश्चित है कि "तार–सप्तक" आज के युग मे केवल एक सुदूर की घटना ही मालूम पडती है, जो प्रत्यय और पद "तार सप्तक" के कवियो ने गढने की कोशिश की, वे सब आगे चलकर बहुत आधे–अधूरे ही मालूप पडे। यही कारण है कि "तार–सप्तक" को किन्ही अर्थो मे एक प्रस्थान बिन्दु मानकर हम आज तक की कविता का एक लेखा–जोखा तो कर सकते है, लेकिन तार–सप्तक को साहित्य, इतिहास की एक घटना मानना ही उचित है। "तार सप्तक" के कवियो की भाषा–शैली एव प्रयोगो को बहुत महत्वपूर्ण न मानने पर भी इतना अवश्य मानना होगा कि तार–सप्तक की नीव पर ही "प्रयोगवाद' एव नयी कविता का भव्य भवन निर्मित हुआ। "तार–सप्तक" के द्वारा प्रयोगवाद और नयी कविता को क्रमश अस्तित्व मे आने का सुअवसर प्राप्त हुआ।

प्रयोगवाद

हिन्दी कविता मे छायावाद के बाद काव्य की स्थिरता मे कुछ पतन आरम्भ हो जाता है। छायावाद की प्रतिक्रिया स्वरूप प्रगतिवाद का उदय हुआ, लेकिन इसी के साथ ही कुछ इस प्रकार की रचनाए भी उसी समय रची गयी, जिन्हे आगे चलकर (1943) के बाद प्रयोगवादी रचनाओ के नाम से जाना जाने लगा। वास्तव मे प्रयोगवाद शब्द का प्रचलन "अज्ञेय" द्वारा सम्पादित "तार–सप्तक" (1943) के बाद ही हुआ, और प्रयोगवाद का नामकरण "नन्द दुलारे बाजपेयी" ने किया।

"तार–सप्तक" और उसके आगे की रचनाओ को प्रयोगवादी रचनाए इसीलिए कहा गया कि उक्त रचनाओ की व्याख्या और पक्ष समर्थन करते हुए "अज्ञेय" ने बार–बार प्रयोग शब्द प्रयुक्त किया था। इन नयी रचनाओ के शिल्प की विशेषता को लक्ष्य करके उन्होंने कहा है कि–

"प्रयोग सभी कालो के कवियो ने किया है। यद्यपि किसी एक काल मे किसी विशेष दशा मे प्रयोग करने की प्रवृत्ति स्वाभाविक ही है। किन्तु कवि क्रमश अनुभव करता आया है कि जिन क्षेत्रो मे प्रयोग हुए है, उनसे आगे बढकर अब उन क्षेत्रो का अन्वेषण करना चाहिए जिन्हे अभी छुआ नही गया है या अभेद्य मान लिया गया है"---[1]

यह निश्चित है कि "अज्ञेय" ने "प्रयोगवाद" शब्द का प्रयोग न करके केवल "प्रयोग" शब्द ही प्रयुक्त किया है। लेकिन उनकी रचनाओ के लिए, जिसमे सर्वथा नये-नये प्रयोगो के लिए पूर्ण जगह है, और जिनके लिए "प्रयोग" शब्द का बडे आग्रह के साथ बार-बार प्रयोग हुआ है, प्रयोगवादी रचनाए कहना किसी भी प्रकार से असगत नही कहा जा सकता। पाश्चात्य साहित्यिक चिन्तन धारा ने हमारे अन्दर परखने और देखने की जो- प्रवृत्ति विकसित की है, उसकी प्रेरणा से प्रयोग-प्रधान रचनाओ को "प्रयोगवाद" कहा गया। आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी और डा0 नगेन्द्र ने भी प्रयोग प्रधान रचनाओ को प्रयोगवाद कहा। हिन्दी मे प्रयोग शब्द की प्रेरणा भी पाश्चात्य साहित्य से प्राप्त हुई है। टी0एस0इलियट ने इस शब्द के लिए"एक्सपैरीमेन्टेशन" शब्द प्रयुक्त किया है। प्रयोगवाद और नयी कविता के अन्तर्गत आने वाले कवि मूल रूप से टी0एस0 इलियट औ ग्रीट्स आदि से प्रेरित है। अज्ञेय ने "तार-सप्तक" मे बार-बार "प्रयोग" शब्द का प्रयोग किया है जो "एक्सपेरिमेटेशन का समानार्थक है।

आरम्भ मे "प्रयोगवाद" नाम लेकर विवाद था, लेकिन अब कोई विवाद नही है। यह अवश्य है कि आरम्भ मे प्रतीकवाद, प्रपद्यवाद, नकेनवाद जैसे नाम भी प्रयोगवाद के समानान्तर प्रचलित हो गये थे। नलिन विलोचन शर्मा, केसरी कुमार तथा नरेश ने अपने नाम के प्रथम अक्षर पर इस काव्य धारा को "नकेनवाद" नाम दिया।

---

1 तार-सप्तक- स0 अज्ञेय, पृ0स0 75

डा0 गणपति चन्द्र गुप्त प्रयोगवाद, प्रपद्यवाद तथा नयी कविता इन तीनो नामो को इस काव्य धारा के विकास की तीन अवस्थाए स्वीकार की है। उनकी यही मान्यता रही है कि विल्कुल प्रारम्भ मे जब कवियो का दृष्टिकोण एव लक्ष्य स्पष्ट नही था, नूतनता की खोज के लिए केवल प्रयोग की घोषणा की गयी थी, तो इसे "प्रयोगवाद" के नाम से अभिहित किया गया और इसी आन्दोलन के कुछ लोगो ने "स्व0 नलिन विलोचन शर्मा" के नेतृत्व मे प्रयोग को अपना साध्य स्वीकार करते हुए अपनी "कविताओं" के लिए "प्रपद्यवाद" का प्रयोग किया। यही पर दूसरी तरफ डा0 जगदीश गुप्ता लक्ष्मीकान्त वर्मा और रामस्वरूप चतुर्वेदी ने इसे अधिक व्यापक क्षेत्र प्रदान करते हुए "नयी कविता" नाम का प्रचार किया।

वास्तव मे जिस विचारधारा को "प्रयोगवाद" के नाम से अभिहित किया गया है, वह प्रयोग के यौगिक तथा विस्तृत अर्थ से सम्बद्ध न होकर एक विशेष धारा की कविता के लिए रूढ़ हो गया है और छायावाद की तरह ही चल पडने के कारण ग्रहण किया गया है। उस समय की कविताए विभिन्न प्रयोगो एव नयी शैली को लेकर लिखी गयी है।

"प्रयोगवादी" कविता के विषय मे दो विचारधाराए प्रचलित है, कुछ विद्वानो का यह मानना है कि प्रयोगवादी कविता का मूल उद्देश्य उस मध्यमवर्ग की अनुभूतियो का चित्रण है, जो दूसरे महायुद्ध के कारण अत्यन्त दयनीय स्थिति मे थी। सामाजिक तथा आर्थिक सभी दृष्टियो से उसकी दशा बदतर थी। "प्रयोगवादी कविता" ऐसी ही अवरूद्ध परिस्थिति से घिरे हुए समाज की देन है। लेकिन ऐसी कविता और उसका कलाकार उक्त स्वभाव के प्रति विद्रोह तथा असतोष की भावना को लेकर नही आया, बल्कि युद्ध मे पराजित योद्धा की भाँति समर्पण का सहारा लेकर चला है। वह केवल अपनी ही वैयक्तिक अनुभूतियो और कुण्ठाओ का चित्रण प्रस्तुत करता रहा है।

"तार-सप्तक" और प्रतीक पत्रिका को देखने से यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि इनमे सग्रहीत कवियो के अनुभव का क्षेत्र, दृष्टिकोंण और कथन एक जैसे नही है। कहने का तात्पर्य यह है कि कुछ तो ऐसे है जो कि विचारो से समाजवादी है और अपने सस्कारो से व्यक्तिवादी- जैसे शमशेर बहादुर सिह, नरेश मेहता और नेमिचन्द्र जैन। लेकिन कुछ ऐसे है जो विचारो और अपनी क्रियाओ दोनो से समाजवादी है - जैसे- राम विलास शर्मा और गजानन माधव मुक्तिबोध ।

"आत्मवत् हो जाय
ऐसी जिस मनस्वी की मनीषा
वह हमारा मित्र है
माता-पिता पत्नी-सुहृद-पीछे रहे है छूट
उन सबके अकेले अग्र मे जो चल रहा है
ज्वलत तारक सा
वही तो आत्मा का मित्र है
मेरे हृदय का चित्र है"---[1]

कुछ प्रयोगवादी कवियो का दृष्टिकोण ऐसा है, जो प्रगतिशील कविता के द्वारा व्यक्त होते हुए जीवन मूल्यो और सामाजिक प्रश्नो को असत्य या सत्याभास मानकर, अपने व्यक्तिगत जीवन मे तडपने वाली गहरी सवेदनाओ को ही चित्रित करना चाहते है। निश्चय ही ये सभी मध्यम वर्ग के है। जिन कवियो ने समाजवादी विश्वासो को अपने सस्कारो मे ढालकर कविताए लिखी है, वे सचमुच जनवादी कवि है। लेकिन जो ऐसा करने मे असमर्थ रहे है, वे अपने व्यक्तिगत सुख-दु खो की सवेदनाओ को ही अपने काव्य का सत्य मानकर उन्हे नये-नये माध्यमो द्वारा व्यक्त करने की कोशिश की है। प्रयोगवाद के आलोचको ने प्रयोगवाद

---

1 तार-सप्तक - स0 अज्ञेय - 1943 भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन काशी
सकलित कविता- मुक्तिबोध पृ0स0 9

की चर्चा करते समय मुख्य रूप से इन्ही कवियो को ध्यान मे रखा है, क्योकि समाजवादी विश्वासो वाले कवि प्रगतिशील कविता के ही क्षेत्र के कवि स्वीकार किये जाते है।

दूसरी तरफ कुछ विद्वानो की ऐसी भी धारणा है कि प्रयोगवादी कविता का उद्देश्य कलाकारो तथा पाठको को प्रगतिवाद के आकर्षण से दूर हटाना है, जिस तरह प्रथम महायुद्ध के उपरान्त यूरोप के इग्लैण्ड, जर्मनी, फ्रास आदि देशो मे साम्यवाद की क्रान्तिकारी विचारधारा की तरफ से जनता का ध्यान हटाने के लिए वहाँ के आभिजात्य वर्ग के कलाकारो ने नवीन काव्य प्रणाली का जन्म दिया था और इसके जन्मदाता टी0एस0 इलियट है उसी प्रकार भारत मे भी कुछ अभिजात्य वर्ग के कलाकारो ने प्रयोगवाद जैसी नवीन प्रणाली का जन्म दिया जो बाद मे चलकर नयी कविता का रूप धारण कर लिया।

कुछ साहित्यकारो ने "प्रयोगवाद" और "नयी कविता" को भिन्न-भिन्न माना है। लेकिन वास्तविक तौर पर यदि देखा जाय तो ये दोनो ही एक ही काव्यधारा के विकास की दो अवस्थाए है। सन् 1943 से 1953 तक कविता मे जो नवीन प्रयोग हुए "नयी कविता" उन्ही का परिणाम है। प्रयोगवाद उस कविता धारा की आरम्भिक अवस्था है और नयी कविता उसकी विकसित अवस्था है। प्रयोगवाद के जो उन्नायक है, वे ही नयी कविता के कर्णधार है।

वास्तव मे सन् 1943 से 1953 तक का समय "प्रयोगकाल (प्रयोगवाद), 1953 के बाद का समय "नयी कविता" के नाम से जाना जाता है। अज्ञेय, गजानन माधव मुक्तिबोध, प्रभाकर माचवे, धर्मवीर भारती, आदि प्रमुख प्रयोगवादी कवि है।

2 नयी कविता

"नयी कविता" नामकरण का श्रेय अज्ञेय को है। "नयी कविता" का विधिवत आरम्भ "डा0 जगदीश गुप्त" के प्रथम एव डा0 रामस्वरूप चतुर्वेदी के सयुक्त सम्पादकत्व में प्रकाशित "नयी कविता" पत्रिका सन् 1954 से होता है। इसके पूर्व श्री लक्ष्मीकान्त वर्मा और डा0 रामस्वरूप चतुर्वेदी के सम्मिलित सम्पादकत्व मे "नये-पत्ते" का प्रकाशन सन् 1953 मे हो चुका थो। सन् 1955 ई0 मे डा0 धर्मवीर भारती और लक्ष्मीकान्त वर्मा के सहयोग से "निकष" पत्रिका का आरम्भ हो गया था। गिरिजा कुमार माथुर रचित "नयी कविता सीमाएं और संभावनाए" नामक आलोचनात्मक पुस्तक का प्रकाशन हुआ। गजानन माधव मुक्तिबोध- "नयी कविता का आत्म सघर्ष तथा अन्य निबन्ध" नामक पुस्तक की रचना की। परिणामस्वरूप यह सर्वस्वीकृत हुआ कि नयी कविता की काव्य यात्रा का प्रारम्भ एक विशेष स्थान से न होकर चतुर्दिक हुआ।

"डा0 जगदीश गुप्त" "नयी कविता" सकलन के माध्यम से "नयी-कविता" के अग्रसारक के रूप मे अभी भी रचना तत्पर है। डा0 लक्ष्मीकान्त वर्मा ने "नयी कविता के प्रतिमान" निश्चित किये। पुन डा0 "लक्ष्मीकान्त" वर्मा ने अपनी समीक्षा पुस्तक "नये प्रतिमान पुराने निकष" मे ताजी कविता की वकालत की है। नयी कविता के लिए "डा0 जगदीश गुप्त" और "डा0 रामस्वरूप चतुर्वेदी" का योगदान सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। इन विद्वान द्वय ने अपनी विद्वतापूर्ण समीक्षाओ द्वारा नयी कविता के विरोधियो को उचित उत्तर दिया। अपने सतुलित और नवीन विचारो द्वारा नयी-कविता के साथ उठने वाली नकली आन्दोलनो की भीड को तितर-बितर किया। वस्तुत नयी कविता ने प्रयोगवाद को बिखरने से बचाया। अब नयी कविता को लगभग पूर्ण प्रतिष्ठा प्राप्त है।

"पाँचवे दशक" के जो प्रयोगवादी कवि "राहो के अन्वेषी" थे, छठे दशक तक आते–आते उन्हे एक राह मिल गयी थी। कविता का यह क्रम जारी रहा। पुन 1960 के बाद जो कविताए लिखी गयी, उन्हे साठोत्तरी कविता एव वर्तमान मे जिन कविताओ का सृजन हो रहा है, उन्हे "समकालीन" और "आधुनिक कविता" के नाम से अभिहित किया जा रहा है।

आज की कविता मे आम आदमी के लिए आग्रह है। उसको समझने की चेष्टा है और उसकी जिन्दगी मे परिवर्तन लाने की प्रबल इच्छा है। आज की कविता मे आम आदमी केवल व्यवस्था और समाज से ही नही लड रहा है बल्कि वह अपने आप से भी लड़ रहा है। इस दृष्टिकोण से उसका मोर्चा न किसी व्यक्ति से है, न किसी वर्ग से है, न व्यवस्था से है, बल्कि अपने आपसे है। आदमी जिस जिन्दगी को आज भी जी रहा है, वह बेमानी है, ऊब से भरी हुई है। वह केवल मरी हुई जिन्दगी को जीवित रखने का एक रास्ता है। आज की कविताए जनवादी दौरे से गुजर रही है।

3 नयी कविता तथा रघुवीर सहाय

रघुवीर सहाय की काव्य यात्रा का आरम्भ "दूसरा सप्तक" 1951 के प्रकाशन से लेकर नयी कविता 1954 के प्रकाशन के बीच से होता है। उनकी प्रथम काव्य रचना "आदिम संगीत" शीर्षक से "आजकल" के अगस्त 1947 के अक मे प्रकाशित हुआ था। सन् 1951 मे प्रकाशित "दूसरा सप्तक" मे अज्ञेय ने रघुवीर सहाय की कविताओ को भी स्थान दिया है। "सप्तक" मे प्रकाशित इन कविताओ के कारण अपनी गहन सवेदनाशीलता एव विशिष्ट भाषिक सरचना के कारण वे हिन्दी साहित्य मे विशेष चर्चित हुए। तत्पश्चात रघुवीर सहाय की सृजन यात्रा मे अनवरत एव बहुमुखी रचना ससार का विस्तार होता है।

4 रघुवीर सहाय की सृजन यात्रा

सन् 1946 से 1951 तक का वह समय था। जब रघुवीर सहाय ने अपनी कलम उठाई। यह समय एक स्वप्न के साकार होने और निराशा से आशा की ओर उन्मुख होने का समय था। इन्होने अपने लेखन के द्वारा प्राणवन्त चेतना फूँकी, जिसमे कोई सन्देह ही नही है। रघुवीर सहाय ने जीवन को जिस यथार्थ की निगाहो से देखा, वैसी ही सहज और अपील करनेवाली अभिव्यक्ति दी है। उनकी कविताए स्वाभाविक और सरल होती हुई भी पैनी तथा पाठक की सवेदना को झकझोर देने वाली है–

"मूर्ख मूर्ख सब हो गये मेरी ओर
छोडकर कायरता
लिख दिया गया स्कूलो मे सुभाषित
मरता– क्या न करता"–––[1]

जिस समय साहित्य के क्षेत्र मे रघुवीर सहाय ने प्रवेश किया। उस समय कविता की कोख में प्रयोगवाद, प्रगतिवाद और नयी कविता जैसी प्रवृत्तियाँ करवट ले रही थी। लेकिन रघुवीर सहाय ने हर प्रकार से किसी वाद, प्रवृत्ति विशेष, या खेमे के घेरे मे नही बाँधा। अपने जीवन की शुरूआत उन्होने प्रत्रकारिता से की। सन् 1951 ई0 मे "प्रतीक" के सम्पादक मण्डल मे आकर अपने कार्य को आगे बढ़ाया, जिसे सभी लोग स्वीकार करते है।

अज्ञेय जी ने सहाय जी की प्रतिभा को बहुत पहले ही पहचान लिया था। उन्होने सन् 1952 ई0 मे उन्हे "प्रतीक" के सम्पादक मण्डल के लिए

---

1 आत्म हत्या के विरूद्व– रघुवीर सहाय प्र0 1967 राजकमल दिल्ली, पृ0 44

आमन्त्रित किया। अज्ञेय द्वारा सम्पादित द्वय मासिक प्रतीक (पावस अंक) में पहली बार उनकी लम्बी कविता "सायकाल" छपी और श्री सहाय की पहली मुक्त छन्द की कविता –नयावर्ष" जो कि सन् 1948 ई0 मे "कान्यकुब्ज कालेज" की पत्रिका मे छपी। मई 1953 ई0 मे वे आकाशवाणी के समाचार विभाग मे उपसपादक बने। मार्च 1957 ई0 में उन्होने आकाशवाणी से त्याग पत्र दे दिया। सितम्बर 1957 ई0 तक अपना मुक्त लेखन करते रहे। मुक्त लेखन करते हुए लखनऊ से निकलने वाली पत्रिका "युग चेतना" के दिल्ली प्रतिनिधि रहे। "युग चेतना" के जून–जुलाई अक मे उनकी "हमारी हिन्दी" कविता छपी। इस कविता को लेकर लखनऊ के सरकारी हिन्दी सलाहकारो मे हलचल मच गयी। विद्या निवास मिश्र उन दिनो सूचना–विभाग मे उप निदेशक थे। उन्होने पत्रिका की सरकारी खरीद की 400 प्रतियाँ खरीदने से मना कर दिया। शिव सिह "सरोज" ने "स्वतत्र–भारत" मे इस पत्रिका की प्रतियाँ जलाने की धमकी दी, लेकिन यशपाल ने कवि का समर्थन किया और उसी वर्ष 1957 ई0 में बद्री विशाल पित्ती के निमंत्रण पर अक्टूबर में "कल्पना" के सम्पादक मण्डल के सदस्य होकर रघुवीर सहाय हैदराबाद चले गये।

पुन 1958 ई0 मे कमला देवी चट्टोपाध्याय और कपिला वात्स्यायन ने फरवरी 1958 ई0 मे स्थापित एशिया थियेटर इंस्टीट्यूट (नेशनल स्कूल आफ ड्रामा) मे रिसर्च आफीसर के रूप मे विदेशी नाट्य विशेषज्ञो और देशी छात्रों के साथ काम करने के लिए दिल्ली बुलाया। सन् 1959 ई0 में अज्ञेय जी द्वारा सम्पादित अंग्रेजी त्रयमासिक पत्रिका "वाक्" मे सहायक सम्पादक का काम किया।

सन् 1960 ई0 मे इनका पहला कविता–कहानी सग्रह "सीढ़ियों पर धूप में" भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन काशी से प्रकाशित हुआ। श्री सहाय "सुन्दर लाल" के नाम से 1960 से 1963 ई0 तक "दिल्ली की डायरी" नाम से "धर्मयुग" मे

एक पाक्षिक स्तम्भ लिखते रहे। उसी समय दूरदर्शन का उद्घाटन होने पर नियमित व्याख्यात्मक वार्ताओ का आरम्भ करने के लिए उन्हे चुना गया। बाद मे चलकर अगस्त 1963 ई0 मे श्री सहाय आकाशवाणी से अलग हुए और दैनिक "नवभारत टाइम्स" मे विशेष सवाददाता बने। 1965 ई0 मे भारत-पाक युद्ध के बाद भारत-अधिकृत पाकिस्तानी गाँवो की सहाय जी ने यात्रा की। इसी पृष्ठभूमि को लेकर सीमा के पार का आदमी" शीर्षक कहानी (रास्ता इधर से है) लिखी। सन् 1967 ई0 मे इनका कविता सग्रह "आत्म हतया के विरूद्व" प्रकाशित हुआ। (सन् 1968 ई0 मे "नवभारत टाइम्स" से स्थानान्तरित होकर मार्च सन् 1968 ई0) मे "नवभारत टाइम्स" से स्थानान्तरित होकर मार्च 1968 ई0 मे समाचार सम्पादक के रूप मे "दिनमान" मे नियुक्त हुए। उसी समय दूरदर्शन मे पहली बार अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओ पर व्याख्या के साप्ताहिक कार्यक्रम की परिकल्पना दी। जब सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्सायन अज्ञेय ने सितम्बर 1969 ई0 मे विदेश से लौटकर "दिनमान" से अपना त्यागपत्र दे दिया तब श्री सहाय दिनमान के कार्यकारी सम्पादक बन गये। बाद मे 1970 ई0 मे वे दिनमान के स्थायी सम्पादक बन गये। सन् 1972 ई0 मे श्री सहाय का पहला स्वतन्त्र कहानी संग्रह "रास्ता-इधर से है" प्रकाशित हुआ। सन् 1974 ई0 मे रघुवीर सहाय ने "विश्व आर्थिक सम्बन्ध" नामक गोष्ठी मे भारतीय पत्रकारो के प्रतिनिधि के रूप मे तोक्यो और बैकाक की यात्रा की। 1975 ई0 मे उनका कविता सग्रह "हँसो-हँसो जल्दी हँसो" प्रकाशित हुआ। इसके पश्चात् "दिल्ली मेरा परदेश" शीर्षक से 1960 से 1963 के बीच "धर्मयुग" मे "दिल्ली की डायरी" के अन्तर्गत उनकी लिखी गयी रचनात्मक टिप्पणियो का प्रकाशन हुआ। सन् 1978 ई0 मे उनका निबन्ध सग्रह "लिखने का कारण" प्रकाशित हुआ। सन् 1979 ई0 मे श्री सहाय शेक्सपीयर के नाटक "मैकबेथ" का "वरनमवन" शीर्षक से पद्यानुवाद किया और 1980 ई0 शेक्सपीयर के "ट्वेल्थ नाइट" का हिन्दी पद्य मे एव "लोर्का का हाउस आफ

वर्नार्डा एल्वा" का उर्दू गद्य मे अनुवाद किया। यही नाटक इसी वर्ष स्टूडियो "वन" द्वारा "अमाल-अल्लाना" के निर्देशन मे "विरजीस कदर का कुनबा" के नाम से खेला गया।

श्री सहाय जी 1983 ई0 मे "दिनमान" से अलग हुए। दिनमान मे लिखे गये सम्पादकीय और लेखो के उनके तीन सकलन छपे- वे और नही होंगे जो मारे जायेगे", "सागर भवरे और तरग, ऊबे हुए सुखी"। उनके तीन हगरी नाटक भी पदर्शित हुए। सन् 1984 ई0 मे कविता-सग्रह "लोग भूल गये हैं" प्रकाशित हुआ और उस पर साहित्य अकादमी पुरस्कार भी प्रदान किया गया उसी समय "जनसत्ता" मे "अर्थात" कालम लिखने की शुरूआत भी सहाय जी ने की। सन् 1985 ई0 मे पोल्सर उपन्यासकार इवो आद्रिच के उपन्यास "द्रीनी चुप्रिया" के हिन्दी अनुवाद "द्रीना नदी का पुल" प्रकाशित करने का श्रेय श्री सहाय को है। यथार्थ सम्बन्धी लेखो के सकलन "यथार्थ-यथास्थिति नहीं" का सम्पादन भी सहाय जी ने किया। सन् 1989 ई0 मे उनका कविता-सग्रह "कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ" प्रकाशित हुआ। 30 दिसम्बर 1990 को शाम साढ़े सात बजे ही श्री सहाय का देहान्त हो गया। उनकी कुछ अन्तिम कविताएं राजकमल प्रकाशन से "एक समय था" कविता संग्रह मे सन् 1995 ई0 मे प्रकाशित हुआ। काव्य के साथ ही साथ गद्य के क्षेत्र मे प्रवेश करके एव नाटक, उपन्यास, कहानी कविता आदि, विविध विधाओ का अनुवाद जीवन और साहित्य मे सहाय जी के विविध मुखी और गहरी पैठ को रेखाकित करते हैं।

काव्य संसार

क) सीढ़ियों पर धूप में

"सीढ़ियो पर धूप में" रघुवीर सहाय का प्रथम कविता-कहानी सग्रह है। इस सग्रह का प्रकाशन सन् 1960 ई0 मे भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन काशी"

से हुआ। इस सग्रह मे रघुवीर सहाय की "दूसरा सप्तक" की कविताए "समझौता" और बसन्त को भी सकलित किया गया है। इसके अतिरिक्त मेरा एक जीवन है, पानी के सस्मरण, हमने यह देखा , तोड़ो, धीर–धर गया अगर, माँग रहे है जीवन, दुनिया, झेल लेगे, अगर कहीं मै तोता होता, प्रभु की दगा, पढ़िए गीता, थके है, हकीम, घडी, जो अब कहने को करते है, आज फिर शुरू हुआ, धूप, नारी, इतने मे किसी ने, आदि कविताए इस सग्रह में संकलित है, जो कि रघुवीर सहाय की स्वाभाविकता एव जीवन की वास्तविकता को प्रकट करने की उनकी क्षमता पर प्रकाश डालती है। ये कविताए जीवन के सुख–दुख, एव सभी समस्याओ, उतार–चढ़ाव, गरीबी--अमीरी, सफलता असफलता, एव प्रकृति का एक जीवित दस्तावेज प्रस्तुत करती है। ये कविताएं एव इसमे सकलित कहानियाँ बहुत ही मर्मस्पर्शी, सवेदनशील और जीवन के पट को सहजता से स्पर्श करती है। सहाय कविता सृजन को व्यावहारिक तथा सकारात्मक सृजनशीलता का प्रतिनिधि मानते थे, जो उनके साहित्य मे हर तरह से मुखरित हुई है। रघुवीर सहाय ने इस सग्रह मे जीवन के सहज पक्षों को और सुखद अनुभूतियो को बहुत ही स्वाभाविकता से प्रस्तुत किया है।

"सीढ़ियो पर धूप में" की भूमिका मे ही "अज्ञेय" जी ने लिखा है कि –

"अपने छायावादी समवयस्को के बीच "बच्च्न" की भाषा जैसे– एक अलग आस्वाद रखती थी, उसी प्रकार अपने विभिन्न मतवादी समवयस्कों के बीच रघुवीर सहाय भी चट्टानो पर चढ़ नाटकीय मुद्रा मे बैठने का मोह छोड, साधारण घरो की सीढियो पर धूप में" बैठकर प्रसन्न है। यह स्वस्थ भाव उनकी कविताओ को स्निग्ध मर्मस्पर्शिता दे देता है– जाड़ो के घाम की तरह उसमे तात्क्षणिक गरमाई भी है और एक ऊपर खुलापन भी"----[1]

---

1 "सीढियों पर धूप में" की भूमिका – अज्ञेय का वक्तव्य

"सीढ़ियो पर धूप में" सग्रह की कविताए रघुवीर सहाय की मानवीय सवेदना एव जीवन के यथार्थ को प्रस्तुत करती है–

"सारे ससार मे फैल जायेगा एक दिन मेरा ससार
सभी मुझे करेगे– दो चार को छोड़ कभी न कभी प्यार
मेरे सृजन कर्म, कर्तव्य, मेरे आश्वासन, मेरी स्थापनाए
और मेरे उपार्जन, दान व्यय मेरे उधार
एक दिन मेरे जीवन को छा लेगे– ये मेरे महत्त्व
डूब जायेगा तन्त्रीनाद–कवित्त रस मे राग मे रग मे, मेरा
यह ममत्व"---[1]

जीवन के घात–प्रतिघात को इस सग्रह की कविताए प्रस्तुत करती है।

अशोक बाजपेयी ने "सीढियो पर धूप में" सग्रह की समीक्षा करते हुए लिखा है कि "कविता को कवि के अमित जीने (इम्मेन्स लिविग) का साक्ष्य होना चाहिए" क्योकि कविता यदि जीने के कर्म को, उसकी मानवीयता और गरिमा को शक्तिपूर्वक प्रस्तुत और परिभाषित नही करती तो उसका कौन सा कर्तव्य हो सकता है ? यही कारण है कि "वह मानव अस्तित्व के अंत सलिल हो रहे उप्सो को फिर से प्रकाश मे लाये, हम ऊबे और थके और उखडे हुओ को अपने जीने की क्रिया की गहराई और विशदता पर कविता के माध्यम से बल देकर हममे उस कर्म के लिए नया रस, नया महत्त्व बोध उत्पन्न करे ताकि हम जीवन मे अर्थ, उद्देश्य ओर मूल्य की खोज ओर प्रतिष्ठा कर सके--- रघुवीर सहाय अपनी सीढ़ियो पर धूप मे• सग्रह की कविताओ मे ऐसा साक्ष्य प्रस्तुत करते है"---[2]

---

1 सीढ़ियो पर धूप में" प्रकाशन– 1960 रघुवीर सहाय, भारतीय ज्ञानपीठ काशी, कविता– "मेरा एक जीवन है' पृ0स0 88

2 विवेक के रग– अशोक वाजपेयी पृ0सं0 127–128

नि सन्देह साधारण जीवन को घेरे हुए बहुत छोटी–छोटी घटनाओ में रघुवीर सहाय जीवन की खोज करते है और जीवन के यथार्थ को इन्ही घटनाओं मे रघुवीर सहाय उभारने की कोशिश करते है। वे जीवन को उसकी स्वाभाविकता में पाना चाहते है। यह स्वाभाविकता जीवन को सम्पूर्णता मे जीने का प्रयास करने वाले व्यक्ति के सवेदनशील मन की स्वाभाविकता है। रघुवीर सहाय "सीढ़ियों पर धूप" मे सग्रह की कविताए एक विशेष सहजता के रूप के साथ लिखने की कोशिश की है जो कि कविता रचने की परम्परित कलात्मकता से अलग हटकर एक खास तरह की "कला" मुक्त कविता लिखने की कोशिश की है। इन सभी कविताओ मे उनकी मानवीय सवेदना एव प्रकृति प्रेम के भावो को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। जीवन को सहज अनुभूति एव सच्चे यथार्थ की तलाश, मे रघुवीर सहाय अपने इस सग्रह की कविताओ को सृजित किया है–

> "आज फिर शुरू हुआ जीवन
> आज मैने एक छोटी सी सरल कविता पढी
> आज मैने सूरज को डूबते हुए देर तक देखा
> जी भर आज मैंने शीतल जल से स्नान किया
> आज एक छोटी सी बच्ची आयी, किलक मेरे कन्धे चढी
> आज मैने आदि से अन्त तक, एक पूरा गान किया
> आज फिर शुरू हुआ जीवन"–––[1]

जीवन की बिल्कुल स्वाभाविक एव रचनात्मक स्थितियो के द्वारा यह कविता रची गयी है। जिसके परिणामस्वरूप जीवन मे "नया रस" तथा नया महत्त्वबोध उत्पन्न होता है।

---

1 सीढ़ियो पर धूप मे– पृ0 1960 रघुवीर सहाय "आज फिर शुरू हुआ" पृ0–165

पूरी दिनचर्या से कविता मे जिन सामान्य स्थितियो का चुनाव किया गया है। उसके प्रति कवि की केवल आत्मीयता ही कविता मे महत्वपूर्ण नही है बल्कि सबसे महत्वपूर्ण यह है कि यहाँ पर जीवन की सामान्यताओ के बीच जीवन की स्वाभाविक रचनाशीलता की सार्थक पकड़।

डा0 रामस्वरूप चतुर्वेदी यह स्वीकार करते है कि "जीवन वैसे फिर प्रकृति मे शुरू होता है और रचना का क्षण कैसे जीवन मे बार-बार अवतरित होता है। यही इस कविता मे मुख्य रूप से अभिव्यक्त किया गया है---[1]

"सीढियो पर धूप में" सग्रह की "बौर" "आओ नहाए"
जभी पानी बरसता है "रूमाल" तथा पानी शीर्षक कविताए
रघुवीर सहाय की सहजता एव प्रकृति प्रेम को ही प्रकट करती है-

"कितने सही है ये गुलाब
कुछ कसे हुए और कुछ झरने -झरने को
और हल्की सी हवा मे और भी, जोखम से
निखर गया है उनका रूप जो झरने को है"---[2]

जीवन एव प्रकृति का अटूट सम्बन्ध रघुवीर सहाय की इस सग्रह की कविताओ में प्राप्त होता है। प्राकृतिक अवयवों से रघुवीर सहाय भी अपनी कविता को सृजित किया है, जिसमे जीवन और जगत के यथार्थ की सफल झाँकी प्राप्त होती है। इस सग्रह की कविताओ मे जीवन की स्वाभाविक स्थितियो का चित्रण ही नही, अपितु उन स्थितियो से अपने आत्मीय रिश्तो की तलाश को परिभाषित करने का श्री सहाय ने पूरा प्रयास किया है।

---

1 कविता यात्रा रत्नाकर से रघुवीर सहाय- पृ0स0 78

3 सीढ़ियो पर धूप मे - पृ0 1960 रघुवीर सहाय "धूप" पृ0स0 168

इस सग्रह की "बौर" कविता के अन्तर्गत "नीम के बौर की सहज गन्ध मे कवि एक और सुख का परिचय पाता है–

"नीम मे बौर आया
इसकी एक सहज गन्ध होती है
मन को खोल देती है गध वह
जब मतिमन्द होती है
प्राणो ने एक और सुख का परिचय पाया"---[1]

अपनी "रूमाल" कविता मे कवि को अपने छूटे हुए उस साधारण रूमाल की याद आती है जिससे उसने "अपना जूता" नाक, पसीना और कलम की निब पोछी थी--- " जिसके कारण वह उससे बहुत जुडा हुआ था, "सीढ़ियो पर धूप में" सग्रह मे सकलित रघुवीर सहाय की इन कविताओ की एक उल्लेखनीय विशेषता यह है कि चाहे तो कोई "पानी", "नीम" तथा रूमाल को प्रतीक के रूप मे ग्रहण कर सकता है। लेकिन कविता मे इसकी बिल्कुल अपेक्षा नही है, बल्कि प्रतीक हुए बगैर कविता नये सन्दर्भो मे बहुत ज्यादा महत्वपूर्ण है। कदम–कदम पर प्रतीक अन्वेषको की सबसे बडी कठिनाई यह है कि वे चीजो को महज चीजो की तरह ले ही नही सकते। "सीढ़ियो पर धूप में" सग्रह की कविताए केवल प्रतीक रूप मे नही, अपितु जीवन की वास्तविकताओ को सामने प्रस्तुत करती है।

अपने पाठको को स्वय सम्बोधित करते हुए रघुवीर सहाय ने एक कविता मे यह बयान दिया कि –"ये मेरे बच्चे है, कोई प्रतीक नही। इस कविता मे। मै हूँ मै। कोई रूपक नही---।"[2]

---

1 "सीढियो पर धूप में" पृ0 1960 रघुवीर सहाय "बौर" पृ0स0 104
2 आत्महत्या के विरूद्ध प्र0 1967 रघुवीर सहाय, पृ0–80

स्भाविकता की खोज मे जीवन की साधारण स्थितियो के बीच कविता सभव करने मे सर्जन प्रक्रिया के दौरान रघुवीर सहाय की सहज आत्म स्वीकार की प्रवृत्ति तथा अपनी सीमा के यथार्थ की पहचान के महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है–

"यही मै हूँ
और जब भी मै यही होता हू
थका या उन्ही के से वस्त्र पहने, जो मुझे प्रिय है
दु खी मन मे उतर आती है पिता की छवि
अभी तक जिन्हे कष्टो से नही निष्कृति
उन्ही अपने पिता की मै अनुकृति है
यही मै हूँ।---[1]

निश्चय ही "यही मै हूँ के बोध का प्रभाव रघुवीर सहाय की अधिकाश कविताओ मे है। लेकिन इसके साथ ही साथ यह कविता उनके काव्य की एक और महत्वपूर्ण प्रवृत्ति– मानवीय करूणा को भी दृष्टिगत करती है। "यह करूणा सिर्फ असन्तुष्ट खडे व्यक्ति की करूणा नही है, बल्कि सामाजिक जीवन से जुडे मुश्किल मे फँसे उस व्यक्ति की करूणा है, जिसमे समाज को बदलने की इच्छा और कोशिश भी है। यही कारण है कि इस करूणा मे "मर्मस्पर्शी दर्द और शक्ति अर्जित करने की आकाक्षा अधिक है"---[2]

इसी करूणा द्वारा शक्ति प्राप्त करने की बात बाद मे अशोक बाजपेयी और मगलेश डबराल ने भी उठाई है और रघुवीर सहाय ने उसे स्वीकार किया है। रघुवीर सहाय से एक भेटवार्ता मे प्रश्न करते हुए कहा गया है कि "सीढ़ियों पर धूप मे)

---

1 सीढ़ियों पर धूप मे प्र0 1960 रघुवीर सहाय, यही मै हूँ" पृ0स0 85

2 आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ– नामवर सिह पृ0 - 145

एक करूणा थी, पर एक मानवीय शक्ति और सुन्दरता से होकर थी।" ---[1]

सीढियो पर धूप में" सग्रह की कविताओ मे जो करूणा है, उसका स्वरूप रचनात्मक है, जीवन सघर्ष मे ताकत हासिल करनेसे जुडा हुआ है। शक्ति दो, कविता मे रघुवीर सहाय लिखते है

"शक्ति दो, बल दो, हे पिता
जब दु ख के भार से मन थकने को आय
और यह नहीं दो तो यही कहो
अपने पुत्रो और छोटे भाइयो के लिए यही कहो--
कैसे तुमने किया होगा अपनी पीढ़ी मे क्या उपाय
कैसे सहा होगा, पिता कैसे तुम बचे होगे
तुमसे मिला है जो विक्षत जीवन का हमे दाय
उसे क्या करे
तुमने जो दी है अनाहत जिजीविषा
उसे क्या करे-? ---[2]

यातना की भयानक स्थितियो के बीच यह जो अनाहत जिजीविषा है वह करूणा मे सुन्दरता उत्पन्न कती है और समय तथा स्थान के अनुसार उनके इस सग्रह की कविताए प्रासगिक भाव उत्पन्न करती है।

"इतने मे किसी ने" कविता मे रघुवीर सहाय लिखते है-

"नवयुग आजादी का, नवयुग की आजादी।
इतने में किसी ने टोककर जैसे डपट दिया •
"देख, सुन, समझ, अरे घर घुस जनवादी"
चौक देखा कोई नही, सुना केवल ढप् ढप्

---

1 लिखने का कारण-प्र0 1978 रघुवीर सहाय पृ0 153-154

2 सीढ़ियो पर धूप मे - प्र0 1960 रघुवीर सहाय "शक्ति दो" पृ0स0 86

आँगन मे गेहूँ का कुडा फटका रही
सोलह सेर वाले दिन देखे हुई दादी----[1]

बदलते युग परिवेश मे होने वाले नैतिक पतन का इस सग्रह की कविताए स्पष्ट भाव मुखरित करती है। रघुवीर सहाय स्वय एक नियमित एव कर्तव्यनिष्ठ व्यक्ति होने के कारण सदैव समय के महत्त्व को समझते रहे है, और समय के सदुपयोग के प्रति अपनी सदैव आवाज उठाते रहे है। उनके मतानुसार ऐसा करन वाला व्यक्ति ही सचमुच अपने जीवन मे सफल हो सकता है। अपनी "घडी" कविता मे वे प्रश्न करते हुए कहते है कि–

"समय की गति क्या तुम्हारे हाथ मे है, ए घड़ी
हमे रहती है हमेशा एक तरह की हड़बड़ी
यह तुम्हारी ही वजह से क्या
कि हमकी आलसी है ?---[2]

श्री सहाय व्यर्थ की रूढ़ियो एवं आडम्बरो को समाप्त करने पर बल दिये है। एक नयी सामाजिक चेतना को उभारने का प्रयास रघुवीर सहाय के इस सग्रह की कविताओ मे प्राप्त होता है। जो कि जीवन की वास्तविकताओ को सामने लाती है "तोडो" कविता मे कवि लिखता है–

"तोड़ो– तोडो तोडो
ये ऊसर बन्जर तोडो
ये चरती परती तोडो
सब खेत बनाकर छोडो

---

1 सीढ़ियो पर धूप मे– प्र0 1960 रघुवीर सहाय– "इतने मे किसी ने" पृ0सं0 174

2 वही " "घड़ी" पृ0स0 157

मिट्टी मे रस होगा ही जब वह पोसेगी बीज को
हम इसको क्या कर डाले इस अपने मन की खीज को
गोडो–गोडो–गोडो–––[1]

सामाजिक अव्यवस्था के खिलाफ अपनी आवाज उठाकर रघुवीर सहाय शोषण एव उत्पीडन के शिकार लोगो को अपनी व्यवस्था के अनुसार उस अव्यवस्था को समाप्त कर देने के लिए तैयार करते है।

प्रकृति के चित्रण मे कवि जीवन के यथार्थ को चित्रित करने का प्रयास किया है–जैसे–

"कौध। दूर घोर वन मे मूसलाधार वृष्टि
दुपहर घना ताल ऊपर झुकी आम की डाल
बयार खिडकी पर खडे आ गयी फुहार
रात उजली रेती के पार, सहसा दिखी
शान्त नदी गहरी
मन मे पानी के अनेक सस्मरण है।–––[2]

इस पानी के सस्मरण के द्वारा कवि जीवन के सस्मरण को प्रकट करता है। जिसमे कि तरह–तरह के उतार–चढ़ावो का समावेश है। अपनी अधिकाश प्रकृति सम्बन्धी कविताओ मे रघुवीर सहाय ने अपने प्रेम के अनुभव को भी अभिव्यक्त किया हैं। पूँजीवादी व्यवस्था एव शोषण की व्यवस्था मे सहाय नारी (जिससे वे प्यार करते है) का, विषम जीवन स्थितियो के बीच विडम्बनाओ का शिकार हो जाना नियति है। "पढ़िये गीता" कविता मे जिस तरह इस नियति को व्यग्य के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है– वह व्यग्य अपने प्रभाव मे करूणा की सृष्टि करता है –

---

1 सीढ़ियो पर धूप मे" प्र0 1960 रघुवीर सहाय- "तोड़ो" पृ0स0 112

2 वही " पानी के सस्मरण पृ0स0–101

"पढ़िये गीता
बनिये सीता
फिर इन सब मे लगा पलीता
किसी मूर्ख की हो परिणीता
निज घर बार बसाइये"---[1]

निम्न मध्यवर्गीय नारी की पूरी जीवन गाथा एव उसकी शोषित उपेक्षित स्थिति को इस संग्रह की कई कविताओ मे अभिव्यक्त किया गया है-

"नारी बिचारी है
पुरूष की मारी है
तन से क्षुधित है
मन से मुदित है
लपककर झपककर
अन्त मे नित है---[2]

"सीढ़ियो पर धूप मे" सग्रह की कविताए आगे के सग्रहो के लिए एक मार्ग तैयार करती है। रामस्वरूप चतुर्वेदी ने ठीक ही लिखा है- कि "यह कविता सवेदनात्मक स्तर पर मानो अगले सकलन "आत्महत्या के विरूद्व" की भूमिका के तौर पर काम करती है"---[3]

---

1 सीढियो पर धूप मे"- प्र0 1960 पढ़िए गीता" पृ0स0 148
2 वही " "नारी" पृ0स0 172
3 कविता यात्रा रत्नाकर से रघुवीर सहाय – पृ0स0 82

ख) "आत्म हत्या के विरूद्ध"

रघुवीर सहाय का काव्य सग्रह आत्म हत्या के विरूद्ध का प्रकाशन सन् 1967 ई0 मे हुआ। सन् 1976 ई0 मे इस सग्रह का दूसरा और सन् 1985 ई0 मे इस सग्रह का तीसरा या सस्करण राजकमल प्रकाशन दिल्ली से प्रकाशित हुआ। रघुवीर सहाय का यह सर्वाधिक चर्चित कविता सग्रह कवि के अपने व्यक्तित्व की खोज की एक बीहड यात्रा है। मनुष्य से नगे बदन सस्पर्श करने के लिए "सीढियो पर धूप मे कवि ने अपने को लैस किया था, बाद मे कवि का वही साक्षात्कार "आत्म हत्या के विरूद्ध" की कविताओ मे एक चुनौती बनकर उभरा है। रघुवीर सहाय बनी बनाई वास्तविकता और पिटी-पिटाई दृष्टि हमेशा विरोधी रहे है। अपने को किसी भी कीमत पर सम्पूर्ण व्यक्ति बनाने की लगातार कोशिश के साथ रघुवीर सहाय ने पिछले दौर से निकलकर "आत्म हत्या के विरूद्ध" मे एक व्यापकतर ससार मे प्रवेश करने की कोशिश की है। इस ससार मे भीड का जगल है, जिसमे कवि एक साथ अपने को खो देना और पा लेना चाहता है। कवि इस ससार मे नाचता नहीं, चीखता नही, और सिर्फ बयान भी नही करता है। वह इस जगल मे भली-भाँति फँसा हुआ है, लेकिन उसमे से निकलना किन्ही भी सामाजिक-राजनीतिक शर्तो पर उसे बिल्कुल मान्य नही है।

"बहुत दिन हुए तब मैने कहा था लिखूँगा नही
किसी के आदेश से
आज भी कहता हूँ
किन्तु आज पहले से कुछ और अधिक बार
बिना कहे रहता हूँ
क्योकि आज भाषा ही मेरी एक मुश्किल नही रही।"---[1]

---

1 आत्म हत्या के विरूद्ध- रघुवीर सहाय प्र0 1970- कविता स्वाधीन व्यक्ति पृ0स0 15

भारत भूषण अग्रवाल– ने यह विश्लेषित किया है कि– "भीड़ से घिरा एक व्यक्ति– जो भीड़ बनने से इन्कार करता है और उससे भाग जाने को गलत समझता है– रघुवीर सहाय का साहित्यिक व्यक्तित्व है---[1]

रघुवीर सहाय का रचना ससार जितना निजी है, उतना ही हम सबका है– एक गहरे काव्य और अराजनैतिक अर्थ मे पूर्णतया जनवादी है।

रघुवीर सहाय की कविता मे हत्या और इसके समानार्थक शब्दो का सर्वाधिक प्रयोग हुआ है। यह शब्द इतनी बार प्रयुक्त हुआ है कि आत्म हत्या के विरूद्ध का कवि वास्तव मे ही हत्या के विरूद्ध है। यह सर्वविदित है कि आज की परिस्थितियाँ बहुत ही भयावह है। ऐसी परिस्थितियो के बीच में मामूली आदमी और ईमानदार आदमी हर मोड़ पर मारा जा रहा है, और आश्चर्य की बात यह है कि उस मामूली आदमी को यह नही मालूम है कि उसकी हत्या होगी। समाज के सभी उपस्थित लोग बिल्कुल मौन है– खामोश है हत्यारा एक निश्चित समय पर आता है और तौलकर चाकू मारता है, पुन सभी लोगो को धक्का देते हुए वह हत्या करके निकल जाता है। सब अबाक खड़े रहते है।

> "रोज–रोज थोडा–थोडा मरते हुए लोगों का झुण्ड
> तिल–तिल खिसकता है शहर की तरफ
> फरमाइशी संभोग मे सुनो एक उखडी साँस की
> साँय–साँय इस महान देश मे क्या करे, कहाँ जाँय।
> घबराते लडके गदराती औरत लेकर---[2]

रघुवीर सहाय के काव्य सग्रह "आत्म हत्या के विरूद्ध" की कविता में "हत्या" शब्द एक व्यापक अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है। हत्या केवल उसी की नहीं होती है,

---

1 आत्म हत्या के विरूद्ध की भूमिका– रघुवीर सहाय प्र0 1967– कविता स्वाधीन व्यक्ति, पृ0स0 15

2 आत्म हत्या के विरूद्ध---- रघुवीर सहाय– कविता "भीड़ मे मैं" पृ0स0 22

जो चाकू या छूरे से मा। जाता है बल्कि उसकी भी हत्या होती है जो ट्रक से दबकर या बिना दवा के और बिना सिफारिश के मर जाता है। ऐसे मरने वालो की सख्या बहुत ज्यादा है जो रोज–रोज थोड़ा–थोड़ा मर रहे हैं। जब आदमी की लालसा मरती है, उसकी स्वाधीनता छीनी जाती है, उसका सत्य कुचला जाता है, उसकी आवाज को प्रतिबन्धित किया जाता है तो वह आदमी ऊपर से जिन्दा रहते हुए भी भीतर से बिल्कुल मर जाता है। उसकी एक प्रकार से हत्या ही हो जाती है। रघुवीर सहाय के इस कविता व सग्रह मे कदम–कदम पर रोज थोड़ा थोड़ा मरते इस आदमी की पीडा महसूस की जा सकती है।

> "बीस बरस बीत गये, लालसा मनुष्य की तिल–तिल कर मिट गयी
> अब नही हो सकता कोई लेखक महान
> पहले तो बाम्हन होंगे फिर ठाकुर होंगे
> फिर बारी आयेगी चमारो की
> तब तक चमार कायस्थ न बन गये होंगे"[1]

रघुवीर सहाय की "रामदास" कविता आज की उस क्रूर अमानवीय स्थिति को नगे चित्र की तरह सामने रख देती है जिसमे कि हत्या जैसी असाधारण और भयानक घटना भी एक सहज कर्म हो गयी है। "आत्म हत्या के विरूद्व" कविता की पक्तियाँ मन्द गति से आगे बढ़ती है, जैसे कोई कथा कही जा रही हो। कही कोई उत्तेजना, कोई आक्रोश या कोई रूदन नही है। कही कोई–भय या दहशत पैदा करने वाला शब्द नही है। इस कविता की हर पाँचवी पक्ति मे "बार–बार हत्या होगी शब्द की आवृत्ति एक भीषण से भीषण दुर्घटना को एक सामान्य दिनचर्या मे परिणत कर देती है। हत्या चाहे रामदास की हो या खुशीराम की। पक्ष–विपक्ष बिल्कुल स्पष्ट है–

---

1 आत्म हत्या के विरूद्व ---- कविता– "एक अधेड़ भारतीय आत्मा" पृ०स० 78

"मारो–मारो–मारो–शोर था मारो
एक ओर साहब था
एक ओर मै था
मेरा पुत्र और भाई था
मेरे पास आकर खड़ा हुआ एक राही था"---[1]

इस होने वाली हत्या की कोई फरियाद नही है। क्योंकि सचमुच जो मनुष्य मरा, उसके पास–भाषा न थी। ऐसी स्थिति मे जब उसका प्रतिनिधि उसकी हत्या की करूण कथा सुनाने का प्रयास करता है– तो–

"हँसती है सभा
तोद मटका
ठठाकर
अकेले अपराजित सदस्य की व्यथा पर
फिर मेरी मृत्यु से डरकर चिंचियाकर
कहती है
अशिव है– अशोभन है, मिथ्या है।"---[2]

रघुवीर सहाय की "आत्म हत्या के विरूद्व" की कविताओ में "लालसा" और "स्वाधीनता" जैसे महत्वपूर्ण शब्दो का भी सर्वाधिक प्रयोग हुआ है। आदमी को लालसा और उसकी स्वाधीनता एक भारी चट्टान के नीचे दबी छटपटा रही है। ज्यों ही वह अपने बचपन की आजादी छीनकर लाने का संकल्प करता है, उसी समय तुरन्त ही उसका कत्ल कर दिया जाता है। इस आतक की भयावहता का चित्र रघुवीर सहाय ने अपनी कविताओ में खीचा है।

---

1 आत्म हत्या के विरूद्व– रघुवीर सहाय, स0 1967 कविता– मेरा प्रतिनिधि पृ0स0 18–19

2 वही " " पृ0स0–18

"आत्म हत्या के विरूद्व" सग्रह की कविताओ में रघुवीर सहाय ने घुटन और यातना की सजीव झाँकी प्रस्तुत करने की कोशिश की है। घुटन और यातना की यह स्थितियाँ समाज मे शोषक वर्ग के द्वारा उत्पन्न की गयी है। सत्ता और समाज मे परिवर्तन के साथ इस घुटन और यातना के साथ ही सामूहिक मुक्ति प्राप्त की जा सकती है। रघुवीर सहाय ने इस मुक्ति के लिए अपनी कविताओ मे जबरदस्त आवाज उठाई है। रघुवीर सहाय की कोशिश रचना मे यथार्थ को सिर्फ प्रस्तुत कर देने भर से ही नही है, बल्कि उनकी ज्यादा कोशिश इस बात की रही है कि यथार्थ का जो रूप कवि का काव्यानुभव बना है, उसे पाठक की संवेदना के स्तर पर सम्पूर्णता के साथ उतार दे। "आत्म हत्या के विरूद्व" की पहली ही कविता मे "नेता क्षमा करे" मे रघुवीर सहाय उस जनता के साथअपने यथार्थ रिश्ते भी स्थिति तथा एक कवि की हैसियत से उसे सर्जनात्मक बनाने के अपने प्रयास को स्पष्ट करते हुए देश के नेताओ और लोगो की उन परम्परित झूठी और सर्जनात्मक अपेक्षाओ को पूरा न कर पाने के लिए क्षमा याचना करते है -

"मैने कोशिश की थी कि कुछ कहूँ उनसे
लेकिन जब कहा तुमको प्यार करता हूँ
मेरे शब्द एक लहरियाता दोगाना बन
उकडूँ बैठे लोगो पर भिन-भिनाने लगे।"---[1]

"आत्म हत्या के विरूद्व" सग्रह की कविताएं सच्चे अर्थो मे रोजमर्रा की जानी-पहचानी दुनिया के हमारे अनुभव को कुछ अधिक गहरा और सार्थक बनाती है। रघुवीर सहाय स्वय अपने वक्तव्य मे कहा है कि- "साहित्येतर हथियारों से। सबसे मुश्किल और एक ही सही रास्ता है कि मै सब सेनाओ में लडूँ- किसी

---

1 आत्म हत्या के विरूद्व- रघुवीर सहाय प्र0 1967- "नेता क्षमा करें" पृ0स0 32

मे ढाल सहित, किसी मे निष्कवच होकर– मगर अपने को अन्त मे मरने सिर्फ अपने मोर्चे पर दूँ– अपने भाषा के, शिल्प के ओर उस दोतरफा जिम्मेदारी के मोर्चे पर जिसे साहित्य कहते है।[1]

"आत्म हत्या के विरूद्व" की कविताओ मे सामाजिक, राजनीतिक स्थितियो, कार्यो, परिणतियो, दृष्टिकोणो विचारो को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से आधार बनाकर उनके भीतर से व्यक्ति, समुदाय और देश की सभवत पूरे युग की आत्मा हो पहचानने का प्रयास है।

रघुवीर सहाय ने "आत्म हत्या के विरूद्व" काव्य सग्रह मे आम जनता की उन यत्रणाओ को परिभाषित करने की कोशिश की हे, जो इस भ्रष्ट वुर्जुआ लोकतंत्र की विसगतियो का शिकार है। इस संग्रह की सभी कविताए केवल राजनैतिक ही नही है, बल्कि कुछ वैयक्तिक कविताए भी है, जिसकी सतह का सम्बन्ध "सीढ़ियो पर धूप मे" सग्रह की कविताओं से है। रघुवीर सहाय के "आत्म हत्या के विरूद्व" की कविताओ मे "खड़ी स्त्री" "चढ़ती स्त्री" "एक लड़की" तथा "अभी तक खड़ी स्त्री" आदि छोटी–छोटी कविताओ मे स्त्रियों के शोषित जीवन की विडम्बना की अभिव्यक्ति प्रस्तुत की गयी है –

"ग्रीष्म फिर आ गया
फिर हरे पत्तो के बीच
खडी है वह
ओठ नम
और भरा–भरा सा चेहरा लिये
बदली की रोशनी सी नीचे को देखती"----[2]

---

1 आत्म हत्या के विरूद्व– रघुवीर सहाय का वक्तव्य पृ0स0 –8

2 आत्म हत्या के विरूद्व– रघुवीर सहाय प्र0 1967 "अभी तक खड़ी स्त्री" पृ0सं0 55

कवि के लिए चिन्ता का विषय यह है कि वर्तमान सामाजिक स्थितियो के बीच असहाय स्त्री कितनी व्यथाओ से घिरी हुई है लेकिन उसके लिए सबसे ज्यादा चिन्ता करने की बात यह है कि वह स्त्री अभी तक अपनी व्यथा को स्वयं नहीं जान पायी। यदि वह अपनी व्यथा को जान लेती तो उसके कारणों को खोजने का प्रयास भी करती। रघुवीर सहाय का अपनी इस कविता–सग्रह मे आग्रह यह है कि शोषण का शिकार पहले अपनी स्थिति की पहचान करे, फिर अपनी मुक्ति के लिए शोषक वर्ग के विरूद्व खड़ा हो, क्योंकि यह निश्चित है कि शोषक वर्ग के विरूद्व निर्णायक लडाई अन्तत शोषित वर्ग स्वय ही लड़ता है। रघुवीर सहाय "आत्म हत्या के विरूद्व" की कविताओ मे वर्तमान समाज मे स्त्री की नियति तथा उसकी गुलाम स्थिति को लेकर बहुत ही क्षुब्ध थे। लेकिन अपनी कविताओ के विरूद्व एक सघर्ष करने की प्रेरणा प्रदान करते है। अपने "आत्म हत्या के विरूद्व" सग्रह मे "फूल और शूल" सनीचर और "हमारी हिन्दी" जैसी व्यग्यधर्मी कविताओ के माध्यम से नकली दस्तावेज का पर्दाफाश किया है। रघुवीर सहाय को देश की विशाल जनता पर मुट्ठी भर लोगो द्वारा किया जाने वाला अन्याय, बिल्कुल स्वीकार नही है। यही बात उनकी कविताओ का बार–बार काव्य विषय बनता है। आज के युग मे आम जनता के सन्दर्भ मे लिये गये निर्णयो मेंउसकी कही उसमें भागीदारी नही है शोषक वर्ग के हितो की हिफाजल करने वाले, शासन का अत्याचार झेलते हुए आम जनता बार–बार आत्म हत्या की स्थितियाँ झेलती है। लेकिन इस "सफरिंग" के साथ ही इस सग्रह की तमाम कविताओ मे आत्म हत्या की इन स्थितियों के विरोध में खड़े होने की एक निरन्तर छटपटाहट भी प्राप्त हौंती है। यही वह केन्द्र बिन्दु है जहाँ रघुवीर सहाय का यथार्थ चित्रण एक महत्वपूर्ण सर्जनात्मक प्रक्रिया से अपना सम्बन्ध प्रदर्शित करता है।

संवेदना के स्तर पर रघुवीर सहाय के इस सग्रह की कविताएं यथार्थ का बिल्कुल नग्न चित्रण प्रस्तुत करती है। उनकी कविताए विसगत यथार्थ को बदलने के

प्रयासों से जुड़ने के लिए प्रेरित करती हैं। यही कारण है कि इस सग्रह की कविताए शोषित वर्ग की आन्तारिक पीड़ा और घुटन के साथ ही उसके अन्दर जीवन की इच्छा की भी प्रेरणा प्रदान करती है। सग्रह की लम्बी कविताओ मे घुटन के आत्यान्तिक प्रगगो के बीच "छुओ मेरे बच्चे का मुँह" तथा "चिट्ठी लिखते हुए छुटकी ने पूछा" जैसे जीवन से जुड़े हुए रचनात्मक प्रसंग भी हैं जो कविता मे तनाव से मुक्ति के लिए रखे गये है-

"छुओ
मेरे बच्चे का मुँह
गाल नही जैसा विज्ञापन मे छपा
ओठ नही
मुँह
कुछ पता चला जान का शोर डर कोई लगा
नही- बोला मेरा भाई मुझे पाँव तले
रौदकर, अग्रेजी---[1]

रघुवीर सहाय के "आत्म हत्या के विरूद्व" सग्रह की कविताएं मामूली अभावग्रस्तता और उपेक्षित जिन्दगी का सफल चित्रण प्रस्तुत करती है। भीख का अन्न खाती हुई दूध मुही बच्ची, पैदल सडक पार करता हुआ काला-काला नगा बच्चा, सहमी-डरी लड़की, रिक्शा खीचता मजदूर, अपने दर्द के साथ अकेली औरत, खाँसता हुआ फल वाला, सडक पार करता हुआ पतला दुबला बोंदा आदमी, लगडा बूढ़ा, लाठी टेक भीख माँगता हुआ बुड्ढा आदि की उपेक्षित जिन्दगी की सफल झाँकी प्राप्त होती है। भटकता मत्री, पिटे हुए नेता, पिटे अनुचर, हाँफते डकारते, पिटा हुआ दलपति, मक्कार मत्री, ठस कार्यकर्ता, डकारता कवि आदि सभी से साक्षात्कार आत्म हत्या के विरूद्व की कविताओ मे

---

1 आत्म हत्या के विरूद्व- रघुवीर सहाय प्र0 1967 "आत्म हत्या के विरूद्व" पृ0सं0 86

होता है। जनता विधायक, सचिव, पुलिस, डाकटर, मुख्यमंत्री, चित्रगुप्त सभा, जिलाधीश, पत्रकार, गृहमंत्री ससद आदि सभी का सबूत प्रापत होता है।

"पुलकित उपराष्ट्र कवि
जन गगातट पर बैठे
घिसते थे चन्दन
किसको तिलाकित करे
आज नही जानते
वैसे लोहिया के यहाँ आने जाने लगे है"---[1]

अपनी आत्म हत्या के विरूद्व" की कविताओ मे सहाय ने समाजवादी ढोंग, भाई भतीजावाद, सुविधा की राजनीति, ससदीय प्रणाली का मखौल, बुद्विजीवियों का निरर्थक विद्रोह, हसोडो तथा मसखरो की चापलूसी और हें हे करती हुई भीड़ सब कुछ जैसे एक निरासग अन्दाज मे व्यक्त करने की कोशिश की है। रघुवीर सहाय की "आत्म हत्या के विरूद्व" की कविताओ में किसी राजनीतिक मतवाद की गन्ध नही प्राप्त होती है। वे न तो किसी दल का समर्थन करती है और न तो किसी वाद का प्रचार ही करती है।

---

1 आत्म हत्या के विरूद्व- रघुवीर सहाय, पृ0स0 75

ग) हँसो–हँसों–जल्दी हँसों

हँसो हँसो जल्दी हँसों" रघुवीर सहाय का तीसरा काव्य संग्रह है। जिसका प्रकाशन 1975 ई0 मे हुआ। इस सग्रह की कविताए भी "आत्म हत्या के विरूद्व" सग्रह की कविताओ की तरह छोटी है, लेकिन उनमे अपना एक अलग ही भाव छिपा है। इस सग्रह मे लगभग साठ छोटी–छोटी कविताओ को संकति किया गया है। इन कविताओं मे नैतिकता के क्षरण और गहराते राजनीतिक सास्कृतिक संकट का क्षुब्ध परिवेश बहुत आसानी से देखा जा सकता है।

"हँसो–हँसो जल्दी हँसो" काव्य संग्रह की साठोत्तरी दौर की कविताएं समाज मे उपस्थित मनुष्य विरोधी यथार्थ को पूर्णरूप से उभारने मे सहायक सिद्व होती है। "आत्म हत्या के विरूद्व" की कविताओ मे यह प्रकट करने की कोशिश की गयी है कि सामाजिक अव्यवस्था एवं विसंगतियों के विरूद्व एक व्यक्ति खड़ा होता है, लेकिन सामाजिक सहयोग के अभाव ने थोड़ी देर के लिए वह अकेला पड़ जाता है, लेकिन "हँसो हँसो जल्दी हँसो" संग्रह की कविताओ मे बुर्जुआ लोकतत्र के भीतर आतक और दहशत के बल पर टिकी हुई व्यवस्था मे एक स्वाधीन मनुष्य के रूप मे जीने की स्थितियो को खत्म होते चले जाने का अकेलापन है। इस अकेलेपन की जड मे जो दहशत और आतंक है, वह "हँसो–हँसो जल्दी हँसो" सग्रह की कविताओ मे अनेक बार व्यक्त हुआ है–

"हत्यारे पालम से आकर उतरे है
पालम पर
बच्चे उनसे काफी दूर बैठे है
पालम पर"---[1]

---

1 हँसो हँसो जल्दी हँसो– रघुवीर सहाय प्र0 1975 "फूल माला हाथो में" पृ0स0 –70

लेकिन इन भयावह और डरावनी परिस्थितियो के बीच रहकर भी रघुवीर सहाय जरा सा भी भयभीत नही होते है। वे इन परिस्थितियो से दूर हटकर कहीं छिपना भी नही चाहते है, बल्कि वे ऐसा प्रयास करते है कि ये विनाशकारी परिस्थितियाँ समूल नष्ट हो जाय। अपनी कविता को माध्यम बनाकर वे इन परिस्थितियो के बीच उतरते है

"इस लज्जित और पराजित युग मे
कही से ले आओ वह दिमाग
जो खुशामद आदतन नही करता
कही से ले आओ निर्धनता
जो अपने बदले में कुछ नही माँगती
और उसे एक बार आँख से आँख मिलाने दो"---[1]

आपातकाल लागू होने के ठीक पहले ही आने वाले सभी खतरों का रघुवीर सहाय ने अनुभव किया था, जिसके कारण "हँसो-हँसो जल्दी हँसो" की कविताओ मे आतक भरे समाज और उनके दमन के जो तरीके हैं उनका सफल चित्रण प्राप्त होता है। समाज मे शोषक वर्ग के द्वारा शोषितो के ऊपर होने वाल अत्याचार एवं उनके अधिकारो का हनन इस संग्रह की कविताओ मे सफलता पूर्वक चित्रित किया गया है। शोषक वर्ग भारतीय जनता के समस्त अधिकारो को छीन लेने के प्रयास में है। एक तरफ तो यह शोषक वर्ग भोग की संस्कृति में पहले से भी अधिक लिप्त हो जाने वाला है, और दूसरी तरफ स्थिति ऐसी उत्पन्न हो रही है कि भारतीय जनता को खुद से जुड़ी हुई किसी भी चीज के बारे में मात्र निवेदन करने के अतिरिक्त कुछ भी कहने का अधिकार नही बचने वाला है।

---

1 "हँसो-हँसो जल्दी हँसो- रघुवीर सहाय प्र0 1975 "आने वाला खतरा" पृ0सं0 10

"मै सब जानता हूँ पर बोलता नही
मेरा डर मेरा सच एक आश्चर्य है
पुलिस के दिमाग मे वह रहस्य रहने दो
वे मेरे शब्दो की ताक मे बैठे है
जहाँ सुना नही उनका गलत अर्थ लिया और मुझे मारा"---[1]

इन भयावह परिस्थितियो के बीच भी विडम्बना तो यह है कि सत्ताधारी वर्ग के जिन लोगो ने लोकतत्र के लिए यह खतरा उत्पन्न किया है, वही लोग सकट को प्रकट करने वाले संचार तथा अन्य माध्यमो द्वारा इस बात की भी पुनरावृत्ति करते हुए बिल्कुल नही थकते है कि लोकतत्र तथा देश पर खतरा उत्पन्न हो गया है। आपात काल के दौरान भी यहीं स्थिति उत्पन्न हुई। आपातकाल के दौरान अपने मौलिक अधिकारो से वंचित जनता न तो विरोध मे कोई वक्तव्य दे सकती थी न सभा कर सकती थी। अखबारों पर भी सेंसर लागू कर दिया गया था। दूसरी न्यूज एजेंसियो को समाप्त करके सरकारी न्यूज एजेंसी "समाचार" लागू कर दिया गया था ताकि उस पर सीधा नियत्रण रहे-

"तबसे मैंने समझ लिया है आकाशवाणी मे बन ठन
बैठे हैं जो खबरो वाले वे सब है जन के दुश्मन
उनको शक था दिखला देते अगर कही छत्तिस इंसान
साधारण जन अपने-अपने लड़के को लेता पहचान
ऐसी दुर्भावना लिये है जन के प्रति जो टेलीविजन,
नाम दूरदर्शन है उसका काम किन्तु दुर्दशन"---[2]

---

1 हँसो-हँसो जल्दी हँसो- रघुवीर सहाय प्र0 1975 "दो अर्थ का भय" पृ0स0 4

2 वही " " "टेलीविजन" पृ0सं0 47

रघुवीर सहाय देश मे आने वाली भयावह से भयावह और आतककारी स्थितियो के बीच भी किसी निराशा मे नही फँसते है, और वे इस लज्जित एवं पराजित दौर मे किसी भी कीमत पर अपने को बेचने के लिए तैयार नही है। वे ऐसी स्थिति मे भी खुशामदी और चाटुकार लोगों से अलग स्वाधीन और निर्भय व्यक्ति की तलाश करते है। साथ ही वे ऐसे अभावग्रस्त लोगो की खोज भी करते है जो इस मानसिकता को पीछे छोड आये है कि वे निर्धन अपनी वास्तविक स्थितियो के कारणो को जानते हुए मुक्ति के लिए प्रयास करने वाले हैं, ऐसे निर्धनों की रघुवीर सहाय तलाश करते है----

"धरती के अन्दर का पानी
हमको बाहर लाने दो
अपनी धरती अपना पानी
अपनी रोटी खाने दो"---[1]

रघुवीर सहाय की सिर्फ यही कोशिश नही थी कि किसी यथार्थ को केवल अभिव्यक्त भर कर दिया जाय, बल्कि उनकी कोशिश इस बात की रही कि सवेदना के स्तर पर उस यथार्थ को बहुत ही तीव्रता से महसूस भी कराया जाय। "हँसो-हँसो जल्दी हँसो" सग्रह की कविताए सामाजिक अव्यवस्था मे स्त्रियाँ और बच्चे जिस आत्यंतिक शोषण, पाशविकता और परवशता के शिकार है, उसकी सफल झाँकी प्रस्तुत करती है। आपातकाल लागू होने के पूर्व ही आने वाले सभी खतरों को अनुभव करके रघुवीर सहाय ने पहले ही इगित किया था -

---

1 हँसो हँसो-जल्दी हँसो - रघुवीर सहाय प्र0 1975 "टेलीविजन" पृ0स0 6

"एक दिन इसी तरह आयेगा –रमेश
कि किसी की कोई राय न रह जायेगी --रमेश
क्रोध होगा पर विरोध न होगा
अर्जियो के सिवाय –रमेश
खतरा होगा खतरे की घटी होगी
और उसे बादशाह बजायेगा –रमेश"---[1]

यह विशेष रूप से रेखाकित करने की चीज है कि मुक्तिबोध की कविता में जिस प्रकार एक अबोध शिशु आता है, उसी प्रकार रघुवीर सहाय की कविता मे "एक लडका" "एक लड़की" और "एक स्त्री" आती है। रघुवीर सहाय के प्रस्तुत संग्रह की कविता मे जो लडका आता है, वह तो मात्र एक सामान्य लड़का ही दिखाई देता है, लेकिन कवि की दृष्टि मे वह आने वाले भविष्य का और नयी पीढ़ी का प्रतीक है। उसके मरने मे कवि को भविष्य का मरना दिखाई देता है, और उसकी उपेक्षा मे एक पूरी पीढ़ी की उपेक्षा, जैसे कि एक चिनगारी असमय ही बुझ रही हो–

"एक दिन मेरे अपने जीवन मे ही खत्म होने वाला
है यह खेल
इस घर की दीवार पर मेरी तस्वीर होगी
बच्चे आयेंगे पर मेरी कल्पना में नही अपने
समय से आयेंगे
और उनकी बोली में उनका तर्क नहीं होगा
जिसको आज सुनता हूँ"---[2]

---

1 हँसो–हँसो जल्दी हँसो– रघुवीर सहाय प्र0 1975 "आने वाला खतरा" पृ0स0 10

2 वही " " "जीने का खेल" पृ0सं0 2

यह महत्त्वपूर्ण बात है कि रघुवीर सहाय की "हँसो हँसो जल्दी हँसो" संग्रह की कविताओ मे जो "स्त्री" और "लडकी" आती है वह छायावादी कविताओ की नारी से बिल्कुल भिन्न है। छायावादी काव्य की नारी अलौकिक रूप सम्पन्न थी। उसमे उल्लास और प्रेम था। उसमे आशा थी, लेकिन "हँसो हँसो जल्दी हँसो" सग्रह की कविताओ मे जो "स्त्री" आती है वह बहुत ही बदनसीब है। वह शोषण एव अत्याचार का शिकार तो है, लेकिन वह एक मरती-खपती सच्चाई भी है। "औरत की जिन्दगी" "किले मे औरत" "बड़ी हो रही है लड़की" आदि कविताए औरत के दर्द को उभारती है-

"उस दिन बुढ़िया बीमार पड़ी
मर्दो ने कहा औरतो की बीमारी है
वह बुढ़िया औरत के रहस्य
उन बीस जनो के और तपन की गठरी बन
कोने मे खटिया पर जा करके पहुड़ रही
वह पहुड़ी रही साल भर तक फिर गुजर गयी
औरते उठी घर धोया मर्द गये बाहर
अर्थी लेकर"---[1]

"हँसो-हँसो जल्दी हँसो" सग्रह की कविताएं भी "आत्म हत्या के विरूद्व" की तरह/ ही मामूली अभावग्रस्त जिन्दगी का चित्र प्रकट करती है। "पैदल चलता हुआ आदमी" सहमी डरी लडकी, अपने दर्द के साथ अकेली औरत", खाँसता हुआ फल वाला, आदि इस संग्रह की कविताए सामाजिक बदहाली एवं शोषको के चंगुल में पिसते लोगों का

---

1 हँसो-हँसो जल्दी हँसो" - रघुवीर सहाय प्र0 1975 "किले में औरत" पृ0सं0 22

चित्र प्रस्तुत करती है- काला नगा बच्चा, रिक्शा खीचता मजदूर" आदि कविताए अभाव ग्रस्त जिन्दगी, जीने वाले लोगो का चित्रण करती है-

"काला नगा बच्चा पैदलबीच सड़क पर जाता था
और सामने से कोई मोटर दौडाये लाता था।
तभी झपटकर मैने बच्चे को रास्ते से खीच लिया
मेरे मन ने कहा कि यह तो तुमने बिल्कुल ठीक किया
वही देखकर एक भिखारी मैने उससे यो पूछा
क्या यह साथ तुम्हारे है? वह पलभर ठिठका बोला हाँ"---[1]

रघुवीर सहाय के सग्रह "हँसो-हँसो जल्दी हँसो" की "रामदास" कविता आज की उस क्रूर अमानवीय स्थिति को नगेचित्र की तरह सामने उपस्थित कर देती है, जिसमे "हत्या" जैसी जघन्य, असाधारण और भयानक घटना भी एक अत्यन्त सहज घटना हो गयी है। मामूली आदमी और ईमानदार आदमी हर जगह मारा जा रहा है। "रामदास" कविता मे हत्यारा आता है और तौलकर चाकू मारता है सभी लोगो की उपस्थिति के बावजूद वह हत्या करके सबको ठेलकर आराम से निकल जाता है। इस हत्या की फरियाद कोई सुनने वाला नही है, और रामदास की (डेड बाडी) अनिश्चित समय तक पडी रह जाती है-

"भीड़ ठेलकर लौट गया वह
मरा पडा है रामदास यह
देखो-देखो बार-बार कह
लोग निडर उस जगह खड़े रह
लगे बुलाने उन्हे जिन्हें संशय था हत्या होगी"---[2]

---

1 हँसो-हँसो जल्दी हँसो -रघुवीर सहाय प्र0 1975 "काला नगा बच्चा पेदल" पृ0स0 55

2 वही " " "रामदास" पृ0स0 28

"हँसो–हँसो जल्दी हँसो" सग्रह की कविताए निराला की कविताओ के भाव को प्रकट करती है, जिसमे कि निराला जी ने भी अभावग्रस्त और पतनोन्मुख जीवन की तस्वीर प्रस्तुत की है। निर्धन जनता के शोषण एवं उतपीडन से सहाय बहुत क्षुब्ध थे और वे इस दुर्व्यवस्था के शिकार लोगो के प्रति अपनी गहरी संवेदना प्रकट की है–

"निर्धन जनता का शोषण है
कहकर आप हँसे
लोकतत्र का अन्तिम क्षण है
कहकर आप हँसे
सबके सब है भ्रष्टाचारी
कहकर आप हँसे"–––[1]

इस सग्रह की कविताओ में गरीबी एवं लाचारी से बदहाली की स्थिति को प्राप्त लोगो को सचित्र प्रकट करने का प्रयास दिखाई देता हैं। "भीख माँगती हुई लडकी" सूखे और झुर्रियो से युक्त लोगों के इस सग्रह की कविताओं मे स्थान मिला है–

"वह लडकी भीख माँगती थी दबी–ढँकी
एकाएक दूसरी भिखारिन को वहाँ देख
वह उस पर झपटी
इतनी थोड़ी देर को विनय
इतनी थोडी देर को क्रोध
जर्जर कर रहा है उसके शरीर को"–––[2]

---

1 हँसो–हँसो जल्दी हँसो– रघुवीर सहाय प्र0 1975 पृ0स0 16

2 वही " " है" कविता पृ0स0 69

इसके अतिरिक्त वर्तमान व्यवस्था मे गरीबी मे पलते हुए बच्चो की असुरक्षित जिन्दगी (आमार सोनार दिल्ली,) व्यवस्था द्वारा उनके इस्तेमाल (फूल माला हाथो मे,) उनकी निराशा जन्य ऊब (दर्द) तथा एक बार फिर उनका डरावना भविष्य (जीने का खेल) साक्षात्कार इन सग्रहो की कही कई कविताओ से प्राप्त होता है–

"जो लडकी वह खडी है कमजोर
सास लेती भारी बस्ता लिये
काले पावो ठिठकर
क्या तुम उसके सिर पर लदी
उसके माँ बाप की तरसती
जिदगी देख सकते हो
एक क्षण मे ?"---[1]

स्त्रियो और बच्चो की शोषित जिन्दगी की विडम्बनाओ को लेकर "हँसो–हँसो जल्दी हँसो" सग्रह की कविताऍ इसलिए और महत्त्वपूर्ण है कि ये हमे जिस व्यापक मानवीय करूणा के ससार में ले जाती है, वह ससार की कवि के आत्म दया के विरूद्व होने के कारण भावुकतावाद के दायरे मे नही फँसता बल्कि मानवीय करूणा की रचनात्मकता को एक नयी गति प्रदान करता है– रघुवीर सहाय ने स्वय ही कहा है–

"मै खुद जानना चाहूँगा कि क्या इन कविताओ को पढ़कर पाठक एक तरह की पीडा के विलास में डूब जाते है जिसमे आत्म पीडन का या परपीडन का सुख मिलने लगता है। यानि यह होता है कि उनमें जो भी चरित्र है (वे) उनकी खोज करना चाहते है, उनके पास जाना चाहते है, उनको छूना समझना देखना चाहते है, क्योंकि उनके लिए ये वासतविक हो जाते है"---[2]

---

1 हँसो–हँसो जल्दी हँसो– रघुवीर सहाय प्र0 1975 "आमार सोनार" दिल्ली पृ0स0 62

2 लिखने का कारण– रघुवीर सहाय प्र0 1978 (निबन्ध सग्रह) पृ0स0 161

"हँसो–हँसो जल्दी हँसो संग्रह की कुछ कविताए ऐसी भी है कि जिनमें कविता की एक नयी शैली को जन्म देने की कोशिश की गयी है। "तैरते होटल मे मस्ती के आठ दिन" अगर विज्ञापन शैली मे एक सशक्त कविता है तो "राष्ट्रीय प्रतिज्ञा" तथा बाराबकी आदि कविताओ मे खोखली घोषणाओ ओर नारो की भाषा को व्यक्त किया गया है।

*****

घ) **"लोग भूल गये हैं"**

"लोग भूल गये है" रघुवीर सहाय का चौथा काव्य संग्रह है। इस सग्रह का पहला सस्करण सन् 1982 ई0 मे राजकमल प्रकाशन (प्रा0लि0) नयी दिल्ली से प्रकाशित हुआ। इसके अब तक तीन सस्करण निकल चुके है। "लोग भूल गये हैं" कविता सग्रह के लिए रघुवीर सहाय को सन् 1984 ई0 मे राष्ट्रीय साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित किया गया था। इस काव्य सग्रह मे तिरसठ (63) छोटी बड़ी कविताएं सकलित है। प्रस्तुत सग्रह की कविताए कवि के निरन्तर बढ़ते हुए अनुभवो के पीछे उसकी सामाजिक चेतना के विकास का भी संकेत देती हैं। कवि की चिन्ता है कि उस विकास के बिना कविता को सृजन करने का कोई मतलब ही नही है। इस संग्रह में कला क्या है? विचित्र सभा, नन्ही लड़की, भविष्य, मेरी दुनिया, हिंसा, नशे में दया, मनुष्य मछली युद्ध, स्त्री, औरत का सीना लोग भूल गये है, दयाशकर, अधेड़ औरत, बलात्कार, सघर्ष, हिन्दी, रोग, आजादी, स्वच्छन्द लेखक, आदि कविताए है। इन कविताओ के माध्यम से सहाय ने पतनशील समाज का चित्रण किया है। आज के समाज के प्रति उनकी दृष्टि विरोध की है, किन्तु वे अपने समाज के प्रति अपने काव्यानुभव से यह जानते है कि जो रचना पाठक के मन ने पतन के विरूद्व विकल्प जाग्रत नही करती, वह न तो साहित्य की उपलब्धि होती है और न समाज की। आत्महत्या के विरूद्व की परम्परा में वे उस शक्ति को बचा रखने के लिए आतुर है, जो उन्होने "दूसरा सप्तक" और "सीढियो पर धूप में" पायी थी, और जिस पर आये हुए खतरे को "हँसो-हँसो जल्दी हँसो" मे दिखाने का प्रयास किया है। कवि की यही मान्यता है कि यही खोज नये समाज मे न्याय और बराबरी की सच्ची लोकतत्रीय समझ और आकाक्षा जगाती है, ऐसे समाज की रचना के लिए साहित्यिक और साहित्येतर क्षेत्रों में सघर्ष का आधार बनाती हैं, जहाँ पर जन की यह शक्ति पतनोन्मुख सस्कृति के माध्यमो द्वारा भ्रष्ट की जा रही है" वहाँ पर कवि चेतावनी देता है।

इस सग्रह की कविताओ मे, जिन नैतिक एव मानवीय मूल्यों को लोगो ने भुला दिया है और सस्कृति के सभी नियमो की उपेक्षा करने का प्रयास किया है, उसी की याद दिलाने की कवि ने भरसक कोशिश की है–

"कला और क्या है, सिवाय इस देह मन आत्मा के
बाकी समाज है जिसको हम जानकर समझकर
बताते है औरो को, वे हमे बताते है
वे जो प्रत्येक दिन चक्की मे पिसने से करते है शुरू
और सोने को जाते है
क्योंकि कि यह व्यवस्था उन्हें मार डालना नही चाहती।"–––[1]

जहाँ कही न्याय और समानता की मान्यताए शेष तो रहती है, लेकिन उन्हें लोग समझ नही पाते है और उसके महत्तव से अनभिज्ञ रह जाते है, तो कवि ने इस सग्रह की कविताओ मे उन मान्यताओ से परिचय, कराने का प्रयास किया है। कवि न्याय और समता को बचाने के लिए भ्रष्ट सस्कृति को तोड़ने का प्रयास करता है और तोडने के लिए, तोड़ने के व्यावसायिक उद्देश्य का विरोध करता है। पीड़ा को पहचानने की कोशिश वह ऐसे करता है कि उसी समय उसका सामाजिक अर्थ भी प्रकट हो जाय। "लोग भूल गये हैं" संग्रह की कविताए सामाजिक नैतिकता को बचाने का संदेश प्रस्तुत करती हैं, और समाज मे व्याप्त वैषम्य को समूल नष्ट करने के लिए भी एक अलग प्रेरणा प्रदान करती हैं। व्यक्ति को अपनी सही पहचान कराने मे एवं उससे अवगत कराने में बहुत ही सहायक सिद्ध होती हैं। वस्तुत ये कविताएं लोगो को भ्रष्टाचार एवं अन्याय के विरूद्व खड़े होने में एक शक्ति प्रदान करती हैं–

---

1 लोग भूल गये हैं– रघुवीर सहाय प्र0 1982, कला क्या है, पृ0स0 12

"यह भी दिखा था कि जनता सगठित होकर
आलोचना नही कर पा रही है
और बन्दूक हाथ से चली गयी है
मै नही जानता कि रघुपति का क्या हुआ"---[1]

रघुवीर सहाय का मानना है कि आज के कवि का अपनी परीक्षा के लिए समाज के सम्मुख उपस्थित होना अनिवार्य है। क्योकि आज समाज मे अपने अस्तित्व को एवं समाज से अपने रिश्ते को समझने मे बहुत ही संशय की स्थिति उत्पन्न हो रही है। वे यह भी बयान करते हैं कि आज अन्याय और दासता की पोषक और समर्थक शक्तियो ने मानवीय रिश्तो को बिगाड़ने की प्रक्रिया मे वह स्थिति पैदा कर दी है कि अपने अधिकारो के लिए संघर्ष करने वाले जन मानवीय अधिकार की हर लडाई को एक पराजय बनता हुआ पाते है। संघर्ष की रणनीतियाँ और चुनौतियाँ उन्ही के आदर्शो की पूर्ति करती दिखाई दे रही है जिनके विरूद्ध सघर्ष है, क्योकि सघर्ष का आधार नये मानवीय रिश्तों की खोज नहीं रह गया। न्याय और बराबरी के लिए हम जिस समाज की कल्पना करते हैं। उसमे मानवीय रिश्तो की क्या आकृति होगी, यह तो किसी भी समाज के लिए सघर्ष के दौरान ही बिल्कुल तय होना चाहिए। रघुवीर सहाय इस संग्रह की कविताओ मे मानवीय रिश्तो को बार-बार खोज करने का प्रयास करते हैं और उनको जाँचने, सुधारने का भी प्रयास करते है। सहाय इस सग्रह की कविताओ के माध्यम से यह दृढ़ आस्था व्यक्त करते हैं कि लोग न्याय और बराबरी के आदर्श को नही भूलते है। इतिहास के किसी दौर में कुछ लोग अवश्य ही इन्हे भूल जाते है, लेकिन इन्हें याद कराने के लिए बहुत सारे लोग बचे रहते है।

---

1 लोग भूल गये है- रघुवीर सहाय, पृ0सं0 15

"लोग भूल गये है" के दूसरे सस्करण की भूमिका लिखते समय भी रघुवीर सहाय यह प्रतिपादित करते है कि– "लोग न्याय और बराबरी के जन्मजात आदर्श को नही भूलते, इतिहास के किसी दौर में कुछ लोग इन्हे अवश्य भूल जाते है, पर उन्हे याद कराने के लिए उनसे भी कहीं बड़ी सख्या में लोग जीवित रहते है"---[1]

समाज मे व्याप्त पतन–शोषण एवं उत्पीडन की विभीषिका से सन्तप्त मानवता का चित्रण इस संग्रह मे प्राप्त होता है। साथ ही इस भयंकर स्थिति मे जो लोग इसका विरोध करने का प्रयास करते है– उसे बड़ी ही आसानी से शक्ति के माध्यम से दबा दिया जाता है–

होगा ही अत्याचार और होता रहेगा
यह केवल इतना सच है कि हारे है
हारे है हार भी रहे है हम बार–बार
इस वक्त आज अभी फिर हारे
और यह स्वीकार करना कि हारे है
हर बार ताकत नही दे रहा है"---[2]

समाज मे व्याप्त पतन की स्थिति एव उसके विरोध मे खड़ी होने वाली जनशक्ति का सहार "लोग भूल गये है" काव्य संग्रह मे दिखाई पड़ता है। पूँजीवादी एवं शोषण व्यवस्था के मध्य सामान्य जनता पीस रही है, और उसके दर्द को सुनने वाला कोई नही है। शोषण एव उत्पीड़न के शिकार हुए लोगों को स्वय इसके कारणो की जानकारी बहुत देर मे होती है और जब वे उसका विरोध करने के लिए खडे होते हे तो उन्हे बिल्कुल दबा दिया जाता हैं–

---

1 लोग भूल गये है– दूसरा संस्करण की भूमिका –रघुवीर सहाय, पृ0स0 8

2 वही " " "भविष्य" पृ0सं0 22

"देखो जिनको मारा है उनके चेहरों को
उन पर कोई रग नही है
पर सौदागर जरा देर मे उनमें कोई रग डालकर
उनको कपड़े पहना देंगे चिकनाए आवरण पृष्ठ पर"---[1]

समाज मे चारो तरफ शोषण एव नैतिकता के ह्रास के परिणामस्वरूप सामाजिक ढाँचा बिल्कुल टूटा हुआ दिखाई पड़ता है। मामूली आदमी की कोई पूछ नहीं है और उसे अपनी जीविका के लिए भी तरसना पड रहा है। लेकिन वह इस अव्यवस्था का विरोध करते हुए एवं शासन की पोल खोलने का जब प्रयास करता है, तो ऐसी स्थिति मे उसे आगे नही बढ़ने दिया जाता है-

"काम खोजता हुआ
कुछ न सोचता हुआ
कुछ न बोलता हुआ
वह चला गया युवक
हाथ मे लिये वुरूश
भेद खोलता हुआ"---[2]

सास्कृतिक मान्यताओं के विघटन से एव समाज की दयनीय स्थिति जिसमे कि सामान्य जनता का भविष्य बिल्कुल खतरे से युक्त दिखाई देता है, ऐसी दशा मे "लोग भूल गये है" सग्रह की कविताओं मे इस दुव्यर्वस्था के विनाश के लिए लोग खड़े होते है, लेकिन उन्हे बीच मे ही दबा दिया जाता है, का चित्रण प्राप्त होता है। ऐसी अव्यवस्था के अन्तर्गत जो लोग पल रहे है, उनका न तो

---

1 लोग भूल गये है- रघुवीर सहाय प्र0 1982 "रगो का हमला" पृ0स0 19
2 वही " "एक दिन रेल में" पृ0स0 20

आने वाला दिन ही सुखद प्रतीत होता है, क्योंकि इन्हे विरोध करने का भी भरपूर अवसर नही प्राप्त होता है।

अपने अन्य सग्रह की कविताओ की तरह रघुवीर सहाय प्रस्तुत संग्रह मे भी औरतो की पीड़ा का चित्रण करने का प्रयास किया है। लेकिन इन चित्रों में औरत के प्रति होने वाले अत्याचार के खिलाफ, एक लड़ाई की तैयारी प्रस्तुत करते है। सग्रह की कविताए औरत का वैषम्य पूर्ण दर्जा, दमन एव उसकी असहाय स्थिति की सफल झाँकी प्रस्तुत करती है–

"वह जो था अन्त मे आदर था
वह था उसका सीना आँखो के सामने
उसकी अकेली असहाय
और गैर बराबर औरत
का वह सर्वस्व था और मेरे बहुत पास"---[1]

इस सग्रह की कविताओ में औरत की जो मुस्कान एव खुशी दिखाई देती है, वह मात्र उसकी बाह्य खुशी ही मालूम पड़ती है। उसकी पीठ और उसका सीना यह प्रकट करते हैं कि अब उस दर्द के विरूद्व खड़े होने की बारी आयी है, लेकिन ऐसा समय आने पर भी इस पुरूष प्रधान समाज मे उसे इस तरह दबोच दिया जाता कि वह अपने दर्द के विरूद्व आवाज उठाने का साहस भी नहीं करती है–

"पर उसका चेहरा उसका विद्रोह है
यह कितनी कम औरते जान पाती हैं,
इस भ्रम मे भूली हुई कि वह भविष्य है
वह घुटने मोडकर करवट लेट जाती है"---[2]

---

1 लोग भूल गये है– "रघुवीर सहाय प्र0 1982 पृ0स0 44

2 वही " कवित "स्त्री" पृ0स0 42

समाज मे न्याय एव समानता की स्थिति तभी आ सकती है जबकि समाज मे व्याप्त अत्याचार एव विषमता को समाप्त करके, समानता और नैतिकता से युक्त स्थिति उत्पन्न हो।

बलशाली लोग हमेशा से कमजोर वर्गो का शाषण करते रहे हैं। गरीबो एव असहायो के ऊपर सशक्त लोगो ने तरह-तरह के अत्याचार करके उन्हें पगु बना दिया है-

रघुवीर सहाय व्यक्त करते है-

"ताकतवर लोग खोजते है कमजोर को
एक तरफ अस्पताल, झोपडी हजार वर्ष से
वचित जाति वर्ग लाश लुटे लोग
ढहे घर दुआर जिसको वे अभय दे और
और दूसरी तरफ चित्रकार जो अपने खून से
कागज पर उनकी तसवीर आके
जन के मन भय भरें"---[1]

आज पूँजीवादी व्यवस्था के अन्तर्गत शोषक वर्ग केवल अपनी सुख-सुविधा एव फायदे की बात सोचता है, और किसी से उनका कोई सरोकार नही है। सुविधा भोगी वर्ग हर तरह से समाज का दोहन कर लेना चाहता है-

"देखो अपने बच्चे के दु ख को देखो
जब उनकी देह मे तुम देखो होगे अपने को देखना
वही मुद्राए जो तुम्हारी है बार-बार उन पर आ जाती है
हड्डियाँ जिससे वे बने हैं- एक परिवार की
और बचपन के गुदगुदे हाथ की हल्की सी झलक भी

---

1 लोग भूल गये है -रघुवीर सहाय प्र0 1982 राजकमल दिल्ली, पृ0स0 38

नाच गाना और भोग विलास
फुरसती वर्ग के लडके-लडकियों के शगल बनते है
फिर इनका रोब घट जाता है और ये समाज मे वही कही पैठ
जाते है बिखराव बरबादी और हिंसा बनकर"---[1]

रघुवीर सहाय न्याय और समानता के आद्यन्त पोषक रहे है उनके लिए सामाजिक असामनता एव अन्याय किसी भी दशा मे मान्य नही है। जिस तरह प्रेमचन्द सामाजिक वेषम्य का चित्रण करते हुए "गोदान" मे मध्यवर्गीय जनता को शोषको के विरूद्व खड़े होकर अपनी लड़ाई लडने के लिए एक पृष्ठभूमि तैयार करते है उसी प्रकार रघुवीर सहाय शोषण के विरूद्व जनता को खड़ा होने की प्रेरणा देते है, उनको यह विश्वास है कि आज असहाय जनता के ऊपर जो प्रहार हो रहा है, उस दुव्यर्वस्था का सतत प्रयास से समूल नाश हो सकता है और आने वाली पीढी को इस दर्द से छुटकारा मिल सकता है-

"बच्चो की रोटी की सोच मे पड गया मेरा मन
कितना आसान था प्रेम छोड पैसे की शरण मे आ जाना
प्रेम जो समाज मे न्याय की लडाई है
पैसा जो सिर्फ है मुआवजा मौत का। '---[2]

पतनोन्मुख सस्कृति मे आजादी प्राप्त होने पर भी हम दासता की अनुभूति से मुक्त नही है, और हिन्दी को भी राष्ट्रभाषा का पूर्ण गौरव नही प्राप्त हो पाया है, साथ ही साथ गुलामी की भावना हमारे अन्दर अभी व्याप्त है। सहाय की दृष्टि इस सच की ओर गयी है कि हिन्दी की दासता को भी पूर्णतया समाप्त करने की जरूरत है।

---

1 लोग भूल गये है- रघुवीर सहाय प्र0 1982 राजकमल दिल्ली पृ0स0 49

2 वही " " पृ0स0 67

"जो इस पाखण्ड को मिटायेगा
हिन्दी की दासता मिटायेगा
वह जन वही होगा जो हिन्दी बोलकर
रख देगा हिरदै निरक्षर का खोलकर"---[1]

"आत्म हत्या के विरूद्ध" और "हँसो-हँसो जल्दी हँसो" मे मानवता की सहज पीडा एव शोषितो की दयनीय स्थिति का स्पष्टीकरण करते हुए, सहाय "लोग भूल गये है" सग्रह की कविताओ मे उस पीडा की समाप्ति के लिए एक रणक्षेत्र की नीव तैयार करने की कोशिश करते है, जिससे कि सही न्याय और समानता की स्थिति उत्पन्न की जा सके। भले आज हम आजाद है, लेकिन वास्तविक आजादी तभी मान्य होगी जब समाज मे सर्वत्र सन्तुलित न्याय और समानता की स्थिति व्याप्त होगी। समाज के शोषित और पीड़ित लोग अपनी पीडा से मुक्ति का प्रयास करते है, वे एक लड़ाई लड़ने के लिए तैयार होते है, लेकिन शोषक वर्ग इतना शक्तिशाली है कि असहाय एव पीडित लोगो को झुक जाना पडता है। सहाय शोषण व उत्पीडन के विरूद्ध सतत सघर्ष करते जाने की प्रेरणा प्रदान करते है। मनुष्य अपनी पुरानी सस्कृति एव मर्यादा को जो भूल बैठा है उसे स्वय अपने अधिकारो एव कर्तव्यो की जानकारी नही है, ऐसी दशा मे पतन की स्थिति ही पैदा हो सकती है। आने वाले शासक वर्ग पतनशील सस्कृति को जहाँ पर अन्याय और विषमता का ही बोलबाला है, अपना आदर्श स्वीकार करते है। ऐसी स्थिति मे सामान्य एव मामूली आदमी का हित कहाँ संभव हो सकता है? वह तभी सभव है, जब इस अन्याय एव विषम स्थिति का लगातार विरोध होगा–

---

1 लोग भूल गये है– रघुवीर सहाय प्र0 1982 राजकमल दिल्ली, पृ0स0 78

"दुनिया ऐसे दौर से गुजर रही है जिसमे
हर नया शासक पुराने के पापो को आदर्श मानता
और जनवचित जन जो कुछ भी करते है काम धाम राग रग
वह ऐसे शासक के विरूद्व ही होता है"---[1]

ऐसी स्थिति मे पूर्वजो के द्वारा स्वीकृत मान्यताओ एव न्याय के सिद्वान्तो को अपनाया जाना भी अति आवश्यक है। समाज की बदहाली की स्थिति मे जिसमे कि लोग मानवता एव मानवीय मूल्यो को भूल बैठे है, उसे पुन याद करके अपने अधिकारो के लिए एक लडाई लड़नी होगी, जिसे कि "लोग भूल गये है" सग्रह मे रघुवीर सहाय बहुत ही प्रभावशाली ढग से उभारने का प्रयास किये है-

"और सुधारो
घर मे रह सकते नही हो मगर सारा दिन
कुछ दु ख बाहर से ले आयेगे तुम्हारे घर उस घर के लोग
और लोगो को भी बार-बार घर से बाहर जाना होगा"---[2]

---

1 लोग भूल गये है- रघुवीर सहाय प्र0 1982 "लोग भूल गये हे" पृ0स0 48

2 वही " " पृ0स0 49

(ड) कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ

कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ" रघुवीर सहाय का पाँचवाँ काव्य–सग्रह है। सन् 1989 ई0 मे इस काव्य–सग्रह का प्रकाशन राजकमल प्रकाशन (प्रा0लि0) नयी दिल्ली से हुआ। इस सग्रह मे रघुवीर सहाय की छोटी–छोटी 68 कविताए सकलित है। यह कहा जाता है कि आमतौर पर हिन्दी का हर कवि उम्र के हर अगले पडाव पर थका ऊबा और ठस जान पडता है, लेकिन "कुछ पते कुछ चिट्ठियों" का कवि इससे कुछ भिन्न दिखाई पडता है– इस सग्रह की पहली ही कविता "उनहार" मे कवि कहता है–

"यह किताब अधिक सगठित है
भावो के मुकाबले
जो कभी टहलते कभी मडराते हुए
आते है इसमे पन्नो मे से होकर
पन्नो से नही"---[1]

काव्यानुभव और सामाजिक चेतना–इन दो को अलग–अलग खानों मे न बाँटने और व्यक्ति एव कवि को एक समग्र इकाई बनाने की पुरानी प्रतिज्ञा के अनुसार इस सग्रह तक कवि की विकासोन्मुख प्रवृत्ति दिखाई देती है। रघुवीर सहाय मे प्रखर ऐन्द्रिक सवेदन एव प्रखर राजनीतिक सामाजिक चेतना का सम्मिश्रण है, यही कारण है कि इनकी कविताओ मे यथार्थ न कोरा सतही यथार्थ रहने पाता है, और न तो नकारात्मकता का ही पर्याय बनने पाता है। "कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ" कविता सग्रह इस बात की याद फिर से दिलाता है कि सहाय ने आग्रहपूर्वक सच्चाइयो की चिकनी "काव्यात्मक" सतह को अस्वीकार किया है– और जहाँ औरो को कविता नही दिखती है, वहाँ उन्होने कविता की पहचान करने की कोशिश की है–

---

1 कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ –रघुवीर सहाय प्र0 1989 "उनहार" पृ0स0 11

"तब, उसे बिना बतलाए कविता कैस हो
जब भाषा कवि को लोगो से ही लेनी है
वे लोग तो नही लिखते कविता भाषा मे
उनकी भाषा जो है, विचार दे जाती है।"---[1]

अपने को निरन्तरता मे नया करते जाने वाले अपनी रचना प्रक्रिया के प्रति सजग और आत्मचेता इस कलाकार के "नागर मन की भाव प्रवणता, सूक्ष्मदर्शिता और तटस्थ निर्ममता अब किसी नये परिचय के लिए तरसती नही है। सहज सौदर्य और सूक्ष्म अनुभूति से निर्मित रघुवीर सहाय का काव्य ससार जितना निजी है उतना ही हम सबका है- एक गहरे और अराजनैतिक अर्थ मे वे पूर्णतया जनवादी है।

भारथ भूषण अग्रवाल ने रघुवीर सहाय के साहित्यिक व्यक्तित्व पर टिप्पणी करते हुए लिखा है- "भीड से घिरा एक व्यक्ति जो भीड बनने से इकार करता है और उससे भाग जाने को गलत समझता है, रघुवीर सहाय का साहित्यिक व्यक्तित्व है।"[2]

लोग भूल गये है" सग्रह की कविताए लिखते समय सामाजिक चेतना और रचनात्मक अभिव्यक्ति के जिस दौर के बीच मे कवि अपनी कविताए लेकर पाठको के सामने अपनी परीक्षा के लिए उपस्थित हुआ था, उसका वह दौर अभी तक समाप्त नही हुआ है, भाषा के अनेक प्रकारो पर व्यावसायिक और राजनैतिक कब्जे ने भाषा की रचनात्मकता को अनेक प्रकार से विकृत और कुण्ठित किया है। नई प्रतिभा को सामाजिक चेतना के विषय मे बलपूर्वक अशिक्षित

---

1 कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ, रघुवीर सहाय प्र0 1989 "आज की कविता" पृ0स013

2 कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ–रघुवीर सहाय प्र0 1989 पृ0स0 7

करके मनुष्यो के बीच साझेदारी के सम्बन्ध तोडे है। वे प्रत्येक अनुभव को एक सनसनी और प्रत्येक मनुष्य को एक वस्तु बनाते चले जाते है। यह ध्वश व्यापार की प्रक्रिया प्रतिभा को लगातार लुभाता और पथभ्रष्ट करता रहता है। रचनात्मकता के विरूद्ध इतना बडा अभियान आजादी के बाद दासता की पहली बार एकत्र शक्तियो ने चलाया है

"सच क्या है?
बीते समय का सच क्या है?
क्रूरता, जो कुचलकर उस दिन की गयी
वही सच है उसे याद रख, लिख अरे लेखक
दस बरस बाद बचे लोग समझते होंगे
युग नया आ गया"---[1]

जिस तरह रचनात्मकता और आजादी एक ही मानवीय आकाक्षा के पर्याय है, उसी प्रकार समता की लडाई और कविता भी एक ही मानवीय उत्कर्ष के पर्याय है। आज के बदलते परिवेश मे जहाँ पर शोषण एव उत्पीडन का साम्राज्य व्याप्त है, और उसके विरोध मे खडे होने पर हमे जो पराजय प्राप्त हो रही है, उसमे पीछे मुडकर देखे तो स्वय हमे अपनी भूल का पता चलता है। इतिहास और परम्परा की विकृति के द्वारा एक बनावटी इतिहास का निर्माण और आने वाली पीढी की प्रायोजित अशिक्षा ही हमारी पराजय का कारण है। यही कारण है कि रघुवीर सहाय "कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ" सग्रह मे फिर दोहराते है कि वह रचना जो पाठक या श्रोता के मन मे पतन का विकल्प जागृत नही करती है, तो उससे न तो साहित्य की ही उपलब्धि होती है और न तो समाज की ही। और वह रचना वास्तविक रचना नही होती है–

---

1 कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ– रघुवीर सहाय, पृ0स0–21

"कोई कभी भोर
ताजगी की नवीन परिभाषा लाती है
साहित्य के बगैर
जरा देर जूझकर मेरे इस विस्मय से
दिन की प्रभा मे खो जाती है"---[1]

इन्ही सभी बातो के जवाब मे रघुवीर सहाय ने "कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ" की कविताओ का सृजन किया। सामाजिक विषमता एव शोषण के द्वारा विकृत सस्कृति मे लोग जहाँ पर एकत्र होकर विरोध करने की शक्ति तैयार करते है, लेकिन उन्हे पराजय प्राप्त होती है, का सबूत "लोग भूल गये है" सग्रह मे प्रतिपादित किया गया है। वही आगे चलकर "कुछ पते कुछ चिटिठयाँ" कविता सग्रह में कवि फिर लोगो को एक नया सदेश देने का प्रयास करता है, जहाँ पर भ्रष्ट समाज एव शोषण के विरूद्व पुन खडा होने की बात का सुझाव है। जिससे कि समाज मे सच्ची समानता एवं न्याय का वातावरण विकसित हो सके। रघुवीर सहाय ने इस सग्रह मे चिट्ठियो के रूप मे जो अमर सदेश लिखने का प्रयास किया है, वे चिट्ठियाँ डाक से नही भेजी जा सकती है, क्योंकि पते बदलते रहते है। इस सग्रह मे सकलित कविताए कोई व्यक्तिगत सन्देश नही है, और न तो गश्ती परिपत्र। ये कविताए हर आदमी के पास पहुँचने और बोली या पढी जाने पर चिट्ठियाँ बनती है।

जीवन मूल्यो के अवमूल्यन, अन्धानुकरण और फैशन के तौर पर हम जिस नकारात्मक तथाकथित सस्कृति को बौद्विक और व्यावहारिक स्तर पर अपना रहे है उनकी कचोट और कपट का स्वर उनकी कविताओ मे जगह-जगह मुखरित हुआ है-

---

1 कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ - रघुवीर सहाय, पृ0स0 88

"नारी, चिडियाँ, देश जागरण
बच्चा, प्रकृति, दु ख वासना
अलग–अलग डब्बो में मेरी
पीड़ाए मत बन्द कीजिए
जिन्हें एक मे मिला जुलाकर,
मैने की थी ये रचनाए।"———1

गरीबी एव असहाय अवस्था मे जीने के कारण समाज मे एक वर्ग जिसकी दशा बहुत ही बदतर हो गयी है, सहाय की कविताओ के मुख्य विषय है। "कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ" सग्रह की "अखबार वाला" कविता में कवि ने दो जून रोटी के लिए सघर्षशील अखबार वाले रामू की स्थिति को हमारे सामने उपस्थित करने का पूर्ण प्रयास किया है–

"धधकती धूप मे रामू खडा है
खड़ा भुल भुल मे बदलता पाँव रह– रह
बेचता अखबार जिसमे बड़े सौदे हो रहे है।"———2

औरतो के साथ होने वाले अत्याचार एव उनकी पीडा को कवि ने अपने प्रत्येक सग्रह मे सर्वाधिक स्थान दिया है। औरतो के साथ होने वाली उपेक्षा नीति एव वैषम्य की भावना को वे कदापि स्वीकार नही करते "कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ" सग्रह की कविता मे भी रघुवीर सहाय औरतो के दर्द को अपना वर्ण्य विषय बनाया है। "दयावती का कुनबा" कविता मे उन्होने लाचार औरत की मर्म व्यथा को उभारने की पूरी कोशिश की है–

---

1 कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ– रघुवीर सहाय पृ0स0 78

2 वही " " पृ0स0 75

"इच्छाए दाब कर बदलकर स्वभाव को
जैसे ससुराल मे पसन्द था
रोगो को झेलकर, दिखलाकर सगुन
चार बच्चे पैदा किये"---[1]

रघुवीर सहाय की "कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ" सग्रह तथा अन्य सग्रहो की कविताओ के पढने से निराला, शमशेर, नागार्जुन, मुक्तिबोध, त्रिलोचन आदि की किसी न किसी पडाव पर अवश्य ही याद आती है। रघुवीर सहाय की कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ" सग्रह की कविताएं समाज मे एक नये समताशील समाज के लिए लालायित है। जिसे कविता पैदा तो नही कर सकती है लेकिन उससे पहचनवा सकती है कि मनुष्य के लिए इस समय किस तरह के यथार्थ की आवश्यकता है। उनकी यूरोप मे कविता 1,2,3, और यूरोप मे कविता 4, वहाँ की सस्कृति का चित्रण करती है।

"प्रकृति कठोर है आदमी हिंसक है
यही है यूरोप का रहस्य
सभ्यता मेजों पर गोश्त ही गोश्त है
और छुरी काटे मे नम्रता"---[2]

प्रस्तुत "संग्रह की अपनी कविताओं के माध्यम से एक अमर सदेश प्रस्तुत करते हुए लोगो को यह आशा दिलाते है कि आगे आने वाले समय में वे शोषको के विरूद्व होने वाली लड़ाई मे सफल हो सकते है। वे आशावान हैं कि सामाजिक विषमता एव अन्याय को दूर करने मे उन्हे पूर्ण सफलता प्राप्त होगी। इस नये

---

1 "कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ"- रघुवीर सहाय, पृ0स0 63

2 वही, " " पृ0स0 60

समाज मे व्यक्ति अपने–अपने अधिकारो एव कर्तव्यो का समुचित उपयोग करने का अवसर प्राप्त कर सकेगा–

"मेरी कविता मे ऊषा के
भीतर मेरी मृत्यु भी लिखी
चिडिया के भीतर है मेरी
राष्ट्र भावना, बच्चो मे दु ख
माना सब कुछ गबड़– सबड है,
पर मैने यो ही देखा था"---[1]

(च) **"एक समय था"**

रघुवीर सहाय का यह अन्तिम कविता सग्रह है जो उनके निधन के पश्चात् प्रकाशित हुआ है। सुरेश शर्मा इस सग्रह के सकलन और सम्पादनकर्ता है। राजकमल प्रकाशन (प्रा0लि0) नयी दिल्ली से इस अन्तिम कविता सग्रह का प्रथम सस्करण सन् 1995 ई0 मे प्रकाशित हुआ। इस अन्तिम सग्रह मे रघुवीर सहाय के पुत्र बसन्त सहाय एव उनकी पत्नी विमलेश्वरी सहाय (बट्टू जी) की बहुत सक्रिय भूमिका रही है। इस सग्रह मे अधिकाश कविताए रघुवीर सहाय के जीवन के आखिरी चार पाँच वर्षो की है जो कि अप्रकाशित और असकलित रह गयी थी। इसमे सकलित कुछ कविताए सातवे दशक की भी है जो छपने से रह गयी थी। इन कविताओ को शामिल कर लेने के कारण यह स्पष्ट हो जाता है कि रघुवीर सहाय की कविता का अपना अद्वितीय संसार रहा है।

सहाय जी के निधन के बाद (30 दिसम्बर 1990) उनके लेखन–कारखाने के तमाम कागजो, डायरियो और चिट पुर्जो पर दर्ज उनके आलेख को पढने की कोशिश की गयी, जिसमें ज्यादातर कविताए समाहित थी। यह

---

1 कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ– रघुवीर सहाय, पृ0स0 78

सग्रह उन्ही कविताओ का सकलन है। रघुवीर सहाय की काव्य–सर्जन प्रक्रिया शुरू के वर्षो मे सुनियोजित थी। "आत्म हत्या के विरूद्व" की लम्बी कविताओ के कई प्रारूप व्यवस्थित रूप से लिखे मिलते है। लेकिन धीरे–धीरे उनकी काव्य–रचना–प्रक्रिया की यह व्यवस्था टूटने लगती है। उन्हे जहाँ भी और जब भी काव्य सत्य हासिल होता है, वे तुरन्त उसे वही दर्ज कर लेते है। बाद मे इन काव्य टुकडो को जस का तस रहने देकर या बडा या छोटा करके वे कविताए सभव बनाते है। अपने जीवन के अन्तिम वर्षो मे रघुवीर सहाय जी ने रचने की यह प्रक्रिया अपनाई है। यही कारण है कि ये कविताए किसी कापी मे लिखी हुई नही मिली। ये निमत्रण पत्रो की सादी–पीठ, लिफाफो के रिक्त स्थान, दूतावासो के सूचना पत्रो, यहाँ तक कि सिगरेट की डिब्बियो पर भी लिखी हुई प्राप्त हुई। रघुवीर सहाय इस रचना प्रक्रिया के प्रति हमेशा सक्रिय रहे।

उनके पडे हुए चिट–पुर्जो को एकत्रित करके, सुरेश शर्मा ने "एक समय था" सग्रह के नाम से सकलित एव सम्पादित किया। इस सकलन को तैयार करते समय रघुवीर सहाय की पत्नी विमलेश्वरी सहाय अर्थात् वट्टू जी का पूर्ण सहयोग रहा। श्री अशोक बाजपेयी का भी यह आग्रह था कि "रघुवीर सहाय रचनावली" मे शामिल करने के पूर्व इन अन्तिम कविताओ का सकलन पहले प्रकाशित हो। श्रीमती शीला सन्धू ने सहाय जी की अन्तिम कविताओं के सग्रह को प्रकाशित करना एक कर्तव्य की तरह स्वीकार किया। उनकी दोनो पुत्रियाँ मंजरी जोशी और हेमा जोशी ने भी अपने पूर्ण सहयोग से इन अन्तिम कविताओ को एक काव्य सग्रह का रूप देने मे मदद की। "एक समय था" की कविताओ से स्पष्ट होता है कि रचनाकालकेअन्तिम चरण मे जाकर रघुवीर सहाय की ये कविताएँ पहले जैसी चित्रमय नही रहीं, फिर उनकी निरलंकार शैली मे मूर्तिमत्ता अब भी विद्यमान

है। वह पारदर्शिता– जो उनकी कविता की विशिष्टता रही है अधिक उत्कट सघन और तीक्ष्ण हुई है। भाववाची को– जैसे गुलामी, रक्षा, मौका, पराजय, उन्नति, नौकरी, योजना, मुठभेड, इतिहास, इच्छा, आशा, मुआवजा, खतरा, मान्यता, भविष्य, ईर्ष्या, रहस्य बिना किसी लालित्य और नाटकीयता का सहारा लिये, रघुवीर सहाय कुछ अलग ढग से देखने की कोशिश करते है–

"टूटते हुए समाज का रोना जो रोते है
उनके कल और परसो के आँसुओ का
प्रमाण मेरे पास लाओ
मूझे शक है ये टूटते समाज मे
हिस्सा लेने आये है, उसे टूटने से रोकने नही।"[1]

तमाम बिखरी सामग्रियो मे क्या है ? इसके विषय मे सहाय स्वय कहते है–" जिस सबन्ध की बात सोचकर मैने कुछ कर डालने का उपक्रम किया है वह है क्या? अर्थात् मेरे रद्दी कागजो के ढेर मे छिपे मेरे असबद्ध जीवन के सग्रहीत उन प्रमाणो मे से जो अभी तक पहचानकर ठिकाने नही लगा दिये गये है, वे किस ठौर पहुँचकर किसी अधूरे महाकाव्य का अग बन जायेगे।"---[2]

लेकिन रघुवीर सहाय के चिट–पुर्जो मे छिपा महाकाव्य परम्परित महाकाव्य नही है। सुरेश शर्मा इन अन्तिम कविताओ को सकलित करते समय यह कहते है कि रघुवीर सहाय के चिट पुर्जो मे छिपे तत्व एक महाकाव्य का ही भाव मुखरित करते है।

उनका कहना है कि "महाकाव्य कहने से लोगो को भ्रम हो सकता है कि "रामचरित मानस" जैसी कोई बात मेरे मन मे है तो ऐसा नही। महाभारत जैसी तो हो सकती है। दरअसल महाकाव्य की मेरी कल्पना महाभारत की ही है--- "नया महाभारत

---

1. एक समय था–रघुवीर सहाय, पृ0स0 51
2. वही पृ0स0 7

तो ऐसे ही पात्रो से बनेगा जैसे मेरे पास है। राह चलते– बिल्कुल ठीक–ठाक कहे तो बस मे बैठे, सभा मे भाषण सुनते कभी–कभी कविता सुनते हुए ही कागज पर जो गोदगाद करने लगता हूँ, वह किसी न किसी पात्र का या तो एकालाप होता है या सवाद। अवसर होने पर वह कथाकार की व्याख्या भी हो सकता है। वही सब लिखा हुआ तो असबद्व महाभारत है।---[1]

रघुवीर सहाय के छोटे–छोटे कागजो पर दर्ज असम्बद्व महाभारत के कथित "एकालाप" और "सवाद" एक दूसरे से विच्छिन्न नही है। उनमे सम्बन्ध और निरन्तरता है। उनमे एक विराट परिदृश्य के अलग–अलग हिस्सो को पहचानकर उसे समष्टि रूप मे पहचानने की कोशिश है।

अपनी टिप्पणी के अन्त मे रघुवीर सहाय चिट पुर्जो की सामग्रियो को एकान्विति स्पष्ट करते हुए लिखते है– "इस तरह समय–समय पर लिखी असम्बद्व टिप्पणियाँ और अधूरे वाक्य सब कही न कही एक धारा प्रवाह वक्तव्य के या वर्णन के अश है। यह विश्वास मुझे इस सग्रह को बढाते जाने और इसमे से चुनकर वे अश पहचानते रहने की शक्ति प्रदान करता है जिनसे कि इन टिप्पणियो का भाव स्पष्ट होता है"---[2]

रघुवीर सहाय की एक ललित एव प्रभावशाली टिप्पणी के ये अश इस सग्रह की कविताओं की पृष्ठभूमि और उनकी प्रक्रिया को स्पष्ट कर देते है। अपने अन्तिम दिनो की एक अप्रकाशित कविता मे भी सहाय अपनी इन तितर–बितर सामग्रियो का फिर से पढ़ने ओर उन्हे व्यवस्थित करने की इच्छा व्यक्त करते है–

---

1 एक समय था– सुरेश शर्मा का वक्तव्य, पृ0स0 7

2 वही – रघुवीर सहाय का वक्तव्य, पृ0स0 8

"मुझे एक लम्बी–लम्बी–लम्बी छुट्टी दो
मै अपने कागजो को सभालूँगा
कितनी तरह के ऊबड–खाबड कागज है ये
इनके बीच से पिरोकर अपने दर्द को निकालूँगा
बाहर–भय है भय है भय है
जाने क्यो आशा है कि इनको फिर से सजाने से भय
मिट जायेगा"---[1]

रघुवीर सहाय की अचानक मृत्यु ने उन्हे अपने इनकागजो को सभालने का अवसर नही दिया। उन्हे आशा थी कि इन "ऊबड़–खाबड़" कागजो की सामग्रियाँ उन्हे भय त्रस्त मन स्थिति से मुक्ति प्रदान करेगी और वे जीवन के लिए एक नयी ताकत हासिल करने मे सफल हो सकेगे। "एक समय था" कविता सग्रह इन्ही "ऊबड–खाबड" कागजो मे दर्ज उनकी कविताओ को यथासभव व्यवस्थित करके प्रस्तुत किया गया है।

इन कविताओ का सकलन और सम्पादन करते समय सुरेश शर्मा ने यह महसूस किया कि सहाय जी की ये अन्तिम कविताए उनके सम्पूर्ण कविता लेखन का उपसहार है। ऐसा लगता है कि जैसे इन कविताओ में वे अतीत के अपने सारे किये हुए पर टिप्पणी कर रहे हैं और अपने समय के सघर्ष की परिणति भी बता रहे है।

इस सग्रह की शुरूआत उन कविताओ से होती है जिनमे समाप्त होती बीसवी सदी के सीमान्त पर भारतीय मनुष्य की जिन्दगी का हाल वर्णित है। विदेशी कम्पनियों के 'फैलाते जाल के बीच कम होती आजादी की आवाज इन

---

1 एक समय था – रघुवीर सहाय, पृ0स0 8

कविताओं मे सुनाई देती है। इस व्यवस्था मे जीने के लिए अनन्त समझौते करने को विवश स्वाधीन आदमी के आत्म हनन की तकलीफ है। इसके बाद औरते और बच्चे सब अपमानित और असुरक्षित है। इनकी अन्तिम कविताए यह सिद्व करती है कि कविता नैतिक बयान है। ऐसा बयान जो अत्याचार और अन्याय की बहुत महीन बारीक छायाओ को भी अनदेखे नही जाने देती। उनकी इन अन्तिम कविताओ मे नेक दिली से उपजी या करूणा के चीकट मे लिपटी अभिव्यक्ति नही है बल्कि नैतिक और स्वाभाविक सवदेनाओ का एक स्वाभाविक प्रवाह दिखाई देता है, इनमे अत्याचार एव गैर बराबरी के विरूद्व सघर्ष का भाव प्रकट होता है–

"मै हर अन्याय पर ऐसे मुस्कराता हूँ
जैसे मै उसके विरूद्व हूँ
किन्तु मौन रहता है बोलते तुम हो
और तुम लौटते हो यह समझकर कि
मौन भी रहना एक किस्म का विरोध है"---[1]

अपने अन्य सग्रहो की कविताओ की तरह रघुवीर सहाय इस अन्तिम कविता सग्रह मे औरतो के अधिकारो एव उनकी समानता के लिए प्रयत्नशील हैं। उन पर होने वाले अत्याचार को वे किसी भी स्थिति मे सहन करने के लिए तैयार नही है– "मुस्कान" औरत की पीठ" और "स्त्री का भय" आदि कविताए इस अन्तिम कविता सग्रह मे सकलित होकर औरतों के दर्द को उभारती है–

"औरत की पीठ उसका इतिहास हे
उस पर जुल्म का असर वहाँ देखो
अपने सीने को अगर उसने छिपा रखा हो"---[2]

---

1 एक समय था – रघुवीर सहाय, पृ0स0 72

2 वही " पृ0स0 106

समाज मे व्याप्त–शोषण एव पूँजीवादी व्यवस्था के खिलाफ सहाय हमेशा आवाज उठाते रहे। मामूली एव अभावग्रस्त लोगो की जिन्दगी का सफल चित्रण करके इन्होने अपने काव्य के गौरव को बढाया है। अन्तिम कविता सग्रह मे भी सामाजिक वैषम्य एव अन्याय के विरूद्व रघुवीर सहाय अपनी लडाई लड़ते है और लोगो को यह आशा दिलाते है कि सामाजिक असमानता एव अन्याय के दूर होने पर ही एक स्वस्थ समाज की स्थापना हो सकती है।

प्रस्तुत कविता सग्रह की अधिकाश कविताओ मे ज्यादातर उन दृश्यो की भरमार है, जिसके माहौल मे आतक व्याप्त हे। इस सग्रह के अन्त मे पत्नी विमलेश्वरी सहाय और मृत्यु सम्बन्धी बहुत सारी कविताए सकलित है। ये सभी कविताए सहाय जी के दूसरे काव्य सग्रहो मे अलग से नही दिखाई पडते है। पत्नी के अकेलेपन, तेजी से भागती उम्र, तथा उसकी असहायता पर कवि ने अपना बहुत कुछ भाव व्यक्त किया है।

"हम दोनो अभी तक चलते–फिरते है
लोग बाग आते है हमारे पास
हम–भी मिलते जुलते रहते है
एक हौल बैठ गया है, मगर मन मे
कि यह सब बेकार है
हममे से किसी को न जाने कब
जाना पड जा सकता है
हम दोनो अकेले रह जाने को
तैयार नही"---[1]

---

1 एक समय था – रघुवीर सहाय, पृ0स0 144

"एक समय था" के अन्त मे सहाय की मृत्यु सम्बन्धी कविताए है। अपने मित्रो या परिवार मे सहाय जी कभी अपनी मृत्यु की चर्चा नही करते थे। लेकिन जीवन के अन्तिम कुछ वर्षो मे उन्हे अपनी मृत्यु का गहरा बोध था कि वे तेजी से मृत्यु की ओर बढ रहे है। इसलिए घूम-फिरकर वे लगातार मृत्यु पर ही लिखते है।

*****

अध्याय – द्वितीय

राजनीतिक चेतना

अध्याय – द्वितीय

राजनीतिक चेतना

1 स्वतत्रता पूर्व एवं स्वातन्त्र्योत्तर राजनीतिक परिदृश्य

2 रघुवीर सहाय की राजनीतिक चेतना– नेहरूवाद, लोहियावादी, समजावाद, साम्यवाद, गाँधीवाद।

3 स्वतत्र भारत मे लोकतत्र विविध सन्दर्भ

4 आपातकालीन मुखरता

5 1975 के पश्चात भारतीय राजनीतिक स्थिति विविध प्रसंग

6 राष्ट्रभाषा हिन्दी और रघुवीर सहाय

ऍ1.ऍ स्वतन्त्रतापूर्व एव स्वातन्त्र्योत्तर राजनीतिक परिदृश्य

रघुवीर सहाय ने जब हिन्दी साहित्य मे प्रवेश किया, उस समय देश मे आजादी के लिए अनेकानेक प्रयास जारी थे। यद्यपि एक कवि के रूप मे सहाय की पहचान सन् 1951 मे प्रकाशित "दूसरा तार सप्तक"से होती है, लेकिन इसके पहले ही उनकी काव्य रचना शुरू हो गयी थी। उन्होने 1946 ई0 मे लिखना शुरू किया ओर पहली बार उनकी कविता "आदिम सगीत" शीर्षक से "आजकल" के अगस्त 1947 के अक मे प्रकाशित हुई थी। यह आजादी के विल्कुल पूर्व का समय है। उसके बाद उनकी रचनाए क्रमश प्रकाशित हुईं। सदियो से दासता की बेडियो मे जकडे-भारत वर्ष की जो दुर्दशा अग्रेजो द्वारा की गयी, एव देश को खोखला करने की जो भूमिका अग्रेजो ने निभाई है, उसको सहाय जी ने अपनी आरम्भिक कविताओ मे अभिव्यक्त करने का प्रयास किया है। तत्कालीन राजनीतिक परिदृश्य ऍस्वतत्रता से पूर्वऍ इस स्थिति मे पहुँच चुका था कि अग्रेजो को सत्ता छोडने के लिए मजबूर किया जा रहा था। अग्रेजी सत्ता की नीव लडखडा रही थी। यद्यपि अग्रेज शासक भारत के स्वतत्रता प्रेमियो को तरह-तरह से प्रलोभन देकर बने रहना चाहते थे, लेकिन वे असफल सिद्व होते है। उन्हे सत्ता छोडने के लिए विवश होना पडा। यद्यपि अग्रेज जाते-जाते ऐसी चाल अवश्य चले जिससे भारत का पाकिस्तान मे विभाजन हो गया। अग्रेजो को भारत छोडकर जाना पडा। रघुवीर सहाय ने अपनी कुछ प्रकाशित कविताओ मे तत्कालीन स्वतत्रता पूर्व के परिदृश्य प्रस्तुत करने का प्रयास किया है -

"आज धरा नेएक बार सूरज का फेरा लगा लिया है
आज शेष हो गया वर्ष भर समय कि जिसमे
धरा और सुन्दर बन सकती थी पल–पल मे,
कुछ समय लगेगा सुख के दिन आते–आते
आओ हम मिहनत निबटा ले गाते–गाते
इस जीवन
जिसमे आशाए है, सपने है रो–रोकर
हम नही करेगे तिरस्कार" ---[1]

अग्रेज ने स्वतत्रता के पश्चात् भारत को खोखला करके जिस स्थिति मे छोड गये थे और उनको हटाने के लिए भारतीयो ने जो अथक प्रयास किया है, उसकी भी बहुत कुछ झलक रघुवीर सहाय कविताओ मे प्राप्त होती है। स्वतत्रता के पूर्व ऐसी स्थिति सामने आ रही थी कि देश को आजादी मिलना बहुत ही मुश्किल है। एक अनिश्चय की स्थिति व्याप्त थी, लेकिन अनवरत सघर्षो से स्वतत्रता प्रेमियो ने आजादी को हाँसिल करके अनिश्चय और सन्देह की स्थिति को समाप्त कर दिया। सहाय जी ने इन तत्त्वो को अपनी कविताओ मे उभारने का प्रयास किया है –

"दुनिया अपनी तिरछी कीली पे घूमती रही है
एक के बाद एक –ऊँची नीची धरती पे उजले दिन
मेली राते, गयी है बीत, लढकती हुई, शोर करती हुई
जेसे रेलगाडी के निकल जाने पे तकवाहा किसान
खेत के तीर मडेया मे तनिक घूम
एक क्षण नेचे की निगरानी को बाये हुए मुँह से हटा
उसको देखता है ऐसे
मेने देखा है उन्हे धूप मे बेठे–बेठे।

---

1 प्रदीप, दिसम्बर – 1948

जब कभी पीछे से कन्धे पे हाथ रख के मेरे
चौंका कर मुझको निमत्रण देने आया हे अतीत
अपने पुरखो के इस अतीत की धूए
जैसी लपकती हुई परछाइयो को"---[1]

सहाय जी सर्वथा गुलामी के विरोधी रहे है और जीवन के चतुर्मुखी विकास के लिए स्वतत्रता को अति आवश्यक माना हे। इसलिए आजादी मिल जाने के बाद भी देश मे तरह-तरह की राजनीतिक समस्याए थी, जिनसे प्रभावित होकर तत्कालीन समाज और पतन की स्थिति को प्राप्त हो गया, उसकी भी एक झॉकी सहाय की कविताओ मे प्राप्त होती है। उनकी असली काव्य-यात्रा का आरम्भ ही स्वतत्रता के तुरन्त बाद ही होता है, इसलिए तत्कालीन राजनीतिक परिदृश्य एव स्वातत्र्य सघर्ष का जीता-जागता सबूत रघुवीर सहाय की कविताओ मे प्राप्त होता है। उन्होने स्वतत्रता को आधार बनाकर बडे उत्साह के साथ अपनी कविताओ एव गद्य रचनाओ मे आजादी के प्रति अपनी भावनाओ को व्यक्त किया है। "दिल्ली मेरा परदेश" की भूमिका मे उन्होने स्वय कहा है कि -

"मेरे जैसे कई लेखको के लिए जो आजादी के वर्ष 1947 मे लिखना शुरू कर चुके थे, उसके बाद के करीब दस वर्ष एक तरह के उत्साह के वर्ष थे। उत्साह सबमे था, पर हम कुछ अलग ही थे। हम लोग राष्ट्र के नाम पर स्थापित किये जाने वाले हर किस्म के दकियानूसीपन की आलोचना बिना भय के कर सकते थे। हमें अस्पष्ट सही, विश्वास था कि राष्ट्र को हम

---

1 दूसरा तार-सप्तक- सपादक अज्ञेय, रघुवीर सहाय की कविता "अनिश्चय" पृ0स0-151

ही बना रहे है, हमारे पिछली पीढी के लोग तो केवल कालक्रम के सयोग से अधिकारी स्थानो पर है, उनकी सृजन शक्ति क्षय हो रही है, और वे एक नये राष्ट्र की रचना का सकल्प सिर्फ दोहरा रहे है। हम इसके विपरीत प्रयोग कर रहे है, दुनिया को और अपने देश को समझ रहे है और कुछ नयी प्रतीतियाँ और सवेदनाए विकसित कर रहे है जो आगे रचनात्मक शक्तियों के काम आयेगी।" ----[1]

उन्नीस वर्षीय रघुवीर सहाय ने सन् 1948 मे अपनी कविताओ को जिस डायरी मे सकलित करने का प्रयास किया है, उसे उन्होने "सपने और सबेरा" शीर्षक से अभिहित किया है। यह शीर्षक बहुत कुछ अर्थो मे उस मन स्थिति को व्यक्त करता हे जो स्वतत्रता सघर्ष के उत्तरार्द्व के वर्षो मे बनी थी। यह निश्चित है कि आजादी मिलने के पूर्व, आजादी को पाने के जो सपने थे, आजादी मिलने के बाद उससे सयुक्त आजादी हाँस्लि कर लेने का जो सबेरा था, उसे उन्होने अपनी डायरी मे लिखा है-

"परिणय की पीडा के अतिरिक्त धरा पर दु ख हे बहुतेरे
दु ख वातायन खोलो, आँसू के परदे सरकाकर देखो
कितने दु खग्रस्त अभागो से अब तक हम ये आँखे फेरे

उनके हित यह आँस् सिरजो
उनके सुख के सपने देखो
मेरे स्वर मे अपना स्वर दे
उन स्वर हीनो की जय बोलो"---[2]

---

1 "दिल्ली मेरा परदेस" की भूमिका मे रघुवीर सहाय का वक्तव्य पृ0-2 प्रकाशन मेकमिलन कम्पनी आफ इण्डिया लि0 दिल्ली-1974

2 रघुवीर सहाय की अप्रकाशित - डायरी से " रचना तिथि 2-10-1947

सहाय की डायरी मे जहाँ "सपने और सबेरा" शीर्षक लिखा गया है, वहाँ पहले सुबह लिखकर काटा गया है, इसके बाद सबेरा लिखा गया है। इस प्रकार यह "सबेरा" तत्काल किसी सुखद स्वप्न भग के बाद का नही है, बल्कि अच्छे स्वप्न के बाद का सहज सबेरा है, जिससे कुछ करने का दायित्व, उत्साह तथा प्रमाण जुडा हुआ है। "विश्ववाणी" के जून 1948 अक मे रघुवीर सहाय की जो कविता छपी है, उसका शीर्षक है – "निशा के अतिथि"।

स्वतत्रता मिलने के पश्चात् सहाय की मन स्थिति मे जो परिवर्तन आया है, उसे यह कविता स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त करती है। कविता के आरम्भ मे कवि पहले इस एहसास को व्यक्त करता है कि सुबह हो गयी है (उष्ण रश्मियो से सूरज अब जगा रहा है, और नीद के सपनो की वेला भी खत्म हुई) लेकिन अन्तत कवि महसूस करता है कि रात्रि–स्वप्न के बीत जाने के बावजूद इस नयी सुबह मै सपनो से मुक्त होना सभव नही है।

आजादी मिलने के बाद की तत्कालीन राजनीतिक परिवेश जिसके प्रति लोगो को एक आशा लगी थी, का भी चित्रण रघुवीर सहाय की कविता मे प्राप्त होता है –

> मुझे न सपने छोड सकेगे
> यह प्रभात का कर्मक्षेत्र मे नेह निमत्रण
> ठुकराऊँगा नही करूँगा नही पलायन
> किन्तु स्निग्ध छायाओ मे क्षणभर मुस्काकर
> चलने मे कुछ बात और है, हे सजीवन
> पहले आया करते थे, बीती रातो के सपने
> ऊब आते हे आने वाले नये दिनो के"---[1]

---

1 विश्ववाणी– जून 1948, रचना तिथि 24-4-1948

1947 में प्राप्त हुई "स्वतत्रता" एक नयी आशा और एक नया विश्वास पेदा कर रही थी। अप्रेल–मई 1951 ई0 के "प्रतीक" मे सुरेन्द्रनाथ त्रिपाठी ने स्वतत्रता के पश्चात् बदलते सन्दर्भ मे गेर मार्क्सवादी कवियो के दृष्टिकोण की व्याख्या की है जो इस प्रकार है–

"भारतीय गाहित्य की परिस्थितियाँ अब बदल चुकी है। भारत की स्वतत्रता प्राप्त होने के साथ ही साहित्य की ओर आशाए बँधी। यद्यपि यह अवश्य है कि उसे निष्कटक विकास के लिए वातावरण तत्काल नही नही मिल पाया, लेकिन इस प्रकार की आशा की जाने लगी कि हमारे साहित्य तथा उसको जीवित रूप देने वाली हमारी भाषा को जिस राष्ट्र सरक्षण की अपेक्षा है, वह उसे प्राप्त होगा, ओर हमारे देश मे एक नूतन साहित्य परम्परा का आरम्भ होगा। सहाय जी का यह मानना था कि हमारे साहित्यकारो तथा कलाकारो के प्राथमिक उद्योगो, विस्तारो एव उडानो मे अवरोध उपस्थित करने वाली दासतामूलक परिस्थितियो का अब कोई भय शेष नही रह गया है, जिससे स्वस्थ विकास ओर सृजन के लिए मार्ग बिल्कुल स्वच्छ है। आज की परिस्थितियो के प्रभाव मे निर्मित साहित्य मे दु खवाद एव पीडा उस रूप मे नही मिलेगी जो कि कल के साहित्य की विशेषता थी।"---[1]

---

1 प्रतीक अप्रेल–मई 1951 पृ0 स0 37

यहाँ पर श्री त्रिपाठी तत्कालीन साहित्य लेखन की सम्पूर्ण स्थिति को समग्र रूप मे तो प्रस्तुत नही करते, लेकिन रचनाकारो के एक समुदाय की खास और प्रमुख प्रवृत्ति को अवश्य रेखाकित करते है।

"देश को आजादी तो प्राप्त हो गयी थी, लेकिन शासन की रूपरेखा एव तरह-तरह के कार्यो का सचालन कैसे हो? यह बात तत्कालीन देशप्रेमियो के लिए एक चुनौती का विषय था। देश को प्रत्यक्ष रूप से साम्राज्यवाद से तो मुक्ति मिल गयी थी। दूसरे महायुद्व के दौरान सोवियत रूस की बहादुर जनता ने फासिज्म को इतनी चाट दी थी कि एशिया, अफ्रीका, लातीनी अमरीका के अन्तर्गत साम्राज्यवादी शक्तियो की अपने उपनिवेशो मे स्थिति लडखडाने लगी थी। इस परिस्थिति के फलस्वरूप उपनिवेश राष्ट्रो के स्वाधीनता सग्राम मे तेजी आयी। भारत इन राष्ट्रो मे सबसे पहले मुक्त होने वाला उपनिवेश था। इसलिए सहाय और उनकी युवा पीढी के लिए एक नये युग मे प्रवेश का उत्साह स्वाभाविक ही था। लेकिन सच्चिदानन्द, हीरानन्द वात्सायन अज्ञेय के शब्दो मे- "युद्ध समाप्त होकर भी नही हुआ, जो लोग पहले इसलिए लडे थे कि सघर्ष बन्द हो, उन्हे बाद में इसलिए लडना पडा कि और कई सघर्ष चालू रखे जाँय।"----[1]

क्योकि आजादी मिलने के साथ ही देश के शर्मनाक विभाजन के बाद साम्प्रदायिकता की एक आँधी आ गयी, जिसमे सामूहिक कत्ल ओर बलात्कार की बहुत सारी घटनाए होने लगी। ये घटनाएं आदमी के भीतर दहशत, अविश्वास ओर अनास्था पैदा कर रही थी। यह आजादी के बाद के स्वप्न के तुरन्त बाद ही उभर कर आने वाला कटु यथार्थ था।

---

1 प्रतीक-3 1948 पृ0स0-119

डा0 नामवर सिह का विचार रहा है कि –

"पन्द्रह अगस्त 1947 की स्वाधीनता प्राप्ति के साथ स्वतत्रता सघर्ष का जो नया दौर आरम्भ हुआ, उसने साहित्य मे इस यथार्थ और उस स्वप्न के अन्तर्विरोध को एक नया सन्दर्भ और नया आयाम दे दिया"---[1]

स्वतन्त्रता प्राप्त हो जाने के बाद साम्राज्यवादी स्वार्थ और अर्द्ध सामन्ती, अर्द्ध–पूँजीवादी सत्ता की राजनीति ने देश की जनता को अपनी जमीन और अपने स्वाभाविक परिवेश से काटकर अपने ही घर मे शरणार्थी बनने को मजबूर कर दिया। 30 जनवरी सन् 1948 ई0 को गाँधी जी की हत्या ने भारतीय जनता के भविष्य के प्रति विश्वास पर भयानक चोट पहुँचायी। इस घटना चक्रो के दबाव मे पुराने मूल्यो का टूटना एव नयी मन स्थिति का बनना स्वाभाविक था। उस समय रचनाकारो का ऐसा भी समूह था, जो ओपनिवेशिक स्वतत्रता को अन्तिम लक्ष्य नही मान रहा था, क्योकि उनके लिए पुरानी साम्राज्यवादी शासन व्यवस्था से इस नयी शासन व्यवस्था मे कोई बहुत बडा अन्तर नही था। यह भी सोचा जा रहा था कि राजनीतिक स्वतंत्रता मिल जाने का तात्पर्य यह नही था कि भारत के अर्थ तत्र का ओपनिवेशिक स्वरूप खत्म हो गया हे। ब्रिटिश पूँजी वहाँ पर अब भी अड्डा जमाये थी। इसी तरह सामन्ती अवशेष भी बरकरार था। युद्व ने अर्थतत्र मे असतुलन उत्पन्न कर दिया था। देश के विभाजन के परिणामस्वरूप जिस तरह उत्पादक शक्तियो का विस्थापन और विश्रृखलन हुआ, उसने परिस्थिति को और भी बदतर बना दिया था। मुद्रास्फीति से रोजमर्रा की जरूरत की चीजो का अभाव, बेरोजगारी, तथा अकाल के खतरे ने जनता मे असतोष पैदा कर दिया।

---

1 आलोचना – 18 पृ0स0 66

इन परिस्थितियो के उत्पन्न होने का स्पष्ट कारण यह था कि "साम्राज्यवाद के पुराने शासन यत्र को ज्यो का त्यो अपना लिया गया था। उसी प्रकार की नोकरशाही थी, वही अदालते थी, वही पुलिस थी ओर दमन के तरीके भी वही थे, जिसके परिणामस्वरूप जनता की सही लोकतात्रिक सत्ता की स्थापना के लिए शुरू किये गये तेलगाना के ऐतिहासिक सघर्ष के दबाने के लिए नयी सरकार की फौज और पुलिस ने भारत की शोषित लेकिन क्रान्तिकारी जनता पर नये शासन के आरम्भिक तीन वर्षो मे बहुत ही बबर्रता के साथ 1982 बार गोली चलाई, 3784 आदमियो को जान से मारा, ओर करीब 10,000 को जख्मी किया, 50,000 को जेल मे बन्द किया ओर जेलो के अन्दर 82 राजबन्दियो को गोली से उडा दिया।"---[1]

सम्यक् दृष्टि से देखने पर पता चलता हे कि तत्कालीन युग यथार्थ इतना जटिल और बदतर हो गया था कि उसे वेज्ञानिक दृष्टि के अभाव मे समझा नही जा सकता था। एक तरफ जहाँ पर ससद पर तिरगे झण्डे का लहराना उत्साहबर्धक दृश्य था, वही पर दूसरी तरफ वास्तविक जीवन स्थितियो के ओर भी बदतर होते चले जाने का बोध गेर मार्क्सवादी दृष्टि के कवियो की कविताओ मे प्रवृत्तिगत विरोधाभास को उत्पन्न कर रहा था।

"नयी कविता" के इन खेमो के सन्दर्भ मे रघुवीर सहाय की अपनी एक अलग ही स्थिति है। वे समाजवाद से प्रेरित राजनीति मे विश्वास करते थे जिसमे कि प्रत्येक व्यक्ति को अपना विकास करने का समुचित अवसर प्राप्त हो। सन् 1950 के आस-पास प्रगतिशील लेखक सघ एव जीवन यथार्थ से बिल्कुल निकट सम्पर्क होने के कारण सहाय की कविताओ मे

---

1 भारत , वर्तमान और भावी - रजनी पामदत्त- पृ0स0 287-88

सीधे ही सामाजिक यथार्थ आया। लेकिन प्रगतिशील लेखक की गोष्ठियो मे स्थापित किये जाने वाले आलोचना के जो प्रतिमान निर्धारित किये गये, उससे सहाय बिल्कुल असहमत थे। परिणामस्वरूप वे प्रगतिशील लेखक सघ से अपने को अलग करके अपने साथी कृष्णनारायण कक्कड तथा नरेश मेहता के साथ लखनउ लेखक सघ की स्थापना मे शामिल हुए, "जो कि प्रगतिशील विचारो से जुडा अवश्य था लेकिन यान्त्रिक नही था।"---[1]

अपने इन साथियो के साथ मिलकर सहाय ने लखनऊ लेखक सघ का जो परिपत्र तैयार किया था, उसके प्रथम पृष्ठ पर ही उनका कहना था– "सामाजिक विकास मे समाज के अन्य सचेत अगो की भाँति लेखक का भी दायित्व होता है--- आज हमारे समाज मे त्रास और कुण्ठा का वातावरण है, और सास्कृतिक क्षेत्रो मे महत्वपूर्ण परिवर्तन हो रहे है। ऐसी परिस्थिति मे लेखको का कर्तव्य है कि वे पूर्ण उत्तरदायित्व के साथ जन चेतना के स्वस्थ विकास का प्रयत्न करे। हम मानते है कि कलात्मक सृजन का मूल स्रोत सामाजिक वास्तविकता है और परिवर्तनशील सामाजिक वास्तविकता के प्रति जागरूक रहना कलाकार का कर्तव्य है।--- युद्ध शोषण–भय और आतक समाज के स्वस्थ विकास मे अवरोध उत्पन्न करते है। लेखको का कर्तव्य है कि इन्हे उत्पन्न करने वाली शक्तियो का विरोध करते हुए शान्ति, समृद्वि और विचार स्वातत्र्य का पथ प्रशस्त करे"---[2]

रघुवीर सहाय यह भी स्वीकार करते है कि "शमशेर बहादुर का यह कहना मुझे बराबर याद रहेगा कि जिन्दगी मे तीन चीजो की बडी सख्त जरूरत है– "आक्सीजन, मार्क्सवाद और वह शक्ल जो हम जनता मे देखते है।"---[3]

---

1 कल्पना अगस्त 1965, पृ0 76

2 "लखनऊ लेखक सघ" के परिपत्र का पहला पृ0 4 फरवरी 1950 को स्वीकृत।

3 "दूसरा तार सप्तक" प्र0 1951 भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन काशी

अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर द्वितीय विश्वयुद्ध की समाप्ति एव राष्ट्रीय स्तर पर साम्राज्यवाद के अन्त का भ्रम प्रयोगशील कवियो के मस्तिष्क मे आशा और उत्साह से युक्त बदलाव लाने मे बहुत सहायक सिद्ध हुआ, भले ही उपनिवेशवाद से मुक्ति तथा गणतत्र की घोषणा के बीच की अवधि मे देश तरह–तरह की यत्रणा के भयानक अनुभवो से गुजर चुका था। लेकिन गणतत्र की घोषणा, नये सविधान के अमल मे आने एव पचवर्षीय योजना जैसे विकास कार्यक्रमो के आरम्भ ने जनमानस मे विश्वास की एक नयी लहर पैदा कर दिया जिससे वामपथियो के विचारो मे नरमी का बडा कारण कम्युनिष्ट पार्टी की नीति मे आया परिवर्तन भी था। कलकत्ता मे पार्टी की दूसरी काग्रेस मे केन्द्रीय समिति ने बी0टी0 रणदिवे के नेतृत्व मे तत्कालीन स्थिति को परिभाषित करते हुए यह विचार सामने प्रस्तुत किया था कि– "माउण्ट बिटेन योजना मे जनता को जो कुछ भी दिया गया है, वह वास्तविक नही है, बल्कि एक झूठी आजादी है।"---[1] इसके विपरीत कुछ लोगो ने इस आजादी को वास्तविक आजादी माना। श्री अजय घोष और श्रीपाद अमृत डागे आदि के लिए भारत की आजादी झूठी नही थी। वे लोग आजादी प्राप्त होने के पश्चात् भारत को सर्वप्रभुता सम्पन्न एव गणतत्र के रूप मे स्वीकार करते है।

तत्कालीन भारत सरकार की विदेश नीति वामपथियो को प्रतिकूल मालूम पडी, उन्ही दिनो जेलो मे बन्द अधिकाश कम्युनिस्ट छोडे गये थे, और बगाल तथा मद्रास के वामपथी सगठनो पर से बहुत सारे प्रतिबन्ध हटा लिये गये। एक नये सविधान के द्वारा लोकतात्रिक अधिकारो की गारटी एव बालिग मताधिकार के आधार पर निशिचित आम चुनाव ने एक प्रतीक के रूप मे जनमानस को लोकतात्रिक व्यवस्था का बोध करा दिया था, जिसके परिणामस्वरूप इतिहास मे सम्मिलित होने वाली शक्तियो को अपना स्थान भी निर्धारित होता

---

1 डाक्युमेन्ट्स आफ द हिस्ट्री आफ द कम्युनिष्ट पार्टी आफ इण्डिया वाल्यूम –7 पृ0स0 8

दिखाई पडा।

सक्रमण के इस नये मोड पर सन् 1951 ई0 मे प्रकाशित "दूसरा तार सप्तक" की कविताओ पर इस परिस्थिति का प्रभाव स्वाभाविक था। सहाय की कविताए "दूसरा तार सप्तक" से प्रकाशित होती हुई अनेक कविता सग्रहो के रूप मे सामने आईं। आजादी के तुरन्त बाद इन कविताओ का सृजन हुआ है। इसलिए इन कविताओ पर स्वतत्रता पूर्व और स्वतत्रता के पश्चात् की बहुत सारी घटनाओ का समावेश है। स्वतत्रता के हिमायती सहाय ने अपनी कविताओ मे स्वतत्रता के लिए होने वाले हिसात्मक और अहिंसात्मक आन्दोलनो को प्रमुख स्थान दिया है। सचमुच । सहाय हमारे सामाजिक–राजनीतिक जीवन के पिछले 40–45 वर्ष के इतिहास की उलझनो से गुजरकर रचनात्मक अभिव्यक्ति के स्तर पर सघर्ष करते हुए उस जगह आ पहुँचे थे, जहाँ कोई कवि फिर से अपने तमाम पिछले अनुभव पर एक बडी नजर डालता है।

> "नवयुग की आजादी का, नव युग की आजादी।
> इतने मे किसी ने टोककर जैसे डपट दिया
> "देख, सुन, समझ, अरे घर घूस जनवादी।
> चौक देखा कोई नही, सुना केवल ढप्–ढप्
> आँगन मे गेहूँ का कूडा–फटका रही
> सोलह सेर वाले दिन देखे हुई दादी।"---[1]

सहाय अपने बहुत से समकालीनो से इस बात मे महत्वपूर्ण भिन्नता लिए हुए थे कि उन्होने अपनी आधुनिकता और अपने जनतात्रिक आदर्शो को एक कहावत की तरह नही पा लिया था, बल्कि उन्हे अपने रचनात्मक और सामाजिक व्यवहार मे बार–बार खोजते, स्थिर करते, बरतते और बदलते हुए

---

1 सीढियाँ पर धूप मे– रघुवीर सहाय प्र0 1960 भारतीय ज्ञानपीठ काशी पृ0स0 174

अर्जित किया था। रघुवीर सहायक के रचनाशील व्यक्तित्व की सबसे बडी विशेषता शायद उनकी सम्पन्न ओर आत्म प्रबुद्ध जनतात्रिक सवेदनशीलता ही थी, लेकिन उनकी शक्ति इस बात मे नही थी कि वे जनतात्रिक मूल्यों के "पक्षधर" उद्घोषक या वकील थे, बल्कि उनकी विशेषता इस बात मे थी कि उन्होने इन मूल्यो को निर्दिष्ट और इनके पक्ष को परिभाषित मानकर नही नकारा, अपितु सबकी सही छानबीन थी, जिसमे कि जनतत्र एव समाजवाद की सही भावना समाहित थी।

सहाय के काव्य-सग्रह आजादी के बाद के सम्पूर्ण विवरणो को प्रस्तुत करते है। आजादी मिलने के पश्चात एव सन् 1950 ई0 मे जब हमारे देश का सविधान लागू हुआ, उसी के ठीक बाद 1951 ई0 मे दूसरा "तार सप्तक" प्रकाशित हुआ जिसमे सहाय ने अपने राजनीतिक तेवर को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। "आत्म हत्या के विरूद्व" सग्रह मे उनका राजनीतिक और सामाजिक विवरण कुछ ओर ही उभरा हुआ प्रकट होता है। सरकार की नीति एव उसके कार्यक्रमो, पचवर्षीय योजनाओ मे निर्धारित तरह-तरह के कार्यक्रमो का जहाँ प्रस्तुतीकरण प्राप्त होता है, वही पर पूँजीवादी व्यवस्था के अन्तर्गत दबे हुए लोगो का सफल चित्रण रघुवीर सहाय की कविताओ मे प्राप्त होता है, जहाँ पर शोषित वर्ग हमेशा शोषको के शोषण का शिकार बनकर जी रहा है ओर सरकार के प्रतिनिधियो द्वारा इस शोषित वर्ग की उपेक्षा की जा रही है –

"कितनी दूर कितनी दूर राजधानी से अकाल
मक्खन लो रोटी लो
चलो वहाँ हो आये

सस्कृति की गुद्गुदी, करूणा की झुरझुरी बहस की भुखमरी ले आये, बहस-बहस तहस-नहस दूब हल्दी अच्छत देख आये देवी-दउता का ठाँव पानी बिना सुना

मक्खन लो रोटी लो
चलो वहाँ हो आये
देख आये दिग्विजय नारायण सिह ने
क्या किया भोला राम दास का
अलग–अलग खाती–पकाती इस जाति ने
क्या किया जाति पूछने के बाद प्यास का" ---[1]

राष्ट्रीय आन्दोलन की विरासत से भी रघुवीर सहाय ने अपनी कोई मिथकीय पहचान नही कायम किया। उन्होने स्वतत्रता सघर्ष के तमाम जीवित अशो को सामाजिक जीवन मे पहचानने की कोशिश की। सहाय ने यह पता लगाया कि पहले की बहुत सारी परम्पराओ को अलग–अलग सामाजिक शक्तियाँ किस प्रकार से व्यवहार मे ला रही है और यह कि इनके जीवन पोषक तत्वो की रक्षा आज किस प्रकार की जा सकती है। यह बात बिल्कुल भुलाई नही जा सकती है। कि रघुवीर सहाय के परिचमी परिचम परस्ती या परिचम विरोध या एक साथ दोनो के कुटिल कुचक्र मे फॅसने के बजाय ठोस यथार्थ की साकार और विवेकपूर्ण आलोचना से ही अपनी दिशा निर्धारित की।

वे मुक्तिबोध के बाद के सचमुच पहले कवि है जिन्होने हमारे समय के गम्भीर और सर्वव्यापी सकट की ऐतिहासिकता को इतनी सम्पूर्णता के साथ सामने रखा है। इस सकट का वर्णन बहुतेरे कवि करते है। लेकिन रघुवीर सहाय की कविता एक तरह से इस सकट की प्रखर और विस्तृत आलोचना प्रस्तुत करती है। वस्तुत उनकी कविता प्रतिपादित करती हे कि आखिर क्या–क्या दाँव पर लगा हुआ हे ओर अभी क्या–क्या बचा हुआ हे?

भारतीय समाज और राज्य व्यवस्था को फाँसीवादी पुनर्गठन की भूमिका खास तौर पर पिछले बीस वर्षो मे जिस तरह बनकर सामने आयी है, सहाय की

---

1 आत्म हत्या के विरूद्व – रघुवीर सहाय प्र0 1967 राजकमल दिल्ली पृ0 स0 22–23

कविता की एक नजर लगातार उसकी क्रियाविधि पर रही है। इस कठिन दोर मे अपमान और व्यथा का भार उठाये हुए भी वह इसकी अन्तरग कथा को खोलकर कहती रही है –

"चार बुद्विजीवी घास पर बेठे हुए क्रान्तिवार्ता
हर कोई अपने को विद्रोह न करने के लिए फटकारता
अन्त मे बचा एक ठस कार्यकर्ता–पार्टी की शक्ति
घर छोड आया अपढ बच्चो को शहर मे विचरता
विचारता किसी दिन एक प्रबल उथल पुथल
बदल देगी कस्बे की चेतना
बडे कष्ट से मे पिछले कुछ बरसो मे
अपने को खीचकर लाया था दर्पण तक
उसमे जब देखा, देखी, एक भीड
मेरी तरह परिया चिकनाये हुए"---[1]

(2) **रघुवीर सहायकी राजनीतिक चेतना नेहरूवाद, लोहियावादी, समाजवाद, साम्यवाद, गाँधीवाद**

एक जनवादी एव समाजवादी कवि होने के कारण सहाय ने तत्कालीन राजनीतिक सामाजिक ढाँचे को समझने का भरसक प्रयास किया है। उन्होने नेहरू युग को भलीभाँति देखा और उसकी राजनीतिक, सामाजिक बनावट को जिस तरह समझा वेसे बहुत कम लोग समझ पाये।

"सन् 1950 और 1960 के बीच नेहरू का प्रभाव अपने शिखर पर था। इस दशक मे मध्यवर्ग की आकाक्षाए तेजी से बढने लगी, पूँजीपति वर्ग की पूँजी पेदा करने वाली मशीने अपेक्षा से अधिक अच्छे परिणाम देने लगी और शासक राजनैतिक दल का आत्मविश्वास और अहकार बढा। हालाँकि सामान्यजन इस विकास का खामोश दर्शक बना रहा। अपनी आवाज मे ही गुम और

---

1 आत्म हत्या के विरूद्व– रघुवीर सहाय 1967 राजकमल दिल्ली पृ0 21–22

आत्म सन्तुष्ट नये लेखन मे भी यथार्थ ओर भ्रम के बीच की अथाह खाई को तब तक पहचाना नही गया, जब तक कि राष्ट्र को 1962 ई0 मे चीन युद्व का भारी झटका नही लगा। बताते है कि आत्म स्वीकृति के अन्दाज मे नेहरू ने यह स्वीकार किया कि अब तक राष्ट्र एक स्वप्न मे जीवित था और अब आधुनिकता की ओर धकेला गया है"।---[1]

यद्यपि राजनीतिक कर्म के क्षेत्र मे आलोचना की गुजाइश कम होती है, लेकिन सहाय राजनीति को हमेशा एक आलोचक कर्म की तरह देखा। वे आज के पत्रकारो की तरह यथास्थितिवादी राजनीति के फुटकर विक्रेता नही थे। उनका अपना एक समाज दर्शन था और इस समाज दर्शन का उन्होने लगातार विकास किया। उनकी अपनी वह जमीन रही है जिसमे किसी का प्रवेश निषिद्व नही है। मूलत सेक्युलर अर्थात लोकिक, विवेक सम्मत, द्वन्द्वात्मक मानववादी और लोक तात्रिक चिन्तन प्रणाली मे विश्वास करते थे। नेहरू की विचारधाराओ से भी वे परिचित थे।" वे नेहरू के बहुत सारे क्रान्तिकारी विचारो से असहमत ही थे। क्योकि सहाय जी एक समाजवादी जनवादी साहित्यकार होने के कारण समाजवाद को ही प्रोत्साहन देकर तत्कालीन राजनीतिक परिवेश मे फेले वेषम्य का डटकर विरोध प्रस्तुत करते है।

राजनीति तो उनके काव्य का प्राण है। वह सवेदना के रूप मे उपस्थित हुई है- जेसा कि-

"यही मेरे लोग है
यही मेरा देश है
इसी मे रहता हूँ
इन्ही से कहता हूँ

---

1 इण्डिया सिस इडेपेडेस- सोशल रिपोर्ट - आल इण्डिया -1947 - 1972 पृ0स0 304 स0 श्यामा चरण दुबे।

अपने आप और बेकार
लोग–लोग–लोग चारो तरफ है हमारे तमाम लोग
खुश और असहाय
उनके दु ख अपने आप और बेकार"----[1]

नेहरू की मृत्यु के कुछ दिनो बाद अक्टूबर 1965 मे रघुवीर सहाय ने चीन युद्व के सन्दर्भ मे अपने विचार व्यक्त करता हुए कहा कि– "उस समय साहित्य मे खासी खलबली मची थी, उस समय सबको दो चीजो की चिन्ता थी– देश की और नेहरू की। आज नेहरू नही है, पर देश है और पहले से ज्यादा मजबूत है, क्योकि अब उसे सिर्प अपनी फिक्र करनी है। नेहरू के अवसान के बाद जो हिन्दी कविता लिखी गयी। उसके बडे हिस्से मे सत्ता ओर व्यवस्था एक अमूर्त प्रत्यय के रूप मे सामने आयी है।"[2] किन्तु सहाय जैसे कवि ने सत्ता की सस्कृति के विविध रूपाकारो को शिनाख्त करने की कोशिश की है। हम यह कह सकते है कि जिस प्रकार प्रेमचन्द की कहानियाँ समूचे राष्ट्रीय स्वतत्रता आन्दोलन के समाजशास्त्र को विश्लेषित करती है, उसी प्रकार रघुवीर सहाय की कविताए स्वतत्रता के बाद के दशको के समूचे भारतीय परिवेश की, उसमे आर्थिक, राजनीतिक, विकास के विरोधो से युक्त मानव जीवन के समाजशास्त्र की व्याख्या करती है। अपने परिवेश की जिन विसगतियो को सहाय ने उभारने का प्रयास किया है। उसमे व्यक्ति के चारो ओर असगत व्यवस्था का ढाँचा, भीड, ससद, चुनाव, मतदान, जुलूस, मत्री, अकादमी, पुलिस सबको विषय बनाया है। देश के मूर्धन्य राजनीतिज्ञो नेहरू आदि का भी यह रवेया था कि राजनीति मे सभी वर्गो का उचित प्रतिनिधित्व न हो। रघुवीर सहाय की

---

1 आत्म हत्या के विरूद्व– रघुवीर सहाय, पृ0 1967 राजकमल दिल्ली पृ0स011

2 कल्पना अक्टूबर– 1965

प्रखर चेतना ने इसे समझा था, वे लिखते है- "इह लोकिकवाद का सही अर्थ कभी पूरे भारतीय समाज पर लागू नही किया गया, क्योंकि सत्ता के स्थायित्व के हित मे यथास्थितिवादी राजनीति मे एक वर्ग को पिछडा बनाये रखना था और विभाजन की विकृत परिणति को ही आजादी बताते रहना था।"[1]

नेहरू ने जिस राजनीतिक विचारधारा से प्रेरित होकर नये सामाजिक ढाँचे के पक्ष मे थे, उसमे अधिकतर उच्चवर्गीय लोगो का ही समावेश था और वे भी बुर्जुआ लोकतत्र के समर्थक थे, जो सहाय जी को बिल्कुल मजूर नही रहा है। सहाय जी पर पूर्णरूपेण मार्क्सवादी प्रभाव था। आजादी मिलने के पश्चात् एव भारत मे लोकतत्र की स्थापना हो जाने के बाद, सहाय जी ने उभरे हुए पूँजीवाद का जमकर विरोध किया, एव पूँजीपतियो के प्रति अपनी कटुता प्रकट की। समाजवादी विचारो से अभिप्रेरित होने के कारण रघुवीर सहाय ने आम जनता के दर्द को समझते हुए राजनीतिज्ञो को अवगत कराने की अपील की। जब स्वतत्रता प्राप्ति के एक दशक बीत गया, ओर दूसरा आम चुनाव भी सम्पन्न हो गया और प्रथम पचवर्षीय योजना ने भी कोई प्रभाव नही दिखाया तो उन्ही दिनो समाजवादी नेता डा0 राममनोहर लोहियो ने जेल से उत्तर प्रदेश के जेलमत्री को एक पत्र लिखा। जिसमे क्रमश एक हरिजन पिता और पुत्र की भुख से मृत्यु की सूचना थी। इसके साथ ही पत्र मे तत्कालीन प्रधानमत्री जवाहर लाल नेहरू को राष्ट्रहता कहा गया। सहाय इन सभी विचारधाराओ से प्रभावित होकर अपनी कविताओ की रचना करते है। मार्क्सवाद से प्रभावित होकर उन्होने अपनी कविताओ एव गद्य रचनाओ मे कुलीन वर्ग के राजनेताओ एव शोषको के प्रति अपना विरोध अभिव्यक्त करते है।

राम मनोहर लोहिया के शिष्यत्व मे पले बढे रघुवीर सहाय, सदेव से समाजवाद के ही पोषक रहे है ओर देश मे लोगो के बीच वैषम्य को समूल नाश करने के पक्ष

---

1 अर्थात, रघुवीर सहाय, पृ0स0 32

मे रहे हे। उनकी राय मे पूँजीवाद से शोषण एव अन्याय को बढावा मिलता है। केवल समाजवाद एव साम्यवाद के द्वारा ही वैषम्य को दूर किया जा सकता है। देश आजाद भले हो गया है, लेकिन वास्तविक आजादी का अनुभव तभी हो सकता हे जब देश मे शोषण एव वैषम्य की स्थिति को पूर्णतया समाप्त किया जाय। रघुवीर सहाय स्वच्छ एव स्थायी जनतत्र के पोषक रहे है। "आत्म हत्या के विरूद्ध" की भूमिका मे रघुवीर सहाय ने लिखा है– विराट भीडो के समाज को बदलने का आज सिर्फ एक ही साधन है, वह हे सत्ता का उपयोग जो समुदाय का एक–एक व्यक्ति अलग–अलग निर्णयो से हाथो मे देता है"----[1]

वे समाजवाद के नाम पर स्वाग करने वाले राजनेताओ के प्रति अपनी तीखी प्रतिक्रिया प्रकट करते हे–

> "इस नयी सृष्टि मे उठती–गिरती है है कोई चीज दूर
> घर के भीतर एक थुल–थुल राजनीतिक देह मे
> जो भी गतिशील है अपनी ओर से जीने के लिए लडता है
> अपराधी से आते है राज्यपाल, मुख्यमत्री विधायक
> बख्शे हुए से जाते है
> और एक बहुत–बडे पिजडे मे जोर से चीख मारता हे
> एक मोटा सुग्गा
> जेसे उसी मे राजा की जान हे"---[2]

सहाय जी गाँधीवाद से भी प्रभावित थे। गाँधी के बहुत सारे सिद्धान्तो को आत्मसात करके वे सच्चे समाजवाद के लिए अपनी दलील प्रस्तुत करते है, जिसमे अन्याय एव वैषम्य को समाप्त करके सबको अपने चतुर्मुखी विकास के लिए समुचित

---

1 आत्म हत्या के विरूद्ध की भूमिका– रघुवीर सहाय का वक्तव्य –

2 वही, पृ0 – 36

अवसर प्रदान किया जाता है। वे उस राजनीति के समर्थक थे जिसकी नीव समाजवाद पर टिकी हो और जिसमे हर वर्ग के लोगो को समुचित प्रतिनिधित्व प्राप्त होता है। अन्याय, अस्पृश्यता एव शोषण के वे सख्त खिलाफ रहे है। इसलिए उन्हे नेहरू जी के भी विचार पसन्द नही थे, क्योकि नेहरू जी की राजनीति मे बुर्जुआ लोकतत्र (कुलीन एव श्रेष्ठ लोगो का लोकतत्र) को मान्यता प्राप्त थी, जबकि ाहिया एव गाँधी जी की राजनीति मे सबको बराबर दर्जा प्रदान करने की कोशिश की गयी थी। गाँधी जी का सर्वोदय स्वय ही समाजवाद की नीव को प्रशसा करता रहा। लेक्नि गैर जिम्मेदार राजनेताओ ने अन्याय एव दासता को ही प्रश्रय देने का प्रयास किया, परिणामत समाज मे से दो ऐसे वर्ग सामने आये जिसे शोषक एव शोषित इन दो रूपो मे जाना जाता है। शोषक वर्ग ने अपनी नीव मजबूत करते हुए, धीरे-धीरे बहुत सारे आम आदमियो को अपने शोषण का शिकार बना लिया, जिससे शोषित वर्ग क्रमश बदतर स्थिति को प्राप्त होता गया। इन सबके पीछे राजनीतिक दाँव पेच की सशक्त भूमिका थी। गाँधी जी ने अन्याय, शोषण एव अत्याचार का विरोध करते हुए अहिंसात्मक साधनो का प्रयोग किया है। उनका प्रयास बहुत कुछ समतामूलक समाज की स्थापना थी। इन सभी तत्त्वो की स्पष्ट छाप रघुवीर सहाय की रचनाओ मे प्राप्त होती है। रघुवीर सहाय जनता को अन्याय एव शोषण के विरूद्व खडे होने के प्रेरित करते हुए लिखते है-

"आज ऐसी ताकते काम कर रही है, जो कि आपकी कोशिशो को खत्म कर देती है। एक जगह ऐसी आती है जहाँ पर दहशत जिन्दगी का अनिवार्य अग बन जाता है"---[1]

---

1 लिखने का कारण- रघुवीर सहाय प्र0 1978 दिल्ली राजपाल एण्ड सन्स पृ0स0 155

ससद जो लोकतत्र को कायम रखने की प्रतिनिधि सस्था है, वह हिन्दुस्तान मे ज्यादातर गेर जिम्मेदार और भ्रष्टाचारी प्रतिनिधियो मे भरा है। जिसमे सर्वाधिक प्रतिनिधि शोषक शासक दल के है, जिनके पूर्वाग्रहो और मूर्खताओ के बीच जनता के सही प्रतिनिधियो की आवा॰, दबा दी जा रही है। भ्रष्टाचार मे आकण्ठ डूबे हुए है ये सभी प्रतिनिधि ससद मे ऐसी बहसो और माँगो से जुडे हुए है, जो अत्यन्त शर्मनाक है–

"सेना का नाम सुन देश प्रेम के मारे
मेजे बजाते है
सभासद भद–भद–भद कोई नही हो सकती राष्ट्र की
ससद एक मन्दिर है जहाँ किसी को द्रोही नही का जा सकता
दूध पिये मुह पोछे आ बेठे जीवनदानी गोद"---[1]

इसी बात को लेकर लेनिन ने भी अपना विचार व्यक्त किया था कि पूँजीवादी लोकतत्र मे ससद एक गपशप की केवल एक दुकान रह गयी है, जिसमे बातचीत तथा बहस के जरिये आम आदमी को बेवकूफ बनाया जाता है। पेशेवर मत्रियो और भ्रष्ट सासदो की व्यवस्था पोषक विशाल पार्टियाँ जनता को मूर्ख बनाने के लिए "सयुक्त मोर्चा का गठन करती है, जिसमे यह देखा जाता है कि बुर्जुआ लोकतत्र मे सत्तापक्ष और बुर्जुआ प्रतिपक्ष दोनो ही जनता की तरफ बिल्कुल ध्यान नही देते है–

"दस मत्री बेईमान और कोई अपराध सिद्ध नही
काल रोग का फल है अकाल अनावृष्टि का
यह भारत एक महागद्दा है प्रेम का
ओढने–बिछाने को, धारणकर
धोती महीन सदानन्द पसरा हुआ"---[2]

---

1 आत्महत्या के विरूद्व– रघुवीर सहाय प्र0 1967 राजकमल –दिल्ली पृ0स0 28

2 वही पृ0स0 29

)3(स्वतंत्र भारत में लोकतंत्र· विविध सन्दर्भ

भारतीय लोकतत्र को लक्ष्य करके रघुवीर सहाय ने **यह प्रतिपादित करने** की कोशिश की हे कि बुर्जुआ लोकतत्र के उपकरणो के दुरूपयोग से उसके ढाँचे मे आम जनता शोषण और यातना की आत्यान्तिक स्थितियो से गुजर रही है। सहाय ने ठीक ही लिखा हे कि "लोकतत्र ने हमे इन्सान की शानदार जिन्दगी और कुत्ते की मौत के बीच चाँप लिया है"---[1]

सहाय ने देश की राजनीतिक स्थिति एव लोकतत्र की व्यवस्था एव अव्यवस्था को पहचानने का भरसक प्रयास किया है-

1947 के बाद भारतीय शासन व्यवस्था मे "लोकतान्त्रिक ढाँचे को शोषक-शक्तियो के हितो से सम्बद्व रखने का प्रयास किया गया, परिणामस्वरूप जनता के लोकतत्र को सभव बनाने के सारे प्रयासो को शोषक वर्गो ने विफल करने का निरन्तर प्रयास किया है। भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन का नेतृत्व भी राष्ट्रीय पूँजीवादी वर्ग के ही कब्जे मे था। इसलिए 1947 के सत्ता हस्तान्तरण के बाद राज-सत्ता की बागडोर इन्ही लोगो ने सभाली। उनकी यही चेष्टा रही कि हिन्दुस्तान मे एक ऐसा लोकतत्र कायम हो पूँजीपति-जमीदार वर्ग जो सर्वथा हितेषी हो। इस बात को साकार करने के लिए वे लोग भारत के लोक तान्त्रिक ढाँचे को पश्चिम के विकसित देशो के लोकतान्त्रिक ढाँचे की नकल मे रखा। अपनी रचनाओ मे सहाय ने लोकतत्र के नाम पर लोकतांत्रिक सस्थाओ और उपकरणो को भ्रष्ट करने वाले जनप्रतिनिधियो के अश्लील चरित्र का पर्दाफाश करते हुए उस पर प्रहार किया है

---

1 आत्म हत्या के विरूद्व -1967- राजकमल दिल्ली, रघुवीर सहाय का वक्तव्य पृ०स० 8

"सिहासन ऊँचा है, सभाध्यक्ष छोटा है
अगणित पिताओ के
एक परिवार के
मुँह बाये बैठे है लडके सरकार के
लूले काने बहरे विविध प्रकार के
हल्की सी दुर्गन्ध से भर गया सभाकक्ष
सुनो वहाँ कहता है
मेरा प्रतिनिधि
मेरी हत्या की करुण कथा।"---[1]

आज जो भी लाभकारी योजनाए बनती है। उनमे सामान्य जनता की बहुत कम ही भागीदारी होती है। राजनेता भी अपनी अपनी ढपली अपना-अपना राग अलापते है। उन्हें केवल अपने विकास और स्वार्थ की चिन्ता है। सामान्य जनता से उन्हे कुछ लेना-देना नही है। सहाय इस विचारधारा के विरोधी रहे है, और उनके अनुसार देश मे विकास एव स्थायी सुख शान्ति तभी स्थापित हो सकती है जब राजनीति मे स्थिरता एव सफल राजनेताओ का चयन करके ससद और विधान मण्डलो मे भेजा जायेगा। सहाय जी यह प्रतिपादित करने की कोशिश करते है कि राजनीतिक हवा देश की प्राण वायु है। उन्होने यह माना है कि सफल एव सच्चे लोकतात्रिक वातावरण मे ही भारत जैसे विशाल देश का विकास सम्भव है। लेकिन जब तक शोषको एव पूँजीपतियो द्वारा सामान्य जनता का शोषण होता रहेगा, तब तक भारतीय लोकतत्र की सार्थकता नही सिद्ध हो सकती है। उन्होने यह भी पुष्टि की है कि हमारी वास्तविक आजादी तभी चरितार्थ होगी जब हमारे देश के प्रत्येक नागरिक को राजनीतिक अधिकारो के

---

1 आत्महत्या के विरूद्ध- 1967 - राजकमल दिल्ली, कविता मेरा प्रतिनिधि पृ0 18

प्रयोग का समुचित अवसर प्राप्त होगा। उन्होने महर्षि "अरविन्द" की इस विचारधारा की सस्तुति की है कि "राजनीतिक स्वतत्रता राष्ट्र की प्राणवायु है।"---[1]

भारतीय लोकतत्र की अव्यवस्थाओ का विरोध करने के लिए जब कोई जनशक्ति खडी होती है तो उसे रोजी-रोटी से वचित कर देने की धमकी से सत्ता पक्ष सहमत कर लेता है। "सहाय भारत मे लोकतत्र की इस त्रासदी की ओर सकेत करते है -

"लोकतत्र के लिए इससे अधिक क्षयकारी बात और क्या होगी कि प्रत्येक असहमति को रोजी-रोटी के अधिकार से वचित करने का अदृश्य डर दिखाकर दबाया जाय। पर लूटो और जल्दी अमीर हो की सस्कृति को वही लोकतत्र चाहिए जहाँ 100 प्रतिशत सहमति हो और विवाद सिर्फ लूट के बँटवारे को लेकर हुआ करे।"---[2]

सहाय की कविताए एव गद्य रचनाए नयी कविता एव साठोत्तरी कविता के दोर मे लिखी गयी है। फलत अपने सग्रहो मे उन्होने तत्कालीन जनतात्रिक चुनावो की तरफ भी सकेत किया है ओर सरकार की नीति, आर्थिक दृष्टिकोण एव सत्ता लोलुप भ्रष्ट नेताओ का पर्दाफाश किया है। अपने को सफल बनाने के लिए राजनेतागण हर प्रकार के भ्रष्टाचार, बूथ केपचरिंग, सच्चे एव ईमानदार लोगो की हत्या जेसे जघन्य अपराधो को करने से बिल्कुल नही चूकते है। "अर्थात्" मे इस ओर सकेत है- "आम चुनाव के बाद के माहोल मे हारे लोगो की परेशानियाँ समझने वालो की बडी कमी दिखाई दे रही है, परेशानियाँ

---

1 आधुनिक भारत का इतिहास- विपिन चन्द्र -प्रथम सस्करण (एनसीईआरटी) दिल्ली पृ0स0 19

2 अर्थात् - रघुवीर सहाय- सपादक-हेमन्त जोशी 1994 राजकमल प्र0 दिल्ली पृ0स0 131

बताने वालो की इफरात है। "चुनाव मे बूथ कब्जा किया गया, वोट पड जाने के बाद मत पत्र का डब्बा खोलकर बदला गया, इका के पास बेतहासा पैसा था, जीप-वीडियो लाउडस्पीकर सब कुछ जबर्दस्त था , हॉं हम भी बॅंटे हुए थे, मिली-जुली सरकार का विचार किसी वोटर को जमा नही, दोस्तो ने वादा-खिलाफी की, सहानुभूति लहर काम कर रही थी हिन्दू वोट हमसे छिनकर इका के पास चला गया---"[1]

भारतेन्दु हरिश्चन्द ने "अन्धेर नगरी" और "भारत दुर्दशा" मे तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक परिदृश्य के बहुत सारे विवरण जिस प्रकार प्रस्तुत करने की कोशिश की है उसी प्रकार सहाय ने आजादी के बाद (जहॉं पर हम अपने को (स्वतत्र और जनतत्र मे रहने का दावा करते है) के शोषण एव उत्पीडन के दृश्य को व्यापक स्तर पर उजागर करने का प्रयत्न किया है। यह शोषण अग्रेजो द्वारा न हाकर अपने ही देश के पूॅंजीपतियो द्वारा किया जा रहा है। सामान्य जन की अपनी कोई पहचान नही है। सहाय जी ने सामाजिक परिवर्तन हेतु भी लोकतात्रिक राजनीतिक व्यवस्था मे परिवर्तन होना आवश्यक माना है- "समाज को बदलने के लिए राजनीतिक दल का सगठन, विचारो का सगठन, उसके अनुरूप ऐसे काम जिनसे कि सत्ता का सतुलन समाज मे बदलना शुरू हो या बदल जाए- ऐसे राजनीतिक कर्म के अभाव मे एक ऐसा आदमी जिसमे सच्चाई को पकडने और अपने शिल्प के साथ- उसकी मुठभेड करने को अपना कर्म माना है, वह बहुत अकेला अपूर्ण और असहाय महसूस करता है।"---[2]

---

1 अर्थात्- रघुवीर सहाय सपादक हेमन्त जोशी - राजकमल प्र0 दिल्ली 1994 पृ0स0 17

2 लिखने का कारण- रघुवीर सहाय - 1978 राजपाल एण्ड सन्स दिल्ली पृ0स0 104

भय, आतक एव अधिकारो के हनन से साधारण एव समाज का लाचार आदमी दिन प्रतिदिन लाचार ही होता जा रहा है। कहने के लिए वह समाजवादी लोकतत्र की व्यवस्था के अन्दर है, लेकिन उसकी जिन्दगी का कोई मूल्य नही है। वह शोषण एव अत्याचार का शिकार बनकर जीता है।

"निकल गली से तब हत्यारा
आया उसने नाम पुकारा
हाथ तौलकर चाकू मारा
छूटा लोहू का फव्वारा
कहा नही था उसने आखिर उसकी हत्या होगी"---[1]

वास्तव मे हमारे लोकतत्र पर जिन और जेरो लोगो का कब्जा है, और जिस कब्जे की वजह से लोक कल्याण की जगह आतक लोक की सृष्टि होती है वह रघुवीर सहाय का मुख्य कथ्य था। अपने इस कथ्य के प्रति रघुवीर सहाय का मोह (यह मोह समकालीन कवियो के लिए स्पृहणीय है) इतना जबरदस्त था कि उनकी कविता निरन्तर एक भयभीत कारूणिक ओर मौन सवाद सा करती प्रतीत होती है। हत्यारा रामदास की हत्या करके सीना तानकर निकल जाता है। उसे पकडने वाला कोई नही है, क्योकि हमारा लोकतत्र ही भ्रष्ट और भीड तत्र हो गया है। जहाँ पर अकिंचन असहाय एव शोषित वर्ग की फरियाद को सुनने वाला कोई नही है। रघुवीर सहाय ने समूचे भ्रष्ट राजनीतिक परिवेश के नगे दृश्य को अपनी कविताओ मे प्रकट करने का प्रयास किया है। वे यह भी स्वीकार करते है कि लोकतत्र की आज मृत्यु ही हो गयी है और सच्चे लोकतत्र की जहाँ पर सबको प्रतिनिधित्व का अवसर प्राप्त होता है। उनके अनुसार वही सरकार सर्वोत्तम है। जिसमे कि जनता जिसे हम आम जनता या साधारण जनता कहते है,

---

1 हँसो-हँसो जल्दी हँसो- रघुवीर सहाय
पृ०स० 27

को भी अपना विकास करने का अवसर प्राप्त होता है। वे सच्चे लोकतत्र की खूबियो को पूरी तरह समझते रहे है। इसलिए यह प्रतिपादित करने की कोशिश की है कि भारत मे, सविधान के 42वे सशोधन 1976 के तहत एकधर्म निरपेक्ष, समाजवादी लोकतान्त्रिक गणराज्य की स्थापना की गयी है" लेकिन इस गणराज्य के स्वप्न तभी साकार हो सकते है जब देश से शोषण एव विषमता के भाव दूर करके सबके हित पर समुचित दृष्टिपात किया जायेगा।

"हजार कई हजार हजारो मर गये भूख से
ऐसा कहा
इतनी बडी सख्या बतायी कि उतनी बडी
आड हो गयी
कि कोई देख नही पाया कि मे
उनमे नही था"---[1]

स्वतत्रता के पश्चात् आने वाली सरकारो का लेखा जोखा रघुवीर सहाय के काव्य रचनाओ मे दिखाई देता है। परिणामस्वरूप उनकी काव्य दृष्टि सरकार की नीतियो से अछूती नही रही है, उसका सम्पूर्ण विवरण उनकी कविताओ मे देखा जा सकता है। लोकतत्र या जनतत्र की सफलता एव स्थायित्व के लिए रघुवीर सहाय ने अपने विचार भी प्रकट किये है जिसके पालन से एक स्वस्थ लोकतत्र की विशेषताए पूरी हो सकती है। सत्तारूढ दल की नीतियो मे सुधार के प्रति रघुवीर सहाय का अपना अलग ही सुझाव रहा है, जिसमे उन्होने स्वार्थ लिप्सा एव लूट खसूट को त्याज्य बताया है।

---

1 हँसो-हँसो जल्दी हँसो- रघुवीर सहाय-
पृ0स0 18

सहाय अपनी कविताओ मे मनुष्य और मनुष्य के बीच समानता के लिए सघर्ष करते हुए दिखाई देते है। उनके अन्दर जो करूणा की भावना है, उसे वे शका की दृष्टि से देखते है कि कही यह दूसरे आदमी की स्वतत्रता को कम करके खुद अपने को श्रेष्ठ होने के बोध से तो नही भर रही है। उनकी इस आत्म शका की जड मे उनकी जनतात्रिक सवेदना सन्निहित है। वे ऐसी विचारधारा वाले कवि रहे है जो सामाजिक एव राजनीतिक व्यवस्था के ह्रास पर गहरा शोक प्रकट करता है। वे अपनी पीडा को पूरा उधेडकर देखने समझने की कोशिश करते है। उनका सोचना है कि अपने को श्रेष्ठ मानकर दिखाई हुई करूणा से लोकतात्रिक जीवन मूल्य का क्षरण होता है। उन्हे यह बिल्कुल मन्जूर नही है।

सहाय की गहरी जनतात्रिक सवेदना ने स्वातत्र्योत्तर भारत मे पूँजीवादी ढाँचे और पश्चिमी आधुनिकतावाद की नकल के कारण पनपती असमानताओ को विभिन्न रूपो और परतो मे, देखने सुनने और समझने की कोशिश की है। गैर बराबरी और अन्याय पर टिकी व्यवस्था ने आदमी और आदमी के बीच समानता को खत्म कर दिया है साथ ही एक वर्ग को अपने को नीचा और हेय मानकर जीने वाला आदमी बना दिया है।" इस विडम्बना को उन्होन अपनी कई कविताओ मे व्यक्त किया है–

"प्राचीन राजधानी अधमरे लोग
वही लोग ढोते उन्ही लोगो को
रिक्शे मे
पन्द्रह लाख आबादी, दस लाख शरणार्थी
रिक्शे वाले की पीठ शरणार्थी की पीठ
एक सी दीखती
बस चेहरे है जैसे बलपूर्वक अलग–अलग किये गये
एक बुढिया लपकी हुई जाती थी

पीछे–पीछे चुप चलती थी औरत वह बहन थी
आगे–आगे लाश पर पूरा कफन नही था
वे उसे ले जाते थे जल्दी–जल्दी जला देने को।"---[1]

भारतीय लोकतत्र की गोद मे परिपक्व हुई सहाय जी की कविता भारत जैसे देश मे लोकतत्र की सफलता एव असफलता के मूलभूत तत्त्वो को प्रकट करती है। यह बिल्कुल अकारण नही है कि उनकी काव्य–आत्मा लोकतत्र के ही इर्द–गिर्द घूमती है। सहाय की कविता के लोकतत्र मे अक्सर एक निम्न मध्यवर्गीय गृहस्थ मतदाता का चेहरा झाँकता है– जो थोडा शिक्षित, थोडा विनम्र और दब्बू, थोडा लडने वाला, थोडा सामाजिक, थोडी राजनैतिक समझ पर राजनीति की तेज आँच से दूर अपनी घर गृहस्थी को साबूत रखने में सलग्न। उनका मानना है कि जनप्रतिनिधि लोकतत्र के प्रहरी होते है। लेकिन रघुवीर सहाय की कविता मे जनप्रतिनिधि लोक तत्र के नायक नही खलनायक के रूप मे आते है। भारतीय लोकतत्र का यह कटु यथार्थ है जिसे सहाय ने बडे साकेतिक ढग से अपनी कविताओ मे उभारा है। स्वाधीन भारत मे जिस तरह जनप्रतिनिधियो और सामान्य जन के रिश्तो मे अविश्वास और सन्देह की गाँठे जटिल होती गयी है, उनके बीच सवाद भी उतना ही सकीर्ण और कृत्रिम होता गया है। "भाषण" राष्ट्रीय प्रतिज्ञा" अधिकार हमारा हे" जेसी अनेक कविताओ मे सहाय ने जनप्रतिनिधियो के सवाद की कृत्रिम शैली और उनकी राजनीति पर विद्रूप और व्यग्य के माध्यम से बहुत सशक्त प्रहार किया है।

"हमने बहुत किया हे
हम ही कर सकते हे
हमने बहुत किया हे

---

1 हँसो–हँसो जल्दी हँसो– रघुवीर सहाय–1975 नेशनल पब्लिशिग हाउस, दिल्ली पृ0स0 60

पर उतना नही हुआ है
हमने बहुत किया है
जितना होगा कम होगा
हमने बहुत किया है
जनता ने नही किया है
हमने बहुत किया है"---[1]

रघुवीर सहाय का लोकतत्र कोई प्रसन्न ससार नही है। उनकी कविता मे एक हिसक आहट सुनाई देती है। यह हिसक आहट गोली या बारूद की अनुगूँज से ही भिन्न है। यह एक स्वाधीन मस्तिष्क और मनुष्य को पराधीन बनाने की नि शब्द हिंसा है। हिसा की कई शक्ले है। कभी रामदास के साथ शारीरिक हिंसा की घटना घटती है। उसे अपनी हत्या के बारे मे पूर्व सूचना है, लेकिन वह अपनी रक्षा के लिए इस लोकतत्र मे कुछ भी नही कर पाता है।

"चौडी सडक गली पतली थी
दिन का समय घनी बदली थी
रामदास उस दिन उदास था
अन्त समय आ गया पास था
उसे बता यह दिया गया था उसकी हत्या होगी
धीरे -धीरे चला अकेले
फिर रह गया, सडक पर सब थे
सभी मौन थे सभी निहत्थे थे
सभी जानते थे यह उस दिन उसकी हत्या होगी"---[2]

---

1 हँसो-हँसो जल्दी हँसो- रघुवीर सहाय प्र0 1975 नेशनल पब्लिशिग हाउस दिल्ली पृ0 57

2 वही, पृ0 27

इस भारतीय लोकतत्र मे सवत्र शोषण का ही भयावह दृश्य व्याप्त है। हत्या, आतक के साथ–साथ जन प्रतिनिधियो की हँसी एक नयी हिसा का रूप धारण कर लेती है। जो कि सहाय की कविता मे मुखरित हुआ है –

"निर्धन जनता का शोषण है
कहकर आप हँसे
लोक तत्र का अन्तिम क्षण है
कहकर आप हँसे
सबके –सब है – भ्रष्टाचारी
कहकर आप हँसे
चारो ओर बडी लाचारी
कहकर आप हँसे
कितने आप सुरक्षित होगे
मे सोचने लगा
सहसा मुझे अकेला पाकर
फिर से आप हँसे"---[1]

रघुवीर सहाय ने अपनी कविताओ के साथ ही साथ गद्य रचनाओ मे भी लोकतत्र का पर्दाफाश करने का प्रयास किया है। उनकी आत्म सजग जनतात्रिक सवेदना अपने वेयक्तिक आचरण मे राजनीतिक विषमता को दूर करके सच्चे लोकतत्र को साकार करने की प्रेरणा देती है। उनकी रचनाए और जनतात्रिक मूल्यो का समवाय सम्बन्ध साबित होता है।

अपने कहानी सग्रह "रास्ता इधर से है" कहानी मे सहाय ने आदमी को दब्बू और प्रश्नहीन बनाने वाली इस विकृत लोकतात्रिक व्यवस्था को और बारीकी से पकडा है। इस लोकतात्रिक अव्यवस्था का हवाला देते हुए वे यह प्रतिपादित करते है कि– "पेशाब घर के इस्तेमाल मे भी किस प्रकार ऊँचे और नीचे का भेद काम कर रहा है, उसे बताकर वे एक विचित्र व्यग्यात्मक स्थिति के जरिये गेर बराबरी

---

1 हँसो–हँसो जल्दी हँसो– रघुवीर सहाय, कविता "आपकी हँसी" – पृ0स0 16

पर टिकी इस सम्पूर्ण लोकतात्रिक अव्यवस्था की परते उघाडते है। सरकारी दफ्तरो मे भी ऊँचे ओहदे वालो के लिए अलग पेशाबघर है। सहाय जी भारत जैसे लोकतात्रिक परिवेश को दूषित ठहराते हुए और गैर बराबरी की इस भावना को त्याज्य एव हेय बताया है। सहाय जी अपने चिन्तनात्मक निबन्धो मे "समतामूलक और शोषण मुक्त कर्म से समृद्व नये समाज की रचना का उल्लेख एक मोटिफ की तरह बार-बार करते है।

"हिन्दुस्तान के वर्तमान शासन के बुर्जुआ लोकतात्रिक ढाँचे मे शोषित जन निरन्तर उपेक्षित होते चले गये है। शासन के वर्तमान ढाँचे से मै स्वय असहमत हूँ, मै मानता हूँ कि अगर अपने देश के सन्दर्भ मे देखे तो हमारे यहाँ जो शक्ति का ढाँचा बना हुआ है --- ऊपर से नीचे तक इन सबको यानि यह जो पूरी व्यवस्था है, इन सबको हम बिल्कुल बेकार और नाकामयाब मानते है- यानि एक उद्देश्य के लिए नाकामयाब उद्देश्य वही है- समता और मनुष्य के बीच की गैर बराबरी को मिटाने के लिए यह व्यवस्था बिल्कुल बेकार है"---[1]

(4) **आपात कालीन मुखरता**

देश मे आपात काल लागू किये जाने से ठीक पूर्व आने वाले खतरे के जिस दौर को रघुवीर सहाय ने महसूस किया था, वह दौर अब भारतीय जनता के अनुभव को न भुला सकने वाला प्रसग बन चुका है। सहाय की कविताओ मे सत्ता द्वारा दमन के तरीको, आतक भरे समाज का मार्मिक चित्रण प्राप्त होता है। उन्हे पहले ही आभास हो गया था कि शोषण के द्वारा निरन्तर और भी अधिक वैभव सग्रह करने वाला शोषक सत्ताधारी वर्ग अपने को बचाये रखने के लिए भारतीय जनता के सारे अधिकार छीन लेने वाला है। एक ओर सत्ताधारी वर्ग भोग की सस्कृति मे पहले से अधिक लिप्त हो जाने वाला है, जबकि दूसरी ओर भारतीय जनता

---

1 लिखने का कारण- रघुवीर सहाय- 1978 राजपाल एण्ड सन्स दिल्ली पृ0स0 104

"मै क्या कर रहा था जब मे मरा
मुझसे ज्यादा तो तुम जानते लगते हो
तुमने लिखा मैने कहा था स्वाधीनता
शायद मैने कहा था बचाओ
अब मै मर चुका हूँ
मुझे याद नही कि मेने क्या कहा था
जब एक महान, सकट से गुजर रहे हो
पढे लिखे जीवित लोग
एक अधिकारी अपढ जाति के सकट को दिशा देते हुए
तब
आप समझ सकते है कि एक मरे हुए आदमी को
मसखरी कितनी पसन्द है
तब मै पूँछूगा नही कि सो मोरी गरदने
झुकी है"---[1]

(5) **1975 के पश्चात् भारतीय राजनीतिक स्थिति विविध प्रसग**

आपातकाल के दोरान एव उसके बाद सत्ताधारी वर्ग ने स्पष्ट रूप से कहा कि आज भारतीय लोकतत्र मे प्रतिपक्ष अप्रासगिक हो गया है। ससद की बहस प्रकाशित करने पर रोक लग गयी। सेकडो लोगो को पुलिस ने मार डाला। पूरा देश जैसे इन्दिरा गाँधी की हिरासत मे बन्द कर दिया गया हो। इन भयानक स्थितियो के बीच दूसरो के बोलने पर तो पाबन्दी थी, लेकिन इन्दिरा गाँधी उन दिनो रोज ही यह उद्घोष कर रही थी कि लोकतत्र पर खतरा है। वे लोकतत्र की रक्षा करना चाहती है। लेकिन ऐसी स्थिति उत्पन्न होने पर भी सहाय जी बिल्कुल निराशा मे नही पडते। वे ऐसे व्यक्ति है जो इस लज्जित और पराजित दौर मे किसी भी कीमत पर अपने को बेचने के लिए तेयार, खुशामदी और चाटुकार लोगो से अलग, स्वाधीन और निर्भय व्यक्ति की तलाश करते है, जो इस मानसिकता को पीछे छोड आये हो कि वे निर्धन है, अत उन पर दया की

---

1 हँसो–हँसो जल्दी हँसो– रघुवीर सहाय– प्र0 1975 नेशनल पब्लिशिग हाउस दिल्ली प्र0स0 7–8

को खुद अपनी जरूरतो के लिए निवेदन के अतिरिक्त कुछ भी कहने का अधिकार नही रह जाने वाला था। इन भयावह स्थितियो के बीच भी विडम्बना तो यह है कि सत्ताधारी वर्ग के जिन लोगो ने लोकतत्र के लिए यह खतरा पैदा किया था, वे ही सचार तथा अन्य माध्यमो द्वारा यह दुहराते हुए बिल्कुल थकते नही कि लोकतत्र तथा देश पर खतरा उत्पन्न हो गया है। आपातकाल के दौरान यही स्थिति घटित हुई थी।

सहाय जी "आने वाला खतरा" शीर्षक कविता मे दहशत और आतक के माहोल मे वास्तविक विरोध करने वाले समानधर्मीकी खोज के लिए व्यग्र है-

"एक दिन इसी तरह आयेगा रमेश
कि किसी की कोई राय नही रह जायेगी रमेश
क्रोध होगा, पर विरोध न होगा
अर्जियो के सिवाय -रमेश
खतरा होगा, खतरे की घटी होगी
और उसे बादशाह बजायेगा-- रमेश"---[1]

देश मे 1975 मे आपातकाल की घोषणा की गयी। सहाय जी इस खतरे से पूर्व परिचित थे। आपातकाल के दौरान अपने मौलिक अधिकारो से वचित जनता न तो विरोध मे वक्तव्य दे सकती थी, न सभा कर सकती थी। अखबारो पर सेसर लागू कर दिया था। दूसरी न्यूज एजेन्सियो को समाप्त करके सरकारी न्यूज एजेसी "समाचार" कायम की गयी ताकि सीधा नियत्रण रहे। तथाकथित आन्तरिक सुरक्षा के नाम पर देश के दो लाख से अधिक लोग जेल मे बन्द कर दिये गये। उन्हे न्यायालय मे जाने का अधिकार नही था, और यह भी जानने नही , और यह भी जानने का अधिकार नही कि उन्हे क्यो गिरफ्तार किया गया है। सम्बन्धियो को यह भी खबर नही थी कि, वे कहा है -

---

1 हँसो-हँसो जल्दी हँसो - रघुवीर सहाय प्र0 1975 नेशनल पब्लिशिग दिल्ली पृ0स0 10

जानी है–

"मरने की इच्छा समर्थ की इच्छा है
असहाय जीना चाहता है
आओ सब मिलकर उसेबस जीवित रखे
सब नष्ट हो जाने की कल्पना
शासक की इच्छा है
आओ हम सब मिलकर,
उसे छोड बाकी सब नष्ट करे
सुन्दर है सर्वनाश
वही सर्वहारा के कष्टो को सार्थक करता है
ओर हमारे कष्टो को मनोरजक भी"---[1]

1974 ई0 मे स्वाधीन भारत के रामदास का शोषक वर्ग का सरक्षित एलान करके चोराहे पर हत्या करता है। राजसत्ता के फॉसीवादी चरित्र को रामदास की हत्या के वृतान्त से ही भलीभॉति समझा जा सकता है। आपातकाल के बाद सामान्य लोगो को इस शोषण का ओर शिकार होना पडा –

"निकल गली से तब हत्यारा
आया उसने नाम पुकारा
हाथ तोलकर चाकू मारा
छोटा लोहू का फरबारा
कहा नही था उसने आखिर उसकी हत्या होगी
भीड ठेलकर लौट गया वह
मरा पडा है रामदास यह
देखो–देखो बार–बार कह
लोग निडर उस जगह खडे रह
लगे बुलाने उन्हे जिन्हे सशय या हत्या होगी"---[2]

---

1 हँसो–हँसो जल्दी हँसो – रघुवीर सहाय– पृ0स0 39

2 वही " पृ0स0 28

विहार आन्दोलन के दौरान 7 अप्रेल 1974 को गया मे भ्रष्टाचार कुशासन तथा लोकतान्त्रिक माँगो को लेकर शान्ति पूर्ण तरीके से धरना देने वाले छात्रो पर पुलिस ने बर्बरता के साथ गोली चलाई, जिसमे 50 लोग मारे गये। 12 अप्रेल को उसने फिर से गोली चलाई जिसमे 12 से भी कम उम्र के आठ लडके मारे गये। इन लडको के साथ मरने वालो मे साठ वर्षीय बूढा सुकुल भी था।

"बूढे सुकुल का जब अन्त समय आया
गिरते-गिरते उसके शव ने मुँह बाया
साठिआया अपाहिज कुछ समझ नही पाया
सुना था जहाँ पर है कन्याकुमारी
दूर उसी दक्षिण से जब पहली बारी
गया आया हिन्दू तो गोली क्यो मारी
आँखे-फाडे सुकुल यह रहस्य देखता
उत्तर दक्षिण के 30 भये देवता
केन्द्रीय रिजर्व पुलिस भारत की एकता"---[1]

(6) **राष्ट्रभाषा हिन्दी और रघुवीर सहाय**

आरम्भ से अन्त तक सहाय स्थायी एव सच्चे जनतत्र का समर्थन करते रहे। आपातकाल के दौरान हुए अत्याचारो की उन्होने घोर भर्त्सना की है और अपने जीवन काल तक समस्त अत्याचारो का विरोध करते रहे। यह निश्चित है कि भारतीय पूँजीवाद जिसने सामन्तवाद से समझौता कर रखा है, किसी न किसी प्रकार से अपने को बनाये रखना चाहता है। लेकिन यह सभव नही हो पाता है, क्योकि इतिहास की गति को वह उलट नही सकता। उस पूँजीवादी व्यवस्था का विनाश निश्चित है। राजनीतिक क्षेत्र मे उन्होने भाषा एव जातिवाद के भेदभाव को त्याज्य बताया। वे हिन्दी को सच्ची राष्ट्रभाषा के पद पर प्रतिष्ठित करने का प्रयास करते रहे। उनका कहना है कि आज

---

1 हँसो-हँसो जल्दी हँसो- रघुवीर सहाय प्र0 1975 नेशनल पब्लिशिग दिल्ली पृ0 स0 37

हिन्दी को महज अनुवाद की भाषा बनाकर उसे राष्ट्रभाषा की पदवी दिलाने का दावा करने वाले हिन्दी सलाहकार, सरकारी सस्थानो के मूर्ख हिन्दी अधिकारी तथा जड हिन्दी अध्यापक हिन्दी भाषा को अपने जीवनयापन तथा सुख–सुविधा का उपकरण बनाते हुए अन्तत शासक वर्ग के हितो को पुष्ट कर रहे है। परिणामत भाषा मे विकास के बदले सडन पैदा हो रही है। उन्होने "हमारी हिन्दी कविता में" यह सत्य सम्पूर्णता के साथ प्रस्तुत करने का प्रयास किया हे–

"हमारी हिन्दी एक दुहाजू की नयी बीबी है
बहुत बोलने वाली बहुत खाने वाली बहुत सोने वाली
× × ×
कहने वाले चाहे कुछ भी कहे
हमारी हिन्दी सुहागिन हे, सती हे खुश हे
उसकी साध यही हे कि खसम से पहले मरे
और तो सब ठीक पर पहले खसम उससे बचे
तब तो वह अपनी साध पूरी करे"---[1]

हिन्दी को सचमुच राष्ट्र भाषा की हेसियत देने तथा उसके विकास के लिए सार्थक ढग से प्रयत्नशील होने के सन्दर्भ मे काग्रेसी सरकार कितनी ईमानदार और तत्पर रही हे इसका प्रमाण हमे लोकसभा की भाषा सम्बन्धी उस बहस से मिल जाता है जो नवम्बर 1963 को हुई थी। लोकसभा अध्यक्ष के अलावा हनुमतैया, मुहम्मद इलियास राम मनोहर लोहिया, राम सेवक यादव, किशन पटनायक, मणिराम बागडी आदि शामिल थे।

लोक सभा मे हिन्दी तथा प्रादेशिक भाषाओ के बारे मे सही नीति अपनाये जाने की माँग करने वाले समाजवादी नेता राम मनोहर लोहिया को सम्पूर्ण सत्तापक्ष जिस तरह उस दिन बोलने से रोक रहा था, उससे सत्ता की नीयत स्पष्ट हो

---

1 आत्म हत्या के विरूद्व – पृ0स0 71
पृ0स0 71

जाती है– "अध्यक्ष महोदय, डाक्टर साहब, आप बेठ जाए, मे खडा हूँ मुझे बात कहने दीजिए।

राम मनोहर लोहिया आपका हुक्म मे मान सकता हूँ लेकिन अगर इस झुण्ड के हुक्म के साथ–साथ आपका भी हुक्म

अगर होता है तो मे क्या करूँ (अतर्बाधाए)

राम मनोहर लोहिया हिन्दी कानून मे है --- (अर्तबाधाए)

मुहम्मद इलियास बेठ जाओ

मणिराम बागडी शट अप । तुम कोन होते हो बेठने के लिए कहने वाले

राम मनोहर लोहिया यह सवाल हिन्दी का नही है। बल्कि

अग्रेजी खत्म करने का सवाल है।---[1]

डा0 लोहिया का आग्रह था जो हिन्दी राष्ट्र भाषा होगी, वह इस्तेमाल से जुडी हुई हिन्दी होगी। शब्द कोश से लायी गयी नही।

रघुवीर सहाय ने हिन्दी भाषा के बनावटी ओर किताबी स्वरूप को लक्ष्य करके कहा है– "भाषा के ठेकेदार, जो अग्रेजी की जगह, ठीक उसी प्रकार उसी जगह हिन्दी की प्रतिष्ठा करना चाहते है, ताकि हिन्दी भी एक तरह की अग्रेजी बन जाए"---[2]

---

1 लोकसभा मे लोहिया– भाग 2, पृ0स0 20–23

2 लिखने का कारण– रघुवीर सहाय– प्र0 1978 राजपाल एण्ड सस दिल्ली पृ0स0 109

देश मे लोकतान्त्रिक व्यवस्था और मूल्यो के नष्ट हाने की कहानी को रघुवीर सहाय ने आजीवन अपनी कविताओ मे स्थान दिया है। अपने "हे" शीर्षक कविता मे उन्होने स्पष्ट रूप रो कहा है कि समाज जितना मरता जाता है, राजा उतना ही जीता और सुरक्षित हो जाता है–

"यह समाज मर रहा है, इसका मरना पहचानो मत्री
देश ही सब कुछ है, धरती का क्षेत्रफल सब कुछ है
सिकुड कर सिहासन भर रह जाय, तो भी वह सब कुछ है
राजा ने मन मे कहा जो राजा–प्रजा की दुर्बलता नही पहचानता
वह अपने देश को नही बचा सकता प्रजा के हाथो से"---[1]

*****

---

1 हँसो–हँसो जल्दी हँसो– रघुवीर सहाय पृ0सं0 75

अध्याय – तृतीय

सामाजिक चेतना और आर्थिक सन्दर्भ

अध्याय – तृतीय

सामाजिक चेतना और आर्थिक सन्दर्भ

1 सामाजिक वैषम्य – क) खण्डो मे बँटा समाज

ख) अभिजात्य एव साधारण जन, ग) शोषक और शोषित

2 सामाजिक मूल्य चेतना का ह्रास

3 भारतीय औरतो तथा बच्चो का यथार्थ

4 पूँजीवाद का प्रसार और बदलते सामाजिक सन्दर्भ

क) बुर्जुआ और सर्वहारा, ख) आर्थिक अपराधीकरण चोर बाजारी, जमाखोरी

5 महानगरीकरण और असहाय आदमी

1 सामाजिक वैषम्य

रघुवीर सहाय की कविताएँ सामाजिक दायित्वो के प्रति प्रतिबद्ध है। जिसमे कि समाज क समस्त घात–प्रतिघात प्रतिबिम्बित है। एक साहित्यकार के लिए जिन आवश्यक सामाजिक तत्वो का होना आवश्यक होता है, वे सभी रघुवीर सहाय के काव्य में विद्यमान है। समाज की सभी हलचलो को रघुवीर सहाय की रचनाओ मे स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। एक नागरिक के उत्तरदायित्व की भावना से ओत–प्रोत होकर सहाय ने अपने काव्य का सृजन किया है। यही कारण है कि सहाय जी ने समाज मे व्याप्त वैषम्य को अपनी रचनाओ का मुख्य विषय बनाया है। समाज मे उत्पन्न हुए दो वर्गो (शोषक और शोषित) के बीच वैषम्य की एक गहरी खाई होने के कारण, शोषितो की उपेक्षा के प्रति अपने क्षोभ को प्रकट करते हुए सहाय जी ने शाषको के प्रति अपनी घृणा एव आक्रोश को अभिव्यक्त किया है। उन्होने अपनी कविताओ एव गद्य रचनाओ को, भीड, ससद, चुनाव, मतदान, जुलूस, नारा, सडक, बाजार आदि की बात करते हुए सामाजिक सन्दर्भ गे रखने का पूरा प्रयास किया है– मुख्य रूप से आज के मनुष्य के सही सन्दर्भ मे। साथ ही साथ वैषम्य की स्थिति के शिकार लोगो को सजग करते हुए उन्होने कहा है–

> "हम ही क्यो यह तकलीफ उठाते जाये
> दु ख देने वाले दु ख दे और हमारे
> उस दु ख के गौरव की कविताए गाये
> यह है अभिजात तरीके की मक्कारी
> इसमे सब दु ख है, केवल यही नही है
> अपमान अकेलापन फाका बीमारी
> हमको तो अपने हक सब मिलने चाहिए
> हम तो सारा का सारा लेंगे जीवन
> कम से कम वाली बातम न हमसे कहिए"[1]

---

1 सीढ़ियो पर धूप मे– रघुवीर सहाय, पृ0स0 109

सहाय के कविता सग्रह "आत्म हत्या के विरूद्व" की कविताए व्यक्ति, समाज, सस्था, राजनीति तथा जनतत्र की पोल खालती है। समाज के ब्रदलते परिवेश को सहाय की कविताओ मे स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। एक सामाजिक कवि होने के कारण एव समाज के प्रति अपनी गहरी **अनुभूति** प्रकट करने के कारण सहाय जी नेसमाज की विषमता एव उससे उत्पन्न बदहाली की स्थिति को कुशलतापूर्वक चित्रित करने का प्रयास किया है। यही कारण है कि उनकी चेतना आम नागरिक की चेतना बन जाती है, जिसमे समाज का जीता–जागता स्वरूप एव बदलते परिवेश की झकार सुनाई देती है–

"यही मेरे लोग है
यही मेरा देश है
इसी मे रहता हूँ
इन्ही से कहता हूँ
अपने आप और बेकार
लोग–लोग–लोग चारो तरफ है मार तमाम लोग
खुश और असहाय
उनके बीच सहता हूँ उनका दु ख
अपनेआप और बेकार"———[1]

सहाय जी अपने आपको जिन मार तमाम लोगो से घिरा हुआ पाते है, जिनके दु ख से वे दु खी हे, वे सभी असहाय होते हुए भी खुश है। यह बहुत ही विडम्बना की स्थिति है कि वे लोग एक ही साथ खुश और असहाय वे यह प्रतिपादित करते है कि समाज की स्थितियाँ बहुत ही भयावह है और चारो तरफ शोषण एव उत्पीडन का नृशस दृश्य व्याप्त है। ऐसी स्थिति मे एव इस प्रकार की दुव्यर्वस्था के बीच जो लोग पिस रहे है वे इसलिए असहाय होते हुए भी खुश दिखाई पड़ते है, क्योंकि उन्हे इस बात की

---

1 आत्म हत्या के विरूद्व– रघुवीर सहाय, पृ0स0 11

जानकारी नही है कि ऐसी विषम स्थिति को सुधारा भी जा सकता है।

एक सामाजिक कवि होने के कारण सहाय जी ने समाज की दलित, पीडित एव लाचार जनता से अपना सीधा सम्बन्ध रखने का प्रयास किया है, और उनकी लाचारी एव बदहाली के कारणो के प्रति अपना आक्रोश व्यक्त किया है। समाज की पीडित जनता दिन प्रतिदिन क्रमश जिस बदतर स्थिति को प्राप्त होती जा रही है, उसके प्रति सहाय जी ने अपनी गहरी सहानुभूति प्रकट करने का प्रयास किया है–

"कल मैने उसे देखा लाख चेहरो मे वह एक चेहरा
कुढता हुआ और उलझा हुआ वह उदास कितना बोदा
वही था नाटक का मुख्य पात्र
पर उसकी ठस पीठ पर मैने हाथ न रख सका
वह बहुत चिकनी थी"---[1]

समाज मे व्याप्त विषमता से ही लोगो के बीच एक अलगाव की स्थिति पैदा हो जा रही है। उनके अनुसार बढ़ते हुए पूँजीवाद के परिणामस्वरूप समाज मे इन दो वर्गो (शोषक और शोषित) का जन्म हुआ है। शोषक वर्ग निरन्तर शोषितो का शोषाण करता जा रहा है, परिणामस्वरूप शोषित वर्ग दिन प्रतिदिन लाचार और पीडित होता जा रहा है। उन्होने इस सामाजिक यथार्थ को सच्चे रूप मे प्रकट करने का प्रयास किया है– उनका मानना है कि – "यथार्थ अमूर्त और खोया हुआ नही है, बल्कि वह इतना मूर्त और आमने सामने है कि वह उनके लिए अन्वेषण से नही बल्कि "समझने" से जुडा है"---[2]

---

1 आत्म हत्या के विरूद्व– रघुवीर सहाय, पृ0स0 85

2 लिखने का कारण– रघुवीर सहाय, पृ0स0 33

सहाय शोषको के प्रति अपना आक्रोश एव घृणा प्रकट करते हुए शोषित, दलित एव समाज के अकिंचन लोगो के प्रति अपनी गहरी सहानुभूति प्रकट किया है। उन्होंने इन लोगो को अपनी रचना का मुख्य वर्ण्य विषय बनाया है, साथ ही उनकी यातनाओ को अपनी रचनाओ मे उभारने का प्रयास किया है। "सीढियो पर धूप में" उन्होने व्यक्त किया है– " जिस मानवीय जीवन के सुख–दुख को, समस्याओ को, यातनाओ और विवशताओ या सफलताओ और महानताओ को हम जानते है, उसे व्यापक मानव के सम्बन्ध मे बिना किसी विशेषण के मानव के सन्दर्भ मे कैसे जाने और ऐसे जाने कि वह जानना कलाकृति हो जाय"---[1]

समाज के लोगो की पीडा को अपनी पीड़ा समझकर चलने वाले सहाय जी ने शोषित जनता के साथ होने वाले अत्याचार के प्रति अपनी विद्रोह की भावना को प्रकट किया है। उनके काव्य सग्रह "आत्म हत्या के विरूद्व" की कविताओ मे उनकी सामाजिक सवेदना, बदलते सामाजिक परिवेश और राजनैतिक ह्रास का भी जीता जागता सबूत प्राप्त होता है, और उनका यह भी मानना रहा है कि विकृत राजनीति के परिणामस्वरूप ही समाज भी पतनोन्मुख होता जा रहा है–

"बीस बरस बीत गये
लालसा मनुष्य की तिल–तिल कर मिट गयी
"टूटते–टूटते
जिस जगह आकर विश्वास हो जायेगा कि
बीस साल
धोखा दिया गया
वही मुझे फिर कहा जायेगा विश्वास करने को
पूछेगा संसद मे भोला भाला मत्री

---

1 सीढ़ियो पर धूप मे– रघुवीर सहाय, पृ0स0 239

मामला बताओ हम कार्रवाई करेंगे।
हाय–हाय करता हुआ हाँ–हाँ करता हुआ हे हे करता हुआ
दल का दल पाप छिपा रखने के लिए एकजुट होगा"---[1]

सामाजिक विषमता के हर पहलू को सहाय जी ने अपनी रचनाओ मे स्थान देने का प्रयास किया है। उनकी सभी रचनाए इसी विषमता को लेकर आगे बढती है। उन्होने यह प्रतिपादित करने की कोशिश किया है कि समाज की बदहाली के प्रति जिम्मेदार वह तत्र और नेतृत्व था जिसने आजादी के बाद सामाजिक आधारो को बदले बगैर लोकतत्र की कल्पना की थी और इस लोकतत्र के हवाले से उसने जनता की मुक्ति और विकास का झूठा वायदा किया था। लेकिन समय बीतने के साथ ही इस "तन्त्र" के लोकतात्रिक दावो तथा समाजवादी नारो का असत्य प्रकट हो गया–

"हम सब जानते ये गरीबी क्या चीज होती है
हम सब गरीबी को बिसरा चुके थे
हममे से एक ने कहा रोज कम खाना मेरे दो बच्चो को तोड़ता
मरोडता कुतरता है रोज कम खाना मेरे दो बच्चो को तोड़ता
मरोडता कुतरता है रोज–रोज कुछ समझे?
बुझते हुए धीरे–धीरे एक दिन हजार लोग रोज
सहने के अन्तिम कगार पर खडे हो
भारत वर्ष मे फर्लांग पड़ते है,
व्यक्ति स्वातत्र्य के समुद्र मे कोई धमाका नही।"---[2]

रघुवीर सहाय ने यह प्रतिपादित करने की कोशिश की है कि भारतीय समाज की सबसे बड़ी विषमता है– वर्ण विभाजन, जिसने अब जातिवाद का रूप ले

---

1 आत्म हत्या के विरूद्व– रघुवीर सहाय, पृ0स0 86

2 वही " पृ0स0 25

लिया है। इस जातिवाद की विषमताओ को सहाय ने अपनी कविताओ मे उभारने का प्रयास किया है। साथ ही उस पर तीखा व्यग्य किया है। "जाति प्रथा खत्म हो रही है या जमी हुई है, इसके बारे मे जिसको सन्देह है, वह दो कसौटियो पर आस–पास की जाँच कर ले।

1 शिक्षित आदमी की मित्र मण्डली मे कितनी जातियो के लोग है? ऐसे दोस्त जो घर मे जाकर खाना भी खाते है या परिवार के लोगो के साथ घुल मिल जाते है, सिर्फ दो या तीन जातियो के होते है – अपनी जाति के ठीक ऊपर की एक–दो जाति या ठीक नीचे की एक दो जाति–इसी दायरे मे 99 प्रतिशत शिक्षित लोगो की दोस्त मण्डली सीमित रहती है।

2 भारत के कितने गाँवो मे एक कुए से द्विज और हरिजन मिलकर पानी लेते है ? क्या पाँच प्रतिशत भी गाँव ऐसे है ?"---[1]

सामाजिक विषमता के सम्पूर्ण विवरण को प्रस्तुत करने के कारण रघुवीर सहाय अपने को सच्चे अर्थो मे एक जनवादी साहित्यकार सिद्व करते है। शोषको एव शोषितो के बीच भीषण विषमता के दृश्य को उभारते हुए उन्होने जहाँ पर शोषितो के प्रति अपनी गहरी सहानुभूति प्रकट किया है वही पर शोषको के प्रति घृणा के उद्गार को प्रस्तुत करते हुए, कटु व्यग्य भी किया है। कार्लमार्क्स ने जिस प्रकार शोषितो का करूण गान प्रस्तुत करके शोषको के प्रति अपना आक्रोश व्यक्त किया है" उसी प्रकार सहाय ने भी शोषको के प्रति अपने आक्रोश को प्रस्तुत करते हुए सर्वहारा वर्ग का ही समर्थन किया है–

---

1 अर्थात– रघुवीर सहाय, पृ0स0 11

उनका कहना है कि वर्तमान आत्यान्तिक अत्याचारो के पीछे पूँजीवाद और सामन्तवाद की सम्मिलित अश्लील चेहरा है उसी चेहरे पर वे प्रहार करते है– और व्यर्थ के समाजवाद का पर्दाफाश करने की कोशिश करते है–

"बीस बडे अखबारो के प्रतिनिधि पूँछे पचीस बार
कहे महासघपति पचीस बार हम करेगे विचार
आँख मारकर पचीस बार वह, हँसे वह, पचीस बार
हँसे बीस अखबार
एक नयी तरह की ही हँसी यह है"---[1]

सहाय ने अपनी रचनाओ मे समाज के सभी वर्गो का प्रतिनिधित्व करने का प्रयास किया है। विषमता का उन्होने खुलकर विरोध किया है। उन्होने अपनी कविताओ मे "रामसरण" और "रामदास" आदि सभी वर्गो का प्रतिनिधित्व किया है। यह तो वह वर्ग है जो आत्यान्तिक यन्त्रणा और दमन झेलती हुई हिन्दुस्तान की शोषित जनता का वर्ग है। अपनी कविताओ मे एव अन्य रचनाओ मे यथार्थ को उसकी सम्पूर्णता मे अभिव्यक्त करने के लिए, उन्होने बहुत सारे व्यक्तिवाचक नामो का प्रयोग किया है। नामो के द्वारा वे शोषक और शोषित दोनो ही वर्गो के चरित्र को सीधा मूर्त रूप देने का प्रयास करते है। उन्होंने अपनी रचनाओ मे व्यक्तिवाचक नामो का इस्तेमाल इस प्रकार किया है कि नाम लेते ही वैसे चेहरे सामने आ जाते है। अपने "नये पत्ते" सग्रह मे निराला ने भी गिडवानी, बदलू आहिर लच्छू नाई, बली क्हार, झीगुर, महगू, लुकुआ, के साथ ही "रामलाल और "रामदास" जैसे व्यक्तिवचाक नामो के द्वारा "मूर्तिमत्ता" और "तथ्यात्मकता" पैदा करने की महत्त्वपूर्ण कोशिश की है।

---

1 आत्महत्या के विरूद्व –रघुवीर सहाय, पृ0स0 68

"राजकमल चौधरी" ने भी "मुक्ति–प्रसग" मे मजू हालदार आदि ऐसे व्यक्तिवाचक नामो का प्रयोग किया है, जो समाज के शोषित वर्ग का प्रतिनिधित्व करते है और जिनके साथ अन्याय एव विषमता की स्थिति जड पकड चुकी है। सहाय ने बेचू, मगरू, ढोडे, गोबर, आदि का उल्लेख करके शोषितो तथा अन्याय एव विषमता की जिन्दगी जी रहे लोगो का ही चित्रण किया है–

> "पण्डित राजाराम के ठडे कमरे म
> भीड का हिसाब हो रहा था
> वहाँ मैने पण्डित जी को
> सूघा
> गया वाजपेयी से पूछ आया देश का हाल
> पर उढा नही सका एक नगी औरत को
> कम्ब रेलगाडी मे बीस अजनबियो के सामने
> बेचू वल्द निरहू, ढोडे मँगरे पाँचू– गोबरे
> पाँच भाई
> बैठे थे
> जाने कहाँ से न जाने कहाँ को जा रहे थे
> डाँड़–भरने के लिए, तीन दिन -तीन रात मैने सफर किया
> तीसरे दर्जे मे अन्त मे एक भिन–भिनाते कस्बे मे पहुँचा
> पिछडे रिश्तेदारो के यहाँ, ढोडे–मँगरे होरे रास्ते मे उतर गये"---[1]

सामाजिक विषमता एव अन्याय के कारणसमाज का शोषित वर्ग समाज मे एक अकेलापन एव अलगाव की स्थिति मे जी रहा है। सहाय उस अकेलेपन की अभिव्यक्ति के साथ ही साथ समाज के उस वर्ग का बेगानापन उघारने की कोशिश करते है, जो इस अलगाव के प्रभाव को झेल रहा है। एक समाप्त हुई दुनिया के बाद की जो तात्कालिक दुनिया है, वह इस अलगाव के परिणामस्वरूप "चुरमुराई, पपड़ियाई, चिपचिपाई, तथा बजबजायी हुई सी

---

1 आत्म हत्या के विरूद्व – रघुवीर सहाय, पृ0स0 23

चीज हो गयी है। उसमे रहने वालो का चरित्र मात्र इतना भर रह गया है कि–

"लोग या तो कृपा करते है या खुशामद करते है
लोग या तो ईर्ष्या करते है या चुगुली खाते है
लोग पश्चाताप करते है या घिघियाते है
न कोई प्यार करता है न कोई नफरत
लोग या तो दया करते है या घमण्ड
दुनिया एक फुँफुदियाई हुई सी चीज हो गयी है"---[1]

सहाय ने अपनी कविताओ के यह भी प्रतिपादित करने का प्रयास किया है कि समाज के अधिकाश लोग एक कुढन मे अपी जिन्दगी बिता रहे है और शोषको एव पूँजीपतियो के चगुल मे फँसकर एक असहाय नागरिक की तरह अपना जीवन बिता रहे है ऐसे कुढते और विराते हुए मार तमाम लोग अगर कुछ नही करते, जो उन्हे करना चाहिए तो लोग करते क्या हैं ? उनके कर्म की भूमिका को सहाय ने– "सीढियो पर धूप में" सग्रह की "सभी लुज–लुजे हे कविता–सग्रह मे इस प्रकार प्रस्तुत करते है–

"खोखियाते हे, किंकियाते है, घुन्नाते है
चुल्लू मे उल्लू हो जाते है
मिनमिनाते है, कुडकुडाते है
झाँय–झाँय करते है रिरियाते हैं
टाँय–टाँय करते है हिनहिनाते है
गरजते है घिघियाते है
ठीक वक्त पर ची बोल जाते है

जिसका कारण है– सभी लुज–लुजे छै, थुल–थुल है, लिब–लिब है
पिल–पिल हैं
सबमे पोल है, सबमे झोल है"----[2]

---

1 सीढियो पर धूप मे– रघुवीर सहाय, पृ0स0 139

2 वही " पृ0स0 140–141

पूँजीवादी व्यवस्था के तहत गरीबी की नाया मे पिसती हुई जनता निरन्तर पिसी जा रही है। लेकिन उसको इतना प्रतिबन्धित कर दिया गया है कि वह अपने किसी दर्द को न तो किसी से कह सकती है और न तो उसकी फरियाद को ही कोई सुनने वाला है–

"ऐसे दीन हीन असहाय होके आये हो
कि जैसे कोई चुटकी सवेदना की दे देगा
ऐसे चिकने बने हो, हट्टे कट्टे धरे हो कि
तुम्हे कोई काँटा कैसे कहाँ और क्यो छेदेगा
माँगने से मिलती नही है तुष्टि वेदना की
कोई बाप तुम्हे झुनझुनिया न ले देगा
जाओ कोई काम करो, हमे न बेराम करो
ऐसे ढोगी मँगते को हर कोई खेदेगा"----[1]

सहाय ने विषमता एव अन्याय के विरूद्व सघर्ष करते हुए शोषक शक्तियो का हित साधक "मुस्टडा विचारक आदि पर सीधा प्रहार करने की कोशिश की है। "मुस्टडा विचारक" पूँजीपतियो का हित साधक है और वह यह उद्घोषणा करता है कि "समय आ गया है" जिसके कारण इस नकली गर्जन–तर्जन के बीच यातना झेलते "रामलाल के कुचले हुए पाँघ के दर्द का कोई महत्व न रह जाय। शोषक वर्ग का हित साधक होने के कारण वह कहता है कि यदि राम लाल के कुचले हुए पाँव से घिसटकर चलने का अर्थ और सही कारण यदि स्पष्ट हो जाता है तो मुस्टडा विचारक, मुसद्दी लाल महंत, न्यायाधीश, प्रधानमत्री तथा नेतराम आदि जो शोषक पूँजीपति, जमीदार वर्ग के हित सरक्षक है, वे सब निकाल बाहर कर दिये जायेंगे। यही कारण है कि इनकी सर्वथा

---

1 सीढियो पर धूप मे– रघुवीर सहाय, पृ0स0 145

यही कोशिश रहती है कि ये जिस वर्ग के प्रतिनिधि है, उसकी सत्ता बनाये रखने के लिए वास्तविक समस्याओ की समझ और उसके निदान की पहल ही नही होने देते है और वास्तविक स्थिति को छिपाये रखना चाहते है–

"गया एकाएक बाहर जोरो से एक नकली दरवाजा भेडकर
दर्द–दर्द मैने कहा क्या अब नही होगा
हर दिन मनुष्य से एक दर्जा नीचे रहने का दर्द
गरजा मुस्टडा विचारक–समय आ गया है
कि रामलाल कुचला हुआ पाँव जो घसीटकर
चलता है अर्थहीन हो जाय"---[1]

सहाय की कविता मे हर दौर का यथार्थ दिखाई देता है, और उसमें यथार्थ को पहचान सकने लायक औजार भी मौजूद दिखाई देते हैं। दमन, हिंसा, शोषण, बेकारी, बेगार, नवधनाढ्य, सस्कृति, और सामाजिक उच्छृखलता के कारण हम सचमुच क्या खो रहे है ? इसकी पहचान करवाने मे रघुवीर सहाय की कविताएँ बहुत ही सार्थक सिद्व होती हैं –

"वे हर जमाने मे सफल व्यक्ति होते है
जो कि पक्ष लेने से पहले तय करते है किसको
हत्यारा बताने मे लाभ है
यह उन्हे किसी समय तय करना पडता है
सिर्फ देख लेते है कि कानून किस समय
सबसे कमजोर है
उसी समय मिलकर चिल्लाते है चोर–चोर"---[2]

---

1 आत्महत्या के विरूद्व– रघुवीर सहाय, पृ0स0 86

2 कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ – रघुवीर सहाय, पृ0स0 45

निरन्तर शोषण एव दमन के कारण सामाजिक परिवेश विकृत हो चुका है और आम आदमी विषमता एव अन्याय का शिकार बना हुआ है, जिसके कारण कि समाज का अभिजात्य वर्ग उससे नफरत एव दूरी रखने का प्रयास कर रहा है –

"मैने कहा डपटकर
ये सेब दागी है
नही–नही साहब जी
उसने कहा होता
आप निश्चिन्त रहे
तभी उसे खासी का दौरा पड गया
उसका सीना थामे खाँसी यही कहने लगी"–––[1]

2 **सामाजिक मूल्य चेतना का ह्रास**

रघुवीर सहाय पूर्णरूपेण एक सामाजिक कवि रहे है। सामाजिक मूल्यो के प्रति उनकी अपनी अटूट आस्था रही है। उन सामाजिक मूल्यों को जीवित रखने के लिए रघुवीर सहाय ने बहुत ही प्रयत्न किया। उनकी रचनाओ मे दया, सहानुभूति, ममता आदि सामाजिक एव मानवीय मूल्यो के प्रति अटूट आस्था दिखाई देती है। इन मूल्यो के प्रति सहाय की अपनी एक अलग छटपटाहट है।उनका मानना है कि इन्ही सामाजिक मूल्यो के आधार पर ही समाज के ढाँचे की मजबूती का आकलन किया जा सकता है–

"इस लज्जित और पराजित युग मे
कही से ले आओ वह दिमाग
जो खुशामद आदतन नही करता

---

1 हँसो–हँसो जल्दी हँसो– रघुवीर सहाय, पृ0स0 14

कही से ले आओ निर्धनता
जो अपने बदले मे कुछ नही माँगती
और उसे एक बार आँख से आँख मिलाने दो"---[1]

जीवन को विल्कुल स्वाभाविकता मे प्रकट करके सहाय ने यथार्थ से साक्षात्कार कराने का प्रयास किया है। दया, करूणा, सहानुभूति, सच्चा मानव प्रेम, अहिसा आदि बहुत सारे सामाजिक मूल्यो को आत्मसात् करके सहाय जी ने अपनी रचनाओ का सृजन किया है। सहाय ने अपनी रचनाओ के माध्यम से सामाजिक चेतना के विकास का सकेत देते है। जिन नैतिक एव मानवीय मूल्यो को लोगो ने भुला दिया है और सस्कृति की सभी मान्यताओ की उपेक्षा करने का प्रयास किया है। उसकी याद दिलाने की सहाय ने भरसक कोशिश की है-

"सब कुछ लिखा जा चुका है अतीत मे
यह आकर मत कहो मुझसे पण्डितजनो
एक बात अभी लिखी नही गयी बाकी है
होने को भी बाकी लिखी जाय या न जाय
वह तुम जानते हो क्या ? अपनी रटी बोली मे
तुम वह भी बतला सकते होगे,
क्यो नही
विश्वविद्यालयो ने ऐसा कर रखा है प्रबन्ध
यहाँ मै अकेला एक छोटी सी चीज का ,
अपने समाज मे अर्थ देख रहा हूँ
वहाँ कह रहे हो तुम यह तो होता ही है।"---[2]

---

1 हँसो-हँसो जल्दी हँसो- रघुवीर सहाय, पृ0स0 10

2 लोग भूल गये है- रघुवीर सहाय, पृ0स0 22

न्याय एव सामाजिक समानता की स्थिति तभी आ सकती है जब कि समाज मे व्याप्त भ्रष्टाचार एव वैषम्य को समूल नाश करने का प्रयास किया जायेगा। आज यान्त्रिकीकरण के इस युग मे तथा तज्जनित भौतिकवाद के इस युग मे मानवीय एव सामाजिक मूल्यो और सवेदनाओ का क्षरण मानव को, "मानव" के पद से अपदस्थ करता जा रहा है। जहाँ कही न्याय और समानता की मान्यताए शेष रहती है, लेकिन उन्हे लोग समझ नही पाते है। ऐसी स्थिति मे सहाय अपनी रचनाओ मे उन मान्यताओ से परिचित कराने का प्रयास करते है– उन्होने न्याय और समता को बचाने के लिए भ्रष्ट सस्कृति को तोडने का प्रयास किया है और तोडने के लिए, तोड़ने के व्यावसायिक उद्देश्य का विरोध किया है। पीडा को पहचानने की कोशिश उन्होने इस प्रकार किया है कि उसी समय पीडा की सामाजिक सार्थकता प्रकट हो जाय। सहाय का कहना है कि आज अन्याय और दासता की पोषक और समर्थक शक्तियो ने मानवीय रिश्तो को समाप्त करने की प्रक्रिया मे वह स्थिति पैदा कर दी है कि अपने अधिकारो के लिए सघर्ष करने वाले सामान्य जन मानवीय अधिकार की अपनी हर लडाई के लिए असमर्थ सिद्ध हो रहे है–

"कौन आदमी है जो बचा रह जाता है
हर बार जब ताकतवर लोग अपने मन का
ससार रचने को सामूहिक हत्याए करते है
कौन हे जो बचा रहकर फिर पहचाना जाता है
और बचा रहता है
कौन है वह कि जो बचा तो रहता है
पर उसकी पहचान नही हो पाती है
और कौन है वह जो जैसे ही पहचाना जाता है
मार दिया जाता है"–––[1]

---

1 लोग भूल गये है– रघुवीर सहाय, पृ0स0 65–66

मनुष्य की लालसा और स्वाधीनता पर होने वाले प्रहार को सहाय ने अपनी कविताओ मे सफलता पूर्वक अभिव्यक्त किया है। उन्होने आज के उस रहस्यमय खूँखार चेहरे का एहसास कराया है जिसके अदृश्य पजे हर व्यक्ति और परिवार को एक करूण त्रास की स्थिति मे कैद किये हुए है। वह अपनी इच्छा से कुछ भी नही कह सकता है और वह जो कुछ भी करता है वह एक दशहत भरी स्थिति मे, अन्याय और शोषण को जानते हुए भी शोषित जन विरोध करने की हिम्मत नही रख पाता है-

"हँसो तुम पर निगाह रखी जा रही है
हँसो अपने पर न हँसना क्योंकिन उसकी कड़वाहट
पकड ली जायेगी और तुम मारे जाओगे
ऐसे हँसो कि बहुत खुश न मालूम हो
वरना शक होगा कि यह शख्स शर्म मे शामिल नही
और मारे जाओगे"---[1]

मर्यदा, स्वाभिमान एव अपनी सस्कृति से अटूट प्रेम रखने वाले रघुवीर सहाय ने जनता को अपनी स्वाभाविक स्थिति पाने एव अपने अधिकारों का उपभोग के प्रति बहुत ज्यादा प्रयत्नशील रहे। हिन्दुस्तान मे रहने वाले प्रत्येक व्यक्ति को अपने अधिकारो को प्राप्त करने की स्वतत्रता है, लेकिन बदलते हुए इस सामाजिक बदहाली मे बहुसख्यक लोग अपने अधिकारो से वंचित हो गये हैं, जिसके कारण उनकी स्थिति क्रमश बदतर होती जा रही है। उनकी माँगो की क्रमश उपेक्षा हो रही है-

"बरसो पानी को तरसाया
जीवन से लाचार किया
बरसो जनता की गगा पर
तुमने अत्याचार किया

---

1 हँसो-हँसो जल्दी हँसो- रघुवीर सहाय, पृ0स0 25

हमको अक्षर नही दिया है
हमको पानी नही दिया
पानी नही दिया तो समझो
हमको वानी नही दिया
अपना पानी
अपनी बानी हिन्दुस्तानी
बच्चा–बच्चा माँग रहा है"–––[1]

आज के बदलते सामाजिक परिवेश मे सहाय का यह विचार है कि सच्चे सामजिक आदर्शो की उपेक्षा की जा रही है। सामाजिक मान्यताओ एव आदर्शों की पूर्णरूपेण अवहेलना हो रही है। पूँजीवादी दुर्व्यवस्था ने सबको अपने चंगुल मे कर लिया है, परिणामस्वरूप सामाजिक मान्यताए एव सभी आदर्श नगण्य हो गये है, इस सामाजिक अव्यवस्था मे सामान्य जन का कोई मूल्य नही रह गया है। सहाय ने समस्त सामाजिक मान्यताओ को जड से पहचानने का प्रयास किया है– "समाज की समझ का मतलब है, समाज मे मनुष्य और मनुष्य के बीच जितने गैर इन्सानी रिश्ते है, उनकी समझ कहाँ से वे पैदा होते है, इसकी समझ और उनकी जड़ो तक पहुँच इतिहास की समझ है।"–––[2]

सहाय ने सामाजिक मूल्यो को सर्वथा कायम रखने पर बल दिया है। इसके अतिरिक्त उन्होने व्यर्थ का पोज बनाने वाले कवियो एव साहित्यकारों का भी पर्दाफाश किया है। वे शोषक एव पूँजीपतियो के समाज मे पलने–बढने वाले कुछ ऐसे लोगो को भी अपनी चर्चा का विषय बनाया है, जो अपने व्यक्तिगत लाभ के लिए सामाजिक मान्यताओ एव मूल्यों की अवहेलना करते है–

---

1 हँसो–हँसो जल्दी हँसो, पृ0स0 6

2 लिखने का कारण– रघुवीर सहाय, पृ0स0 158

"हम जानते है कि पतन अनेक रूप धरकर
हमे क्षय कर रहा है
और यह भी जानते है कि बदलना तो सब कुछ एक साथ होगा
पर समाज को एक साथ बदलने के लिए
एक व्यापक बहुआयामी आदर्श और उतना ही स्पष्ट कार्यक्रम चाहिए
वह नही है इसलिए जनता जाग्रत नही हो सकती
तब जनता को सिर्फ उत्तेजित करने के प्रयत्न
हम करते है
व्यापक पतन को विरोध के खण्डो मे बॉंटकर
और खण्ड
विरोध को अकेला और भ्रष्ट करता जाता है"---[1]

जो समाज पतन की तरफ उन्मुख हुआ है औ जहॉं की सस्कृति विकृत हो चुकी है। जिसमे सर्वत्र अन्याय और असमानता की लहर व्याप्त है, ऐसे समाज के पुर्ननिर्माण हेतु सहाय जी ने अथक प्रयास किया है--

"कभी-कभी दुनिया को फिर से बनाने के वास्ते
कागज पर योजना करता हूँ, कुछ नयी पोशाके
कुछ नये फर्नीचर, कुछ नये फूल, कुछ कीडे-मकोडे
लोग नये खोजता हूँ तो सब वही-वही लोग जुट जाते है
बूढे बने हुए। वह देखो तीस बरस पहले का यह परिचित
ऐसे अनेक है, इस ठहरे चित्र मे सहसा बूढ़े हुए जड चेहरे"---[2]

सहाय ने समस्त सामाजिक मान्यताओं एव मानवीय• मूल्यो को आत्मसात् करके ही अपनी रचना को आगे बढाया है। जनता के दर्द को बिल्कुल अपना दर्द समझकर, उस दर्द को समूल नाश करने के लिए उन्होने भरसक कोशिश की है।

---

1 एक समय था -रघुवीर सहाय, पृ0स0 27

2 कुछ पते कुछ चिट्ठियॉं-रघुवीर सहाय, पृ0 46

3 भारतीय औरतों तथा बच्चों का यथार्थ

रघुवीर सहाय मानवीय करूणा के कवि है। उनकी रचनाओ मे यह मानवीय करूणा स्त्रियो और बच्चो की यातनामय जिन्दगी को चित्रित करते समय सर्वाधिक व्यक्त हुई है। सहाय का यह कहना है कि–

> "इन कविताओ मे औरते और बच्चे ज्यादा इसलिए आते है
> कि ये मेरे सबसे नजदीक है। और इसलिए भी हो सकता है
> कि जिस तरह के मानसिक आध्यात्मिक जुल्म का दर्द मे
> मै देखता हूँ सबसे ज्यादा औरतो और बच्चो पर ही
> होता है, कम से कम उनके जीवन मे प्रकट दिखाई देता है"–––[1]

सहाय ने नारी की सभी स्थितियो एव समाज मे उसके साथ होने वाले अत्याचार को पूर्ण यथार्थवादी दृष्टि से चित्रित किया है। यह महत्त्वपूर्ण बात है कि सहाय की कविताओ मे जो स्त्री और लड़की आती है, वह छायावादी कविताओ की नारी से भिन्न है। छायावादी काव्य की नारी अलौकिक रूप सम्पन्न थी , उसमे उल्लास या प्रेम था, उसमे आशा थी, भावुकता थी, कही से कोई दु ख नही था, उसमे कोई विरह व्यथा नही थी। सहाय की कविता मे जो स्त्री आती है उसे देखकर राहत मिलती है, वह सुन्दर नही है, वह विरह मे मछली की तरह तडप नही रही है। वह सम्भोग की एक गुडिया नही है, वह तो एक मरती–खपती सच्चाई है। वह दुबली और थकी हुई है उसके बडे–बडे दाँत है। वह बच्चा गोद मे लिए चलती बस मे चढ रही है। वह साथ मे दो बच्चे लिए प्रधानमत्री का पता पूछ रही है। उसके बाल अब काले नही है। वह अपनी जवानी के आरम्भ से ही बहुत कष्ट उठा चुकी है, वह अब थोड़े–थोड़े लगातार स्नेह के बदले एक पुरूष के आगे झुककर चलने को तैयार हो चुकी है–

---

1 लिखने का कारण– रघुवीर सहाय, पृ0स0 164

"ग्रीष्म फिर आ गया
फिर हरे पत्तो के बीच
खडी है वह
ओठ नम
और भरा-भरा सा चेहरा लिये
बदली की रोशनी सी नीचे देखती है
निरखता रह
उसे कवि
न कह, न हँस"---[1]

सहाय की कविता मे जो लडकी आती है, वह भी किसी रोमास के लिए नही। वह एक कमजोर लडकी है। भारी बस्ता लिए हुए, काले पावो वाली, जिसकी बाढ मारी गयी है और जो डर के मारे अपना दु ख नही बता पाती। सहाय की कविता का यह बोध स्पष्टत एक अलग सवेदना लिये हुए है। उसका अपना अलग सौन्दर्य है। अपनी अलग जमीन है-

"एक औरत, दो बच्चे, एक गोद एक पैदल
पता पूछती रहती है प्रधानमत्री का
दस बरस बेदखल हुए उसे हुए पॉच अध पागल
अत्याचार समाचार बन गया, इन्सान का अपमान छपा नही
दस बरस मुझे भी जड हो गये हुए
अब रह गया सिर्फ उस औरत का खब्त"----[2]

सहाय ने अपनी रचनाओ मे सर्वत्र नारी चेतना को मुखरित करने का प्रयास किया है। वे नारी के अधिकारो के सच्चे हिमायती रहे है। उन्होने समाज की दृढता के लिए नारी के गैर बराबरी जैसे वैषम्य पर अनेक कविताओं मे

---

1 आत्म हत्या के विरूद्व- रघुवीर सहाय, पृ0स0 5

2 वही, पृ0स0 25

तीखा व्यग्य किया हे। वे पुरूष प्रधान समाज मे औरत को भी पुरूषो की कोटि मे लाकर खडा करने का प्रयत्न करते है, जिससे कि नारी भी पुरूषो की तरह अपने अधिकारो का उपभोग कर सके–

"औरतो के चेहरे समाज के दर्पण है,
पुरूषो जेसे
किन्तु जो दर्द दिखलाते है उनमे मिठास है
पुरूष गिडगिडाते है औरते सिर्फ थाम लेती हे बेबसी
कोई शरीर नही जिसके भीतर उसका दु ख न हो
तुम जब उसमे प्रवेश करते हो और वह नही मिलता
वही है बलात्कार
बाकी है प्रेम और दोनो के बीच की कोई स्थिति नहीं"---[1]

सहाय ने अपनी रचनाओ मे आम जनता की यन्त्रणाओ के साथ ही साथ नारी के यन्त्रणा की भी परिभाषित करने की कोशिश की है, जो इस भ्रष्ट और बुर्जुआ लोकतत्र की शिकार है। वर्तमान सामाजिक स्थितियो के बीच असहाय स्त्री कितनी व्यथाओ से घिरी हुई है। उसके लिए अधिक चिन्ता करने वाली बात यह है कि वह स्त्री अपनी व्यथा को जानती क्यो नही ? वह उससे इतना अनभिज्ञ क्यो है ? समाज के बदलते परिवेश में नारी के साथ जो अनेकानेक अत्याचार हो रहे है, उसे हर तरह से प्रताडित किया जा रहा है, इसका सफल दृष्टान्त सहाय की कविताओ मे प्राप्त होता है। पुरूषो द्वारा उसके साथ बहुत सारे अपराध किये जा रहे है। बलात्कार, अनावश्यक शोषण एव सदैव गैर बराबरी का दर्जा जी रही औरतों की दयनीय दशा को सहाय की रचनाओ मे देखा जा सकता है–

"नारी विचारी है
पुरूष की मारी है
तन से क्षुधित है
मन से मुदित है

---

1 लोग भूल गये है– रघुवीर सहाय, पृ0स0 63

लपक कर – झपककर
अन्त मे चित है"---[1]

रघुवीर सहाय केवल यही कोशिश नही करते कि सामाजिक यथार्थ को मात्र अभिव्यक्त करके ही छोड दिया जाय, अपितु उनकी सबसे ज्यादा कोशिश इस बात की रही है कि सवेदना, के स्तर पर उस यथार्थ की तीव्रताये महसूस भी कराया जा सके। नि सदेह इस अव्यवस्था मे स्त्रियाँ और बच्चे जिस आत्यान्तिक शोषण, पाशविकता और परवशता के शिकार है, वह स्थिति मानवीय सवेदना को सर्वाधिक उद्वेलित करती है।

इस अर्द्धसामन्ती और अर्द्ध पूँजीवादी समाज मे शोषण एव उत्पीड़न की सर्वाधिक आखेट स्त्रियो को अपनी कविता मे लाते हुए, मुक्तिबोध की तरह ही रघुवीर सहाय आत्मदया अथवा व्यर्थ की भावुकता मे नही फँसते, बल्कि जिन सामाजिक स्थितियो के बीच यह अत्याचार घटित हो रहा है, उन स्थितियो को समझने और बदलने की ओर प्रेरित करते है। सहाय ने सदैव ही इस प्रकार के सामाजिक अत्याचार एव अन्याय का विरोध करते हुए स्त्रियो के साथ व्याप्त वैषम्य को दूर करने के लिए ही प्रयत्नशील रहे।

"कई कोठरियाँ थी कतार मे
उनमे से किसी मे एक औरत ले जाई गयी
थोडी देर बाद उसका रोना सुनाई दिया
उसी रोने से हमे जाननी थी एक पूरी कथा
उसके बचपन से जवानी तक की कथा"---[2]

---

1 सीढियो पर धूप मे– रघुवीर सहाय, पृ0स0 172
2 हँसो–हँसो–जल्दी हँसो – रघुवीर सहाय, पृ0स0 12

कहाँ है ? यह प्रश्न गधेपन को वहशीपन के हद तक ले जाने पर ही पूछा जा सकता है। मध्यवर्गीय समाज मे इसी का रूप यह वाक्य है, "तू पर–पुरूष द्वारा भोगी जाने के पहले मर क्यो न गई ? दूसरे शब्दो मे इसे यो कहा जायेगा, "तूने विरोध मे अपना गला क्यो नही काट लिया ?"---[1]

सहाय ने औरतो को पुरूषो के समान समान दर्जा प्रदान करने के पक्षधर रहे है और उनके साथ होने वाले अत्याचार का घोर विरोध किया है– "आबादी बढ जाने के भय से जो राजनैतिक नेता औरत को बच्चा पैदा करने के नाकाबिल बना देना बहुत सही उपाय बताते है, वे अगर औरतो के साथ मिलकर उनकी अपनी देह की आजादी के लिए लडे तो एक ज्यादा ताकतवर समाज बनेगा ---और औरत लोकतत्र की सिपाही बनेगी, बच्चा पैदा करने वाली मशीन नहीं"---[2]

डा0 राम मनोहर लोहिया ने भी औरतो के प्रति होने वाले अत्याचार को भलीभाँति महसूस किया और उनके दर्द एव अत्याचार के पीछे राजनीतिक एव सामाजिक दोनो कारणो को जिम्मेदार ठहराया, इसके साथ ही उसका अन्त करने का भी उन्होने अथक प्रयास किया–

"सन् साठ के दशक मे लोहिया ने यह समझ दी कि स्त्री जाति समाज का सबसे अधिक शोषित वर्ग है और शोषितो के अधिकारो की कोई भी लड़ाई नर–नारी की समता की लडाई के बिना पूरी नही हो सकती। पर दस साल बाद यानि सन् सत्तर से अस्सी के बीच मे जिस तेजी से राजनीति केवल सत्तानीति बनती गयी, उसी अनुपात मे स्त्री पर अत्याचार बढता गया–[3]

---

1 अर्थात– रघुवीर सहाय, पृ0स0 88–89

2 वही " पृ0स0 89

3 वही " पृ0स0 96

सहाय ने अत्याचार एव बलात्कार का शिकार हुई औरते जिनकी फरियाद प्रशासक भी नही सुनता है, उसकी उन्होने निन्दा की है और ऐसे अत्याचार को समाज के लिए घातक बताया है– "आज किसी भी औरत के बारे मे कह दिया जा सकता है कि चूँकि वह पर पुरूष से सम्बन्ध रखती थी, इसलिए उस पर किसी ने बलात्कार किया तो क्या बुरा किया। इसी दृष्टि का यह रूप है कि बागपत मे माया त्यागी को सड़क पर नगा किया तो कौन सा अपराध हुआ, क्योकि वह डकैत थी और पुलिस का यह कथन कि हमने नही, जनता ने उसे नगा किया और भी भयानक है क्योकि पुलिस सिद्ध कर रही थी कि इस काम मे हम और जनता साझेदार है"---[1]

ऐसे अत्याचार और अपराध का सहाय ने हटकर विरोध किया है और इसको समाप्त करने के लिए औरतो को एकजुट होकर सामने आने का उनका अपना सशक्त आग्रह है। – "औरतो के ही दयनीय चित्र को प्रस्तुत करते हुए उन्होंने कहा है– "जब मै औरत को देख रहा था, वह काली और दुबली थी, थोडी से झुरायी हुई पर शालीन सलीके से बेंत की कुरसी पर बैठी थी जब वह बोलती थी तो उसके दाँत कुछ मैले पर सब हालाँकि कमजोर दिखते थे। पैरो मे जो पट्टिया बधी थी वे अब मैने देखी–थोड़ी मैली थी, और मेरी ओर देख रही थी--[2]

---

1 अर्थात– रघुवीर सहाय, पृ0स0 96–97

2 जो आदमी हम बना रहे है–रघुवीर सहाय, पृ0स0 180

4 पूँजीवाद का प्रसार और बदलते सामाजिक सन्दर्भ

रघुवीर सहाय की सभी रचनाओ मे वर्तमान पूँजीवादी अव्यवस्था शोषण एव उत्पीडन तथा समाज की बदहाल स्थिति के बीच बदलते हुए मानवीय सन्दर्भ का सफल चित्रण प्राप्त होता है। परिणामत उनकी रचनाए पूँजीवादी अव्यवस्था एव उससे उत्पन्न भयकर शोषण एव उत्पीडन के विरूद्व अपना आक्रोश प्रकट करती हैं– देश की विशाल जनता पर मुट्ठी भर लोगो द्वारा किया जाने वाला अन्याय सहाय की कविताओ का बार–बार विषय बनता है। आज आम जनता के सन्दर्भ मे लिये गये निर्णयो मे जनता का कही कोई वर्चस्व नही है। शोषक वर्ग के हितो की सुरक्षा करने वाले, शासन का अत्याचार झेलते हुए आम जनता बार–बार आत्म हत्या की स्थिति मे पहुँच चुकी है। इस पूँजीवादी एव सामन्ती व्यवस्था के अन्तर्गत सामान्य आदमी की कोई पूछ नही है। उसके साथ केवल दिन–प्रतिदिन अत्याचार ही हो रहे है। उसे अपने व्यक्तित्व के विकास के लिए एव अपनी सही स्थिति प्राप्त करने से हर मोड पर रोक दिया जा रहा है। शासन तत्र भी इतना भ्रष्ट हो गया है कि वह पूँजीपतियो एव आभिजात्य वर्ग का ही पक्षधर है। ऐसी स्थिति मे देश की बहुत सारी प्रतिभाशाली लोग इस पूँजी बाजार से ऊबकर दूसरे देशो को भी पलायन कर रहे है–

"रोज–रोज थोडा–थोड़ा मरते हुए लोगो का झुण्ड
तिल–तिल खिसकता शहर की तरफ
फरमाइशी सम्भोग मे सुनो एक उखडी सास की
साय–साय इस महान देश मे क्या करे कहाँ जायँ
घबराते लडक गदराती औरत लेकर"---[1]

---

1 आत्म हत्या के विरूद्व– रघुवीर सहाय, पृ0स0 22

शोषण एव उत्पीडन की शिकार हुई जनता को समाज का आभिजात्य और पूँजीपति वर्ग गिरी निगाहो से ही हमेशा देखने का प्रयास करता है, जिससे समाज मे एक अलगाव की स्थिति पैदा हो रही है। पूँजीवादी अव्यवस्था के अन्तर्गत पीसते हुए लोगो का सफल चित्रण रघुवीर सहाय की सभी काव्य कृतियो मे प्राप्त होता है। सहाय खुलकर पूँजीवादी अव्यवस्था का विरोध करते है। सवेदना के स्तर पर रघुवीर सहाय की कविताए शोषित जनता की पीडा का जिस प्रकार एहसास कराती है, वह विसगत यथार्थ को बदलने के प्रयासो से जुडने के लिए प्रेरित करती हैं। इसीलिए उनकी कविताए शोषित व्यक्ति की आन्तरिक पीडा और घुटन के साथ ही उसके अन्दर जीवन की इच्छा की भी कविता है। उनकी लम्बी कविता मे घुटन के आत्यान्तिक प्रसगो के बीच "छुओ मेरे बच्चे का मुँह तथा "चिट्ठी लिखते हुए छुटकी ने पूछा" जैसे जीवन से जुडे हुए रचनात्मक प्रसग भी है, जो कविता मे तनाव से मुक्ति के लिए रखे गये है। जैसा कि –

"छूओ
मेरे बच्चे का मुँह
गाल नही जैसा विज्ञापन मे छपा
ओठ नही
मुँह
कुछ पता चला जान का शोर डर कोई लगा
नही – बोला मेरा भाई मुझे पाँव–तले
रौदकर, अग्रेजी
कितना आसान है पागल हो जाना
और भी जब उस पर इनाम मिलता है
नकली दरवाजे पीटते है जवान हाथो को
काम सर को आराम मिलता है दूर
राजधानी से कोई कस्बा दोपहर बाद छटपटाता है

एक फटा कोट एक हिलती चौकी एक लालटेन
दोनो, बाप-मिस्तरी, और बीस बरस का नरेन
दोनो पहले से जानते है पेच की मरी हुई चूडियॉं
नेहरू युग के औजारो को मुसद्दीलाल क‌ी सबसे बडी देन"---[1]

उनकी कविताओ मे जिन मनुष्य विरोधी स्थितियो के प्रसग आए है, उसमे प्रमुखता इस विडम्बना को उघाडने की है कि आत्म हत्या और घुटन की वर्तमान स्थितियॉं खत्म हो। इसके लिए समाज के तात्कालिक नेतृत्व द्वारा उद्घोषणाऍं तो की जा रही है, लेकिन इन उद्घोषणाओ की छत के ठीक नीचे उन्ही के द्वारा वे सारे कारण और भी पुख्ता किये जा रहे है, जिनसे ये स्थितियॉं पैदा होती है-

"मरते मनुष्यो के मध्य खडा मक्कार मत्री
कहता है सविश्वास
सरकार सिचाई करे
सुनते है लडके, अधेड पढते है, याद करते है बूढे
यह विचार, अखबार सीने पर धर जाता है लोहे के
अक्षरो मे एक धौस, कोई छटपटाता नही ---[2]

बुर्जुआ लोकतात्रिक ढॉंचे के अन्तर्गत पूँजीवादी नेतृत्व, विसंगतियों को खत्म करने के लिए समय-समय पर "समय आ गया है" - कहकर नकली निर्णयात्मक तत्परता दिखलाता है, जबकि यही बात स्वय कवि अथवा इस कविता का द्रष्टा "दस बरस पहले" काफी पहले ही इसे महसूस करके व्यक्त कर चुका होता है। लेकिन उस समय उसकी कोई सुनवाई नही हुई। क्योंकि उस समय

---

1 आत्म हत्या के विरूद्व- रघुवीर सहाय, पृ0स0 86

2 वही " पृ0सं0 21

इस भ्रष्ट नेतृत्व को ऐसा कहने से अपना हित सिद्ध होता नही दीख रहा था। लेकिन आज जब केवल नकली आह्वान से अपना हित सिद्ध होता मालूम होता है तो बडे–बड़े अधिकारी जो कि पूँजीपतियो के सहयोगी है वे यह कहते है कि अब समय आ गया है। लेकिन सबसे बडी बिडम्बना इस बात की है कि जैसे कोई न्यायाधीश जब वह पद पर था तब न्याय की निष्पक्षता को लेकर उसे कोई चिन्ता नही थी। न ही उसके पास कोई आह्वान था। लेकिन जब वह पदमुक्त हो रहा है और अपनी उद्घोषणा की दिशा मे न्यायाधीश की हैसियत से कुछ भी करने के दायित्व से मुक्त है, तब वह निहायत सुविधाजनक स्थिति मे यह नकली काल देता है कि "समय आ गया है" इस शर्मनाक और नकली नाटक के खोखलेपन को सहाय भलीभाँति पहचानते थे–

"हर साल एक और नौजवान घूँसा
दिखाता है, मेज पर पटकता है
बूढो की बोली मे खोखले इरादे दोहराता है
हाँ हमसे हुई जो गलती सो हुई
कहकर एक बूढा उठ
एक सपाट एक विराट एक खुर्राट समुदाय को
सिर नवाता है"–––[1]

आज शासन व्यवसाय का दौर भी इतना बिगड चुका है कि गरीब एव असहाय जनता के लिए सभी आवश्यक जीचे जुट ही नही पा रही है। जनता को अपनी चीजो को सस्ते दामो मे अन्य देशो को बेचने के लिए मजबूर कर दिया जा रहा है और उसे अपनी आवश्यकता की चीजे बहुत मँहगी कीमत पर खरीदना पडता है। फलस्वरूप आर्थिक क्षेत्र मे आर्थिक असमानता एव अन्याय

---

1 आत्म हत्या के विरूद्ध – रघुवीर सहाय, पृ0स0 28

की एक मजबूत दीवार खडी होती जा रही है जिसमे केवल सामान्य और मामूली आदमी ही पिस रहा है –

"हम गेहूँ देंगे
और चीनी भी देंगे
क्योंकि चीनी के खाने का अनुभव जरूरी है
वे अपनी चीनी कुछ पैसो के बदले मे हमको दे देंगे
क्योंकि पैसा जरूरी है
उससे खरीदेंगे वे महँगा माल
क्योंकि हमने बताया है कि वह भी जरूरी है
ऐसे सुख–सम्पत्ति चीनी के बहाने बढ
तो सस्ते दाम की दुकान ही जरूरी है"---[1]

चारो तरफ लूट–खसूट एव शोषण का भयावह दृश्य दिखाई देता है, जिसके कारण मनुष्य के अन्दर निरन्तर एक चोरी की प्रव्रत्ति पनपती जा रही है। आज जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को समाज की उपभोक्ता सस्कृति ने अपनी गिरफ्त मे ले लिया है। शोषण का यह नया प्रकार है, जिसे पतनशील पूँजीवाद ने विकसित किया है। वह हर चीज को अपने पक्ष मे इस्तेमाल करने का गहरा कुचक्र रच रहा है। सहाय ने देश की व्यवस्था को बिल्कुल दोषपूर्ण बताते हुए यह प्रतिपादित किया है– "मै मानता हूँ कि अगर अपने देश के सन्दर्भ देखे तो हमारे यहाँ जो शक्ति का ढाँचा बना हुआ है– ऊपर से नीचे तक इन सबको यानी यह जो पूरी व्यवस्था है, इन सबको हम बिल्कुल बेकार और नाकामयाब मानते हैं। उद्‌देश्य वही है– समता और मनुष्य –मनुष्य के बीच की गैर बराबरी को मिटाने के लिए यह व्यवस्था बिल्कुल बेकार है"---[2]

---

1 लोग भूल गये है – रघुवीर सहाय, पृ0स0 82

2 लिखने का कारण– रघुवीर सहाय, पृ0स0 104

बढते हुए चोर बाजारी को सहाय ने पूँजीवादी सस्कृति का पोषक बताया और इस चोर बाजारी मे केवल आम जनता का शोषण होता है। निर्धारित मूल्य से अधिक धन वसूल कर सामान्य जनता को दिन प्रतिदिन असहाय करने की प्रवृत्ति का सहाय ने डटकर निन्दा की है। पूँजीपति वर्ग चोर बाजारी के अन्तर्गत अधिक से अधिक धन कमाने के चक्कर मे पडकर आम जनता का शोषण करने के पीछे लगा रहता है- जिसको सहाय ने अपनी रचनाओ मे प्रकट करने का प्रयास किया है। चारो तरफ घूँसखोरी और रिश्वतखोरी के परिणामस्वरूप आम जनता का कोई अस्तित्व ही नही।" एक स्थल पर वे लिखते है- "उत्तर प्रदेश के निर्वाचित एक निर्दलीय सदस्य ने इस बहस मे एक बहुत उम्दा बात कही। उन्होने ने कहा "आज से तीस साल पहले जब किसी को रिश्वत लेने का लालच दिया जाता था। तो वह कहता था, "न साहब, रिश्वत मै न लूँगा, मेरे आगे बाल बच्चे है। आज जब वह रिश्वत लेता है तो कहता है- "क्यो न लू साहब! मेरे आगे बाल-बच्चे है"---[1]

रघुवीर सहाय सदैव घूस खोरी एवं इस चोर बाजारी अव्यवस्था के विरूद्व रहे है। उनकी रचनाओ मे इस धधकते पूँजीवाद एव चोर बाजारी के प्रति एक बिद्रोह का भाव ही दिखाई देता है। अभिप्राय यह है कि सिर्फ यथार्थ चित्रण ही नही, बल्कि इस भयावह यथार्थ के उत्पन्न होने के कारणो को खोजकर रचनाकार द्वारा उस पर प्रहार भी किया गया है। वास्तविकता यह है कि भारतीय पूँजीवाद जिसने सामन्तवाद से समझौता कर रखा है, किसी न किसी तरह अपने को बनाए रखना चाहता है। वह अब भी लोकतत्र का ढोग करता है, लेकिन जब भी जनता बडे पैमाने पर अपने अधिकारो के लिए

---

1 दिल्ली मेरा परदेस, रघुवीर सहाय, पृ0स0 12

जागरूक होती है, यह बुर्जुआ लोकतत्र अपना नकली मुखौटा उतारकर फाँसी प्रवृत्तियो के साथ जन अधिकारो के लिए प्रस्तुत हो जाता है–

"यह समाज मर रहा है, इसका मरना पहचानो मत्री
देश ही सब कुछ है, धरती का क्षेत्रफल सब कुछ है
सिकुडकर सिहासन भर रह जाये तो भी वह सब कुछ है
राजा ने मन मे कहा जो राजा प्रजा की दुर्बलता नही पहचानता
वह अपने देश को नही बचा सकता प्रजा के हाथो से
यह समाज मर रहा है, नकल अपनी ही नकल करता जा रहा है"–––[1]

रघुवीर सहाय की कविताए इस सकटग्रस्त पूँजीवाद को अन्तिम रूप से दफन कर देने के लिए विरोध मे उठे हुए हाथ की तरह हैं। कवि के लिए यह आवश्यक है कि मुक्ति के लिए प्रयत्नशील भारतीय जनता के सामूहिक सघर्षो के और भी मोर्चों को अपनी कविता की दुनिया मे लाकर उसे विस्तृत करने की प्रक्रिया मे तीव्रता लाए।

पूँजीवाद जो आज धरती पर "मानवता के विरूद्व" अपराधी, घोषित होकर शब्दकोश का सबसे घृणास्पद शब्द बन गया है, इसे शोषित लोग अपनी दुनिया और अपने शब्द कोश से निकाल बाहर करना चाहते है। इन शोषित सघर्षकारी जनो के लिए रघुवीर सहाय निरन्तर पथ प्रदर्शक के रूप मे काम करते रहे। चारो तरफ भ्रष्टाचार एव बेईमानी इस हद तक पहुँच गयी है कि समाज मे सामान्य मनुष्य का अस्तित्व बिल्कुल खतरे मे पड़ गया है। चोर बाजारी,

---

1 हँसो–हँसो जल्दी हँसो–रघुवीर सहाय, पृ0सं0 75

नकलीपन और धोखाधडी का बढता रूख समाज को बदतर बना रहा है। पूँजीवादी सस्कृति ऐसा विकराल रूप धारण करती जा रही है। कि शोषण का शिकार होते लोग क्रमश मृतक के समान होते जा रहे हे यही कारण है कि समाज का परिवेश भी एक दूषित वातावरण का रूप धारण कर लिया है। परिणामस्वरूप एक लाचार एव ईमानदार आदमी हर मोड पर मार खा रहा है। वे लोग जो पूँजीवादी सस्कृति और शोषको के समूह से सम्बन्धित है, उन्हे इस लाचारी एव शोषण की नीति मे आनन्द का अनुभव होता है। वे उसी आनन्द को अपनी जिन्दगी का वास्तविक आनन्द समझते है–

"लोगो को जब मारो तो वे हँसते है
कि वाह कितना मेरा दर्द पहचाना
बहुत दिन हो गये जिनसे मिले हुए
उनमे से बहुत से अब मिलने के काबिल नही रहे
वे इतने बूढे हो चुके है कि उन्हे अब भविष्य के
किसी मसले पर मुझसे कोई बात करने को
नही रह गयी है, वे क्रोध में कहते है कुछ अनर्गल जो
मै समझ पाता नही सत्य या असत्य है
जब मैने कहा कि यह फिल्म घातक है
इसमे मनुष्य को झूठा दिखाया है
तो प्रधानमत्री नाराज हुए यह व्यक्ति मेर विरूद्व है---[1]

पूँजीपति एव शोषको के निरन्तर बढते अत्याचार से आम जनता का जीवन सदैव सकट मे पड गया है। लेकिन इस सकट से उबरने के लिए चाहकर भी वह नही उबर पा रहा है। निरन्तर पूँजीपतियो एव शोषको द्वारा वह इतना कसकर दबा दिया जा रहा है कि उसे अपना सर उठाने तक अवसर नही दिया जा रहा है। वह केवल घुटन एव एक असहनीय पीडा का शिकार होकर अपनी जिन्दगी बिता रहा है–

---

1 हँसो हँसो जल्दी हँसो– रघुवीर सहाय ,पृ०स० 67

"ताकतवर लोग खोजते है कमजोर को
एक तरफ अस्पताल, झोपड़ी, हजार वर्ष से
वंचित जाति वर्ग लाश जुटे लोग
ढहे घर दुआर जिसको वे अभय दे और
दूसरी तरफ चित्रकार जो अपने खून से
कागज पर उनकी तसवीरे आके
जन के मन भय भरें"---[1]

पूँजीवाद ने आम जनता की स्थिति इस प्रकार कर दिया है कि उसके सामने आत्म हत्या करने की नौबत आ गयी है। वह एक भयकर "सफरिंग" के दौर से गुजर रही है। उस सफरिंग का यद्यपि उसे एहसास है, लेकिन ज्यो ही वह उस सफरिंग के विरूद्ध खड़ा होने का प्रयास करती है, त्यो ही उसे इतना भयकर रूप से दबा दिया जाता है कि शोषको एव पूजीपतियो के सम्मुख उसे कुछ बोलने की हिम्मत नही रह जाती है। लेकिन बाद मे आगे चलकर आम जनता इस भयानक ताडव से लडने का प्रयास करती है—

"हम जानते है कि पतन अनेक रूप धर कर
हमे क्षयकर रहा है
और यह भी जानते है कि बदलना तो सबकुछ एक साथ होगा
पर समाज को एक साथ बदलने के लिए
कार्यक्रम चाहिए।
वह नही है, इसलिए जनता जाग्रत नही हो सकती
तब जनता को सिर्फ उत्तेजित करने के प्रयत्न
हम करते है
व्यापक पतन को विरोध के खण्ड़ो मे बाँटकर
और खण्ड
विरोध को अकेला और भ्रष्ट करता जाता है"---[2]

---

1 लोग भूल गये है- रघुवीर सहाय, पृ0स0 38

2 एक समय था- रघुवीर सहाय, पृ0स0 27

बढती हुई चोर बाजारी एव पूँजीवादी अव्यवस्था के कारण जनजीवन बहुत ही सकट मे पड गया है, जिसके कारण लाचार एव असहाय व्यक्ति को इस दौर मे किसी प्रकार का कोई स्थान नही मिलता है। हिन्दुस्तान का लोकतत्र ही भ्रष्ट तत्र हो गया है, जिसके कारण इस प्रकार की अव्यवस्थाए सशक्त होती जा रही है और पूँजीवाद के शोषण का शिकार जनता तरह-तरह की यातनाए झेल रही है। अत्याचार, घूसखोरी एव शोषण अपनी चरम सीमा पर पहुँच रहा है। सहाय ने चोर बाजारी, वस्तुओ के साथ अनावश्यक मिलावट साथ ही साथ अनावश्यक रूप से चोरी का धन कमाने वालो की निन्दा की है एव उन्होने ऐसे लोगो को समाज राज्य तथा देश की अन्य जनता के लिए घातक बताया है। उनका यह भी कहना है कि देश का भ्रष्ट तत्र जिसमे कि शासक वर्ग एव राजनेता अपनी झोली भरने के पीछे उतावले हो गये है, वे कभी भी सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था को स्थायी एव हितकारी रूप नही दे सकते। वे इस अव्यवस्था के अन्तर्गत केवल अपना हित सिद्व करना चाहते है भले ही औरो का कितना भी अहित क्यो न हो? पूजीवादी समाज के अन्तर्गत कोई भी चीज ऐसी नही रह गयी। जिसे मनुष्य अपना कह सके।

पूँजीवादी सस्कृति के साये मे पीसती हुई जनता अपनी प्राचीन मान्यताओ एव मूल्यो को कायम करने में असमर्थ है। पूँजीवाद और चोर बाजारी सम्पूर्ण आर्थिक परिवेश को विकृत कर दिया है जिसमें कि समाज का सामान्य आदमी हर मोड पर परेशान हो रहा है। ऐसी विकृत अव्यवस्था के अन्तर्गत सहाय ने जनता के दर्द को पहचानने की कोशिश की है–

"दु ख मे, दु ख मे भी अन्तर है, जो सहने वालो मे है
एक खुले घावो मे है दु ख, एक पके छालो मे है
उस दु ख से क्या लेना देना जो मरने वालो मे है
हम उस दु ख के अन्वेषक हैं जो जीने वालो मे है"---[1]

5 **महानगरीकरण और असहाय आदमी**

आज के बदलते परिवेश मे जहाँ महानगरीकरण का जोर है बहुत सारे छोटे छोटे नगरो को एक महानगर मे परिणत कर दिया जा रहा है, फलस्वरूप चारो ओर अशान्ति का दौर ही दिखाई दे रहा है। इस अव्यव्स्था मे मनुष्य अपने को बिल्कुल निर्बल एव असहाय पाकर स्वय अपनी सुरक्षा के लिए परेशान हे। सहाय इस मत रो बिल्कुल सहमत है कि सन् 1950 और 1960 के बीच नेहरू का प्रभाव अपने शिखर पर था। इस दशक मे मध्यवर्ग की आकाक्षाए तेजी से बढ़ने लगी। पूँजीपति वर्ग की पूँजी पैदा करने वाली मशीने अपेक्षा से अधिक अच्छे परिणाम देने लगी और इसी के कारण सत्तासीन राजनैतिक दल का आत्मविश्वास और अहकार बढा। क्रमश मनुष्य को तरह-तरह के रोजगारो मे काम के लिए जो हिस्सा मिलता था वह भी औद्योगिकीकरण के कारण हाथ से निकल गया। यह भी निश्चित ही रहा कि सामान्य जन इस विकास का खामोश दर्शक बना रहा। क्रमश महानगरीयकरण की स्थिति बढती गयी, जिसके कारण मनुष्य क्रमश असहायता के घेरे मे आता गया। सहाय की रचनाए तत्कालीन सामाजिक आर्थिक परिवेश को सफलतापूर्वक चित्रित करती है जो कि किसी रचनाकार के लिए अनिवार्य होता है, जैसा कि उमाशकर जोशी ने प्रतिपादित किया है-

---

1 सीढियों पर धूप मे- रघुवीर सहाय, पृ0स0 114

"प्रत्येक कविता किसी न किसी रूप मे आह्वान का जवाब है। कवि की सवदेक शक्ति जीवन को, वह जैसा भी है, ध्वनित करती है"---[1]

1962 के चीन युद्व के झटके से पूर्व नये लेखन मे यथार्थ और भ्रम की खाई को पहचाना नही जा सका था। दूसरी बात यह भी थी कि नेहरू के ऐतिहासिक आत्म स्वीकार का उल्लेख भी महत्त्वूपर्ण था, क्योंकि उस समय देश एक स्वप्न मे जीवित था, वह स्वप्न काफी सीमा तक नेहरूवाद से जुडा हुआ था जो कि औद्योगीकरण के समर्थक रहे है। रघुवीर सहाय "हमने यह देखा" कविता मे यातना और शोषण को नियति मानकर उसका वर्णन ही नही करते, बल्कि प्रश्न पूछते है-

यह तो है ही शुभ चितक यो कहते है।
अपमान अकेलापन, फाका बीमारी
क्यो है और वह सब हमही क्यो सहते हैं?
हम ही क्यो यह तकलीफ उठाते जाँय
दु ख देने वाले दु ख दें और हमारे उस दु ख के गौरव की
कविताए गाएं"---[2]

रघुवीर सहाय ने अपनी कविता "व्यथा" मे इन दु खो को समग्रता में देखने की कोशिश की है- "कौनसा दु ख तुम्हे प्रियवर सालता है?" के जवाब मे वे कहते है कि-

"कहूँ क्या ? - विरह की ज्वाला, गरीबी, भूख
दिल का दर्द" अथवा दाँत का ?
न । यह पलायन है व्यथा को एक दु ख मे देखना"---[3]

---

1 दिनमान- 7-14 जुलाई, - 1965

2 सीढ़ियो पर धूप मे- रघुवीर सहाय, पृ0स0 107

3 वही " , पृ0स0 133

रघुवीर सहाय इस पूँजीवादी व्यवस्था के अन्तर्गत शोषित लोगो के जिस दर्द को प्रकट करने की कोशिश करते है, वह समग्र दर्द जिन्दगी के उखडेपन से जुडा हुआ है।

"नई कविता" के अन्तर्गत आत्म परायेपन के मूल में" यह उखडापन भी है। लेकिन रघुवीर सहाय मे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि वे इस कविता मे महज उखडेपन के दर्द का बयान ही नही करते है, बल्कि इस दर्द से मुक्ति के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण माँग रखते हुए कविता का अन्त करते है–

"हमको तो अपने हक सब मिलने चाहिए
हम तो सारा का सारा लेगे जीवन
"कम से कम" वाली बात न हमसे कहिए"---[1]

मनुष्य विरोधी सामाजिक स्थितियो को बदलने के सन्दर्भ मे रघुवीर सहाय की यही दृष्टि अरचनात्मक नही होने देती, और उन्हे नई कविता के दूसरे पीडावादी कवियो से अलग करती है। यही कारण है कि रघुवीर सहाय "मेरा एक जीवन है" कविता मे "हाहाहूति नगरी" के अकेलेपन" की चर्चा के बाद अत्यन्त विश्वास से कहते है कि "सारे संसार मे फैल जायेगा एक दिन मेरा ससार। सभी मुझे करेंगे– दो चार को छोड– कभी न कभी प्यार।"---[2]

महानगरीकरण के चकाचौंध मे सामान्य जनता की पूर्णतया उपेक्षा की जा रही है और उसे हर प्रकार से शोषित एव प्रताडित किया जा रहा है। परिणामस्वरूप

---

1 सीढ़ियो पर धूप मे रघुवीर सहाय, पृ0स0 109

2 वही " पृ0सं0 88

उसका अस्तित्व हमेशा खतरे मे है। इतना ही नही, उसके अधिकारो को छीनकर एव उसे इस प्रकार प्रतिबन्धित कर दिया जा रहा है कि समाज मे उसे अपने हक एव अधिकारो की माँग करने का भी अवसर नही प्राप्त होता है। जिसके कारण उसकी दशा बिल्कुल दयनीय और चिन्तनीय हो जा रही है। पूँजीवाद ने मनुष्य और मनुष्य के बीच के सम्बन्धों को मनुष्य और वस्तु के बीच के सम्बन्धो मे बदल देने की परिस्थितियाँ पैदा कर दी है। जिसके कारण हर मनुष्य आज के बदलते युग मे केवल अपना स्वार्थ सिद्ध करने मे लगा है। महानगरीयकरण के युग मे क्रमश मनुष्य की सहायता और स्वय उसका अस्तित्व सकट मे पडता जा रहा है। पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के दौर मे क्रमश सामान्य आदमी शोषण एव उत्पीडन का शिकार होता जा रहा है। रघुवीर सहाय की कविताओ मे सम्पूर्ण रूप से शोषित आम आदमी का यथार्थ विवरण प्राप्त होता है। इस शोषित आम आदमी को रघुवीर सहाय ने अपनी कविताओं मे कभी असहाय होते, कभी दहशत और आतक के बीच मजबूरी मे मुस्कराते, कभी यातनामय परिस्थितियो के बीच घिरकर जीने से इकार करते हुए आज के समय के उस भयानक मनुष्य विरोधी यथार्थ का दस्तावेज प्रस्तुत करते है। रघुवीर सहाय के सभी कविता सग्रहो मे यह भयानक मनुष्य विरोधी यथार्थ बहुत ही जटिलता और आत्यान्तिकता के साथ प्रस्तुत किया गया है। "आत्म हत्या के विरूद्ध" की अधिकाश कविताओ मे बाहरी दुनिया की उपस्थिति ज्यादा है, भीड़, बने हुए मार तमाम लोग विडम्बनाओ के शिकार हो रहे है। व्यवस्था की विसंगतियों के विरूद्ध कवि का इरादा एक बार जानबूझकर चीखने का है। इसके साथ ही उसे यह विश्वास भी है कि कुछ होगा अगर वह बोलेगा–

> "हँसो तुम पर निगाहर रखी जा रही है
> हँसो अपने पर न हँसना क्योंकि उसकी कडवाहट

पकड ली जायेगी और तुम मारे जाओगे
ऐसे हँसो कि बहुत खुश न मालूम हो
वरना शक होगा कि यह शख्स शर्म मे शामिल नही
और मारे जाओगे"---[1]

इस प्रकार पूँजीवाद के बढते आतक से मनुष्य निरन्तर असहाय और निर्बल होता जा रहा है, जिसमे कि उसे निरन्तर एक बढती हुए पीड़ा को सहन करने का ही अवसर मिल रहा है।

*****

---

1 हँसो-हँसो-जल्दी हँसो - रघुवीर सहाय, पृ0स0 25

अध्याय – चतुर्थ

मानवीय मूल्य

अध्याय – चतुर्थ

मानवीय मूल्य

1 मानवीय मूल्यो के ह्रास के प्रति चिन्ता

2 मनुष्यता से स्खलित आदमी का यथार्थ

3 मानवीय भावो के महत्त्व की स्थापना– करूणा, सहानुभूति, प्रेम, विश्वास, ईमानदारी।

1 मानवीय मूल्यों के ह्रास के प्रति चिन्ता

रघुवीर सहाय अपनी स्वाभाविक सवेदनशीलता एव मानवीय मूल्यो के सहज पारखी होने के कारण हिन्दी साहित्य मे चर्चित रहे है। व्यक्ति, समाज एव सम्पूर्ण मानवता के चतुर्दिक विकास के लिए उन्होने मानवीय मूल्यो के महत्त्व को स्वीकार किया है। मानवीय मूल्यो के द्वारा ही व्यक्ति का व्यक्ति के साथ, व्यक्ति का समाज एव सम्पूर्ण राष्ट्र के साथ एक तादात्म्य सम्बन्ध स्थापित होता है जैसा कि–

तब यह लिखा हुआ पढकर सुना देना
कहना, यही सत्य मेरा यथार्थ है
क्योंकि इस दु ख का मै भागीदार हूँ
यह मेरा ज्ञान इतिहास का सत्य है
तथ्यो की भूल के कारण भी झूठ न हो जायेगा
उन सारे कारणो को हम सवाँर दे तर्क से
तो अत्याचारो को सहने का वह अनुभव
व्यर्थ न हो जायेगा।"[1]

रघुवीर सहाय सच्चे अर्थो मे मानवीय मूल्यो के कवि रहे है। उन्होने मानवीय मूल्यो के अस्तित्व को सतत स्वीकार किया है। उनकी मानवीय मूल्यो की चेतना, चेतना के अत्यन्त गम्भीर तलो को स्पर्श करती है। इसके साथ यह भी सिद्व होता है कि रघुवीर सहाय मे मानवीय सन्दर्भो से जुडने की सुसस्कृत चेष्टा सर्वत्र विद्यमान है–

---

1 कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ– रघुवीर सहाय पृ0स0 2

"सारे ससार मे फैल जायेगा एक दिन मेरा ससार
सभी मुझे करेंगे दो चार को छोड कभी न कभी प्यार
मेरे सृजन कर्म कर्तव्य, मेरे आश्वासन, मेरी स्थापनाए
और मेरे उपार्जन, दान–व्यय मेरे उधार
एक दिन मेरे जीवन को छा लेंगे ये मेरे महत्त्व
डूब जायेगा का तन्त्रीनाद–कवित्त रस मे राग मे – रग मे
मेरा यह ममत्व"---[1]

रघुवीर सहाय का सम्पूर्ण काव्य जगत सास्कृतिक मान्यताओ एव विचारो को आत्मसात् करता हुआ आगे बढता है। उनकी सवेदना मानव के बिल्कुल निकट और सहज सिद्व होती है, जिसमे सम्पूर्ण मानवता का दु ख एव दर्द प्रतिबिम्बित होता है। यही कारण है कि उनकी सवेदना मे जीवन के घात–प्रतिघात का भी सफल चित्रण प्राप्त होता है –

"जिस सच का हमने खोजा था
उतने थोडे से अनुभव मे
कुछ और जिन्दगी जी आये
उस एक सच्चाई की रौ में"---[2]

मानवीय मूल्यो के सतत हिमायती सहाय ने एक सशक्त समाज की स्थापना के लिए मानवीय मूल्यो की उपयोगिता को सर्वथा स्वीकार किया है। जीवन के समस्त घात–प्रतिघातो एव उतार–चढावो को अपनी कविताओ मे महत्त्व देते हुए, उन्होने जीवन को एक नयी दिशा देने का प्रयास किया है। वे मानवता के बिल्कुल करीब

---

1 सीढियो पर धूप मे– रघुवीर सहाय पृ0स0 88
2 वही, पृ0स0 163

पहुँचने वाले कवि रहे हे और समूचे मानवता के दर्द को समेटने मे सफल सिद्व होते है–

"ऐसे दीन हीन असहाय हो के आये हो
कि जैसे कोई चुटकी सवेदना की दे देगा
ऐसे चिकने बने हो हट्टे कट्टे धरे हो कि
तुम्हे कोइ कॉटा कैसे कहाँ और क्यो छेदेगा
माँगने से मिलती नही है तुष्टि वेदना की
कोई बाप तुम्हे झुनझुनिया न ले देगा
जाओ कोई काम करो हमे न बेराम करो
ऐसे ढोगी मँगते को हर कोई खेदेगा"———[1]

सहाय ने वर्तमान समाज मे भयावह परिस्थितियो को देखकर समाज मे चिरकाल से प्रतिष्ठित मानवीय मूल्यो के ह्रास एवं विघटन के प्रति अपनी गहरी चिन्ता प्रकट की है। उनकी यह मान्यता है कि मानवीय मूल्यो के विघटन से ही समाज दिन–प्रतिदिन पतनोन्मुख होता जा रहा हैं। अपनी कविताओ मे उन्होने विकृत राजनीतिक, सामाजिक परिवेश के मूल मे मानवीय मूल्यो के विघटन को उत्तरदायी माना है।

बाँध मे दरार
पाखण्ड वक्तव्य मे
घट तौल न्याय मे
मिलावट दवाई मे
नीति में टोटका
अहंकार भाषाण में
आचरण में खोट मे हर हप्ते मैंने विरोध किया
सचमुच स्वाधीन हो जाने का इतना भय

---

1 सीढियो पर धूप मे, रघुवीर सहाय, पृ0सं0 145

एक दास जाति मे
जो अधेड होते है
जी नही सकते है
बाकी दिन
आस मे
हर हप्ते–जय–जय–जय–––[1]

दया, करूणा, सहानुभूति, ममता आदि मानवीय मूल्यो के विघटन के कारण ही समाज मे वैषम्य की स्थिति अपनी नीव प्रौढ करती जा रही है। परिणामत समाज मे शोषण, उत्पीडन तथा अन्य अनेकानेक अत्याचार समाज को ध्वस्त कर रहे है। आज आतक और शोषण के कारण समाज का आम आदमी मारा–मारा फिर रहा है। रघुवीर सहाय ने जीवन के मूल्यो के क्षरण के प्रति अपनी गहरी चिन्ता प्रकट की है। साथ ही साथ पूँजीवादी व्यवस्था के अन्तर्गत पिसती हुई जनता के दु ख दर्द को गहरे लगाव के साथ प्रकट करने का प्रयास किया है–

"रोज–रोज थोड़ा मरते हुए लोगो का झुण्ड
तिल–तिल खिसकता है शहर की तरफ
फरमाइशी सम्भोग मे सुनो एक उखडी साँस की
साँय–साँय इस महान देश में क्या करे, कहाँ जाय
घबराते लडके गदराती औरत लेकर"–––[2]

रघुवीर सहाय की कविताए मामूली, अभावग्रस्त और उपेक्षित जिन्दगी को चित्रित करती हुई, आगे बढती है। आज के बहुत से नये कवि सामाजिक आर्थिक क्रान्ति की बात तो बहुत करते है, मामूली आदमी का ढोल

---

1 आत्मा के विरूद्व– रघुवीर सहाय, पृ०स० 77

2 वही, पृ०स० 22

भी बहुत पीटते है, लेकिन वास्तविकता की सही पहचान कम ही हो पाती है।

सहाय के रचना ससार पूरी तरह भारतीय है, जिसमे आम आदमी का ससार समाहित है। यह उस आदमी का ससार है जो आदमी से एक दर्जा नीचे रहने का दर्द झेल रहा है। इस दर्द को रघुवीर सहाय ने बडी आत्मीयता से महसूस किया है और उसके प्रति अपनी गहरी चिन्ता भी प्रकट किया है–

"तुम हँसते हो कभी बिना जाने हुए
कभी मुस्कराते हुए दीख पडते हो
पर वह मुस्कराहट नही
वह है एक दु ख भरे जीवन मे एक क्षण
कोई एक चीज के खुलने से माँस मे आया हुआ ढिलापन
अक्सर याद करो तो देखोगे कि तुम खुश नही थे
कि जब मुस्कराये थे"---[1]

सहाय का यह मानना है कि प्राचीन काल से ही समाज मे मानवीय मूल्यो का महत्त्व रहा है। यह अलग बात है कि समय की गति के साथ एव बदलते परिवेश के कारण मानवीय मूल्यो का समयानुसार ह्रास हुआ है, जिसके प्रति उन्होंने अपना खेद व्यक्त किया है। इसके अतिरिक्त वर्तमान पूँजीवादी व्यवस्था एव राजनीतिक उथल–पुथल को वे इसके लिए उत्तरदायी माने है। उनकी काव्य रचनाओ मे सवेदना और बदलते सामाजिक मूल्यों और राजनीतिक ह्रास का सफल सबूत प्राप्त होता है। जिन मानवीय मूल्यो को समाज का आधार स्तम्भ स्वीकार किया गया

---

1 लोग भूल गये है– रघुवीर सहाय, पृ0स0 42

था, आज उन्ही मूल्यो का ह्रास हो रहा हैं, परिणामस्वरूप नैतिकता का भी पतन होना दिखाई देता है–

> हम सब जानते थे गरीबी क्या चीज होती है
> हम सब गरीबी को विसरा चुके थे
> हममे से एक ने कहा रोज कम खाना मेरे दो बच्चो को
> तो तोडता–मरोड़ता कुतरता है, रोज–रोज कुछ समझे,
> बुझते हुए धीरे–धीरे एक दिन हजार लोग रोज
> सहने के अन्तिम कगार पर खडे हों"---[1]

सहाय ने अपनी साहित्यिक प्रतिभा का उपयोग मानवीय मूल्यो के ह्रास पर अपनी चिन्ता प्रकट करते हुए किया है। विदेशी शासको, मुसलमानों और अग्रेजो ने निरन्तर हमारे मानवीय मूल्यो की उपेक्षा करके अपने अनुसार देश पर शासन किया, परिणामस्वरूप हर तरह से सामाजिक असतुलन उत्पन्न हुआ। आजादी मिलने के बाद भी बहुत से रचनाकार आधुनिकता का प्रदर्शन करते हुए, मानवीय मूल्यो की उपेक्षा ही करते है, जिसके कारण आज भी मानवीय मूल्य जो कि हमारे समाज मे चिरकाल से प्रतिष्ठित रहे है, उनका ह्रास ही हो रहा है।

पूँजीवादी सस्कृति के साये मे पीसती हुई जनता अपनी प्राचीन मान्यताओ एव मूल्यो को कायम करने मे असमर्थ ही है। चारो ओर भीषण नर–संहार एव बदहाली की स्थिति ही व्याप्त है। ऐसा प्रतीत होता है कि आज सभी कुछ तीसरी दुनिया के बर्बर पूँजीवाद के लिए आयोजित हवन मे झोंका जा चुका है। नैतिकता, परिष्कृत दृष्टि, करूणा और परिवर्तन के लिए सघर्ष की इच्छा, सभी

---

1 आत्म हत्या के विरूद्व– रघुवीर सहाय, पृ0स0 25

कुछ रघुवीर सहाय के जीवन की एक बहुत बडी लडाई रही है, और इन सभी मोर्चो पर उन्होने अपना परिचय एक ईमानदार योद्वा की तरह ही दिया है–

"इस लज्जित और पराजित युग मे
कही से ले आओ वह दिमाग
जो खुशामद आदतन नही करता
कही से ले आओ निर्धनता
जो अपने बदले मे कुछ नही माँगती
और उसे एक बार– आँख– से आँख मिलाने दो"–––[1]

सामाजिक, एवं नैतिक परम्पराओ को ध्यान मे रखकर सहाय ने मानवीय मूल्यो के ह्रास एव विघटन के प्रति अपनी गहरी चिन्ता प्रकट की है। उनका मानना है कि एक स्वस्थ समाज की स्थापना तभी सम्भव है, जब मानवीय मूल्यों के सहज अस्तित्व को स्वीकार किया जायेगा। किसी समाज और देश की अस्मिता को हम मानवीय मूल्यो के आधार पर ही समझ सकते है। ईमानदारी, दया, एव सहज मानवीय मूल्यो की प्रतिष्ठा को पुनर्जीवित करने मे रघुवीर सहाय ने अथक प्रयास किया। रघुवीर सहाय ने स्वय भी कहा है कि "मेरे लिए ईमानदारी अनुभूति की है, धर्म या मत या कर्तव्य की नही–––" कोई भी रचना मेरे द्वारा तभी संभव हो सकती है जब मेरा मन गवाही दें" –––[2]

लेकिन इस कथन का अर्थ तब वही नहीं रह जाता, जब हम ईमानदारी और अनुभूति के बारे मे रघुवीर सहाय की राय से अलग से वाकिफ होते है। उनके लिए अनुभूति तथा ईमानदारी स्वायत्त और निरपेक्ष नही है, बल्कि ईमानदारी उनके

---

1 हँसो–हँसो –जल्दी हँसो– रघुवीर सहाय, पृ0स0 10

2 सीढियो पर धूप मे– रघुवीर सहाय, पृ0स0 190–191

लिए वस्तुओ की वास्तविकता के सही अनुभव के सन्दर्भ मे प्रासगिक होती है तथा अनुभूति को वे सुधारने की माँग करते है। इस प्रकार रघुवीर सहाय की दृष्टि मे ईमानदारी का मतलब यही है कि वह लेखक उस बौद्धिक विकलता को लेकर जिए, और उसे अस्वीकार न करे जिससे कि उसे ज्ञान प्राप्त होता है।

रघुवीर सहाय ने जब ईमानदारी पर लिखा तो सिर्फ ईमानदारी के विवेचन के बाद यह प्रसग समाप्त नही कर दिया, बल्कि उन्होने ईमानदारी के बाद के दायित्व भी निर्धारित किये। उनकी राय मे "जनजीवन के विकासोन्मुख तत्वो से अपने को सक्रिय सम्बद्ध न करने के कारण ऐसे लेखक अपनी मौलिक ईमानदारी के बावजूद भी खो गये। क्योकि उन्होने ईमादारी के बाद भी अपने व्यक्ति की झूठी आत्मसत्ता नहीं त्यागी। विराट इतिहास की सक्रिय शक्तियो मे अपने को समाहित नही किया–[1]

देख लो गरीब मरीज खडे डरता है
कि कुछ सजे धजे लोग
डागदर के कमरे मे पहले घुस गये
वे मानो कीच के समुद्र मे
अपने अधिकार के लिए आते और जाते है
रोग और पैसा हो तो पहले मै होगा
और फिर मै ---[2]

रघुवीर सहाय की चेतना सामाजिक एव मानवीय मूल्यो के आधार पर टिकी हुई है। उन्होने प्राचीन काल की मान्यताओ एव मूल्यो को अपनी रचनाओ में प्रकट

---

1 सीढियो पर धूप मे, पृ0 1960-- रघुवीर सहाय, पृ0स0 254–255

2 लोग भूल गये हे– रघुवीर सहाय, पृ0स0 79

करने का अथक प्रयास किया है। समाज के ऐसे वर्गो के प्रति रघुवीर सहाय ने अपना व्यग्य कसा है जो कि मानवीय मूल्यो की उपेक्षा करते है, और व्यर्थ का दिखावा एव मुखौटा डालने की प्रवृत्ति अपना कर अपना व्यर्थ प्रभाव प्रकट करने की कोशिश करते है। रघुवीर सहाय की सभी रचनाए उपेक्षित और अभावग्रस्त जिदगी का चित्रण करती हुई चलती है जिसमे सामान्य जनता को हर तरह से पीसा जा रहा है। उसे शोषको ने इतना चूस लिया है कि उसकी भावनाए एव उसके अन्दर नैतिक मूल्यो की सर्वथा समाप्ति ही हो गयी है –

"झुर्रियाँ उगा हुआ दुबला साँवला चेहरा
बस से उतरी हुई भीड में एक -एक कर देखा वह नहीं था
पिछली बार बहुत देर पहले उसे अच्छी तरह देखा था
रोज आते–जाते है, बस मे लोग एक दिन खत्म हो जाते है
या कि खत्म नही होते चुपचाप
मरने के लिए कही दुबक जाते है---[1]

नैतिकता के विघटन और उस पर मडराते राजनीतिक–सास्कृतिक सकट का सजीव चित्रण रघुवीर सहाय ने अपनी कविताओ में उभारने का प्रयास किया है। पद एव सत्ता के लोभ मे हर राजनेता किसी भी प्रकार का जुर्म एवं अत्याचार करने के लिए तैयार है और इसके साथ ही वे समर्थ और अत्यन्त बलशाली है। इसलिए जुर्म और अत्याचार के बाद भी बिल्कुल साफ बच जाते है। नैतिकता एव मानवीय मूल्यो के ह्रास के प्रति उन राजनेताओ की भी एक सशक्त भूमिका है –

मैंने कहा डपटकर
ये सेब दागी है
नही–नही साहब जी
उससे कहा होता
आप निश्चिन्त रहे
तभी उसे खाँसी का दौरा पड़ गया---[2]

रघुवीर सहाय की कविताओ मे दिये गये हर सलाह के अन्दर तीखे व्यग्य के साथ ही एक गहरी पीडा छिपी हुई है। शोषित गरीब आदमी पर अनिवार्य रूप से मार पड रही है और ताकतवर लोगो के द्वारा उसकी चेतना भी भ्रष्ट कर दी गयी है। शोषको द्वारा सामाजिक एव मानवीय मूल्यो का क्रमश पतन ही किया जा रहा है। उनके ऊपर किसी प्रकार का अकुश नही है। जब भी कोई रचनात्मक शक्ति इसके विरोध मे खडी होती है, तो उसका दमन कर दिया जाता है। इसी कारण मानवीय मूल्यो का क्रमश ह्रास ही होता जा रहा है। स्त्रियो की मान मर्यादाओ की भी उपेक्षा की जा रही है। रघुवीर सहाय अपनी कविता मे जिस स्त्री का चित्रण करते है, वह बहुत ही बदनसीब है। यह बहुत ही चौकाने वाला दु खद सत्य है कि हिन्दी कवियो ने पुरूष के जीवन का आर्थिक सघर्ष तो देखा पर उन्हे स्त्री के जीवन का सघर्ष बिल्कुल नही दिखाई देता है, वे उसकी मान–मर्यादाओ पर ध्यान न देकर उसके प्रति केवल अपनी अतृप्त वासना को ही बाहर निकालते रहे।

आज के बंदलते परिवेश मे लोग अपने वास्तविक मूल्यो एव सामाजिक परम्पराओं को भूलकर व्यर्थ के आडम्बरो मे फँसते है, जिसके कारण मानवीय मूल्यो का ह्रास हो रहा है और चारो तरफ उथल–पुथल भी मच रही है–

> सच क्या है ?
> बीते समय का सच क्या है?
> क्रूरता, जो कुचलकर उस दिन की गयी .
> वही सच है, उसे याद रख, लिख अरे लेखक
> दस बरस बाद बचे लोग समझते होंगे
> युग नया आ गया
> तब हुकुम होगा कि दस बरस पहले का वह दमन
> वास्तविक यथार्थ मे क्यो हुआ था समझ।---[1]

---

1 कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ– रघुवीर सहाय, पृ0स0 21

2 मनुष्यता से स्खलित आदमी का यथार्थ

मानवीय मूल्यो एव सास्कृतिक मान्यताओ के प्रति रघुवीर सहाय ने अपनी सशक्त आवाज उठायी है। वे यह प्रतिपादित करते है कि सामाजिक ढाँचे की मजबूती एव उसके आधार की प्रौढता के लिए सास्कृतिक मान्यताओ एव मानवीय मूल्यो को जीवित रखना अति आवश्यक है। एक सभ्य समाज का सही मूल्याकन मानवीय मूल्यो एव सास्कृतिक मान्यताओ तथा प्रमाणो के आधार पर ही सिद्ध होता है। लेकिन बदलते सामाजिक परिवेश मे उन मानवीय मूल्यो का स्खलन (विचलन) होता जा रहा है, जिसके प्रति रघुवीर सहाय ने गहरा खेद व्यक्त किया है। भ्रष्टाचार, शोषण एव अत्याचार की प्रबलतम चोट से मानवीय मूल्यो का विघटन हो गया है– जैसा कि– "उत्तर प्रदेश से निर्वाचित एक निर्दलीय सदस्य ने इस बहस मे एक बहुत उम्दा बात कही। उन्होने कहा आज से तीन साल पहले जब किसी को रिश्वत लेने का लालच दिया जाता था, तो वह कहता था– "न साहब, रिश्वत मै न लूँगा, मेरे आगे बाल–बच्चे है। आज जब वह रिश्वत लेता है, तो वह कहता है, क्यों न लूँ साहब मेरे आगे बाल–बच्चे हैं–––[1]

इस प्रकार आज के समाज मे नैतिक एव मानवीय मूल्यो का बिल्कुल स्खलन हो गया है। स्वार्थ–लिप्सा का प्राबल्य होने के कारण नैतिकता का दिन–प्रतिदिन क्षरण होता जा रहा है। ईमानदार एव निर्दोष आदमी की कही पूछ नही हो रही है, वही हर मोड पर मारा जा रहा है। आज बढते हुए शोषण के कारण मनुष्य–मनुष्य के बीच भी एक गहरी खांई पैदा हो गयी है, परिणामस्वरूप परस्पर प्रेम एव बन्धुत्व का भाव भी समाप्त होता जा रहा है–

---

1 दिल्ली मेरा परदेस– रघुवीर सहाय, पृ0स0 12

"हिन्दू और सिख मे
बगाली असमिया मे
पिछडे और अगडे मे
पर इनसे बडी फूट
जो मारा जा रहा और जो बचा हुआ
उन दोनो ने है"---[1]

बदलते परिवेश मे लोग अपने वास्तविक मूल्यो एव सामाजिक परम्पराओ को भूलकर व्यर्थ के आडम्बरो में फँसते है, जिसके कारण चारो ओर उथल पुथल मच रही है और पतनशील सस्कृति के पोषक शोषको के समाज के बीच इसके विरोध मे खड़ी होने वाली रचनात्मक जनशक्ति का दमन जिस तरह से हो रहा है, उसे "सहाय ने" लोग भूल गये हैं" सग्रह की कविता मे इस प्रकार उभारने का प्रयास किया है-

"दुनिया ऐसे दौर से गुजर रही है जिसमे
हर नया शासक पुराने पापो के आदर्शों को नया मानता
और जन वंचित जन जो कुछ भी करते है काम धाम
राग-रग वह ऐसे शासक के विरूद्व ही होता है-
यह सस्कृति उसको पोसती है जो सत्य से विरक्त है
देह से सशक्त और दानशील धीर है
भडक कर एक बार जो उग्र हो, उसे तुरन्त मार देती है-"[2]

जीवन मूल्यो के अवमूल्यन, अन्धानुकरण और फैशन के तौर पर हम जिस नकारात्मक तथाकथित संस्कृति को बौद्धिक और व्यवहारिक स्तर पर

---

1 कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ- रघुवीर सहाय, पृ0स0 47

2 लोग भूल गये है- रघुवीर सहाय, पृ0सं0 48

अपना रहे है, उनकी कचोट और कपट का स्वर रघुवीर सहाय की कविताओ मे जगह–जगह मुखरित हुआ है। वे मानवीय सवेदनाओं के कवि रहे है। अत सास्कृतिक मान्यताओ एव मानवीय मूल्यो के स्खलन के प्रति अपनी गहन सवेदना और सहानुभूति प्रकट करते है। प्राचीन सभी सास्कृतिक मान्यताओ एव मानदण्डो को सहाय ने अपनी कविता का वर्ण्य विषय बनाया है, जिसके कारण कि उनके काव्य मे सास्कृतिक सन्दर्भो के प्रति एक तडप दिखाई देती है–

"कौन आदमी है जो बचा रह जाता है
हर बार जब ताकतवर लोग अपने मन का
ससार रचने को सामूहिक हत्याए करते है
कौन है जो बचा रहकर फिर पहचाना जाता है
और बचा रहता है
कौन है वह कि जो बचा तो रहता है
पर उसकी पहचान नही हो पाती है
और कौन है वह जो जैसे ही पहचाना जाता है
मार दिया जाता है"---[1]

मध्यकाल मे परम्परागत मानवीय मूल्यों एवं सास्कृतिक मान्यताओ का भी काफी ह्रास हुआ। उसके पीछे मुस्लिम शासको की अपनी सशक्त भूमिका रही है। बाद मे अंग्रेज भी भारतीय सास्कृतिक मान्यताओं एव मानवीय मूल्यो के स्खलन के कारण रहे। परिणामस्वरूप वैदिक काल से चली आने वाली सास्कृतिक मान्यताओ का ह्रास हुआ।

---

1 लोग भूल गये है– रघुवीर सहाय, पृ0स0 65

आधुनिक काल मे फैशनपरस्ती एव आडम्बरयुक्त सस्कृति का बोल–बाला होने के कारण भारतीय सास्कृतिक मान्यताओ की पूर्णरूपेण उपेक्षा की जा रही है। एक सवेदनशील कवि होने के नाते रघुवीर सहाय ने इन मान्यताओ को पुनर्जीवित करने के प्रति अपना प्रयास दर्शाते है, जिसे कि स्वस्थ एव सुसस्कृत समाज की स्थापना हो सके।

आज दूषित राजनीतिक वातावरण के कारण सामाजिक वातावरण की नीव भी लडखडाने लगी है, जिससे सास्कृतिक मर्यादाओ एव मानवीय मूल्यो का दिन–प्रतिदिन स्खलन जारी है–

"हत्या की सस्कृति मे प्रेम नहीं होता है
नैतिक आग्रह नही
प्रश्न नही पूछती है रखैल
सब कुछ दे देती है बिना कुछ लिये हुए
पतिव्रता की तरह"---[1]

नैतिकता के ह्रास एव उस पर गहराते राजनीतिक–साँस्कृतिक सकट की क्षुब्ध अभिव्यक्ति रघुवीर सहाय की कविता मे प्राप्त होती है। पद एव सत्ता के लोलुप राजनेता किसी भी प्रकार का जुर्म करने को तैयार हैं और चूँकि वे समर्थ और बिल्कुल बलशाली है, इसलिए जुर्म एव अत्याचार के बाद भी वे बिल्कुल साफ बच जाते है। रघुवीर सहाय की बेचैनी मानवीय संवेदना के सबसे निकट की अनुभूति के निरन्तर भ्रष्ट होते चले जाने से उत्पन्न हुई है। सर्वत्र व्याप्त बदहाली की स्थिति किसी भी तरह से मानवीय मूल्यो को स्थिर नही रहने देता है–

---

1 कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ– रघुवीर सहाय, पृ0स0 17

वे "यथार्थ" मे व्यक्त करते है– "जो अवश्य ही हम सब जानते है कि सत्य है, वे ही वस्तुस्थिति को बदलते है, बशर्ते की अभिव्यक्ति हो। वे न्याय और समता के आदर्शो से उत्पन्न है, और उनकी अभिव्यक्ति कला का वह चरम उत्कर्ष है, जहाँ कला सबसे क्रम होती है, परन्तु सबसे अधिक परिवर्तनकारी प्रभाव डालती है। मेरी समझ मे वास्तविकता का परिचय देती हुई, हर कलाकृति, कला के बोझ से और इसलिए पतनशीलता के बोझ से मुक्त नहीं हो सकती। मुक्त होने के लिए उसे इतिहास निर्माण मे शामिल होना पड़ेगा, इतिहास–निर्माण मे अर्थात् यथार्य का ऐसा ससार रचने मे जो वास्तविकता के वर्तमान ससार को चुनौती दे'---[1]

रघुवीर सहाय की सवेदना मानवीय एव सास्कृतिक मूल्यो से जुडी होने के कारण, मानव के सहज दुःख दर्द को उभारती हैं, जिसके कारण वे एक मानवीय कवि के रूप मे प्रतिष्ठित होते है। उनकी कविताओ में मानवीय मूल्यो के प्रति एक छटपटाहट दिखाई देती है, जिसके परिणमास्वरूप वे अपनी सहज मानवीय सवेदनाओ को प्रकट करने मे सफल होते है और अपनी कविताओ मे मानव की सहज पीडा को प्रतिबिम्बित करते है। उन्होने जीवन को जिस यथार्थ की निगाहो से देखा, वैसी ही सहज और अपील करने वाली अभिव्यक्ति दी है। उनकी कविताए स्वाभाविक और सरल होती हुई भी पैनी तथा संवेदना को झकझोर देने वाली हैं। मानवीय मूल्यो के विचलन के प्रति उन्होंने अपना गहरा क्षोभ प्रकट किया है।यही कारण है कि रघुवीर सहाय को सच्चे अर्थो में एक मानवीय कवि कहा जाता है–

---

1 यथार्थ – यथास्थिति नही– रघुवीर सहाय पृ0सं0 137

"किसी भी क्षेत्र मे हो, ईमानदारी एक व्यापक गुण है और इसी से अब हमे लगता है कि "किसी भी क्षेत्र मे हो" कहना गलत होगा। ईमानदारी वास्तव मे एक मौलिक गुण है और उस बौद्धिक स्तर का पर्याय है जिस पर आकर हमारा तर्क पूर्वग्रह और व्यक्तिगत रूचि के ऊपर उठ जाता है और जिस पर आकर हममे वस्तुओ की वास्तविकता का सही अनुभव होता है।"---[1]

सहाय ने मानवीय मूल्यो के स्खलन के लिए बढते हुए औद्योगिकीकरण को भी उत्तरदायी ठहराया है। उनका मानना है कि पूँजीवादी सत्ता ने पूँजीवादी उद्योग धन्धो के विकास के लिए स्वतत्रता के पश्चात् सर्वाधिक प्रयत्न किये। इस सघन औद्योगिकीकरण के परिणामस्वरूप शहरीकरण, बेरोजगारी, विशेषीकरण तथा सयुक्त परिवार के विघटन से जुडी हुई अनन्त समस्याए उत्पन्न हुई है। इस पूँजीवादी समाज में कोई भी चीज ऐसी नही रह गयी जिसे अपना कहा जा सके। यही कारण है कि मानवीय मूल्यो एव सांस्कृतिक परम्पराओं की घोर उपेक्षा हुई। सहाय ने मानवीय मूल्यो के स्खलित होने वाले समाज को बदलने के प्रति प्रयत्नशील दिखाई देते है-

एक आश्रय से दूसरे मे आकर
मै एक बधन से मुक्त हो जाता हूँ
यही मेरी मुक्ति है
बार-बार एक दासता से दूसरी मे कम या ज्यादा
आजाद होते हुए
उतनी देर मे मे बना लूँ एक दुनिया अपने भीतर
और बाहर तक पहुँचा दूँ
ताकि वह नष्ट न हो
और जब दोबारा एक बार घर बदलूँ
वह दुनिया मेरी कुछ बड़ी हो गयी हो"---[2]

---

1 लिखने का कारण- रघुवीर सहाय, पृ0स0 52

2 लोग भूल गये हैं- रघुवीर सहाय, पृ0स0 27

सहाय का कहना है कि पूँजीवादी औद्योगिकीकरण के उत्कर्ष ने मनुष्य को मशीन क्र गुलाम बना दिया है। परिणामस्वरूप उसका व्यक्तित्व खण्डित और विघटित होता जा रहा है। यात्रिकीकरण के बीच उसका दर्जा भी मशीन के एक पुर्जे के रूप मे हो गया है। फलत मानवीय सवेदनाए निरतर मरती जा रही है। मानव और मानव के बीच का रिश्ता टूटता जा रहा है।

रघुवीर सहाय इस ओर बार–बार सकेत करते है कि समाज में व्याप्त शोषण, अत्याचार, के मूल मे मानवता से स्खलित मनुष्य ही है, परिणामस्वरूप शक्तिशाली कमजोर को निगलता जा रहा है। आज की परिस्थिति इतनी भयकर हो गयी है कि सामान्य और ईमानदार आदमी हर मोड पर मारा जा रहा है। आश्चर्य की बात यह है कि उसे स्वय यह मालूम नही हो पाता है कि उसके साथ इतना जघन्य अपराध होगा। सहाय अपने समय की पहचान को बहुत गहरे मे स्वीकार कर चुके थे। यही कारण है कि वे गरीब आदमियों की लाचारी, हिंसक घटनाओ मे निहित क्रूरता और सर्वसत्तावाद के खतरे को अपनी रचनाओ मे अनेक स्थलो पर प्रकट किया है, साथ ही साथ मानवीय मूल्यो के विघटन को लेकर बहुत चिन्तित दिखाई देते हैं–

> "ताकतवर लोग खोजते हैं कमजोर को
> एक तरफ अस्पताल, झोपडी हजार वर्ष से
> वंचित जाति वर्ग लाश लुटे लोग
> ढहे घर दुआर जिसको वे अभय दे और
> दूसरी तरफ चित्रकार जो अपने खून से
> कागज पर उनकी तस्वीर आँके,
> जन के मन भय भरे"–––[1]

---

1 लोग भूल गये है– रघुवीर सहाय, पृ0स0 38

बढती हुई पूँजीवादी व्यवस्था के कारण समाज मे अन्याय एव अत्याचार का बाहुल्य होता जा रहा है, जो कि मानवीय मूल्यो एव सास्कृतिक मान्यताओ पर निरन्तर प्रहार कर रहा है।

रघुवीर सहाय शोषणवादी व्यवस्था के शिकार हुए लोगो को मुक्त कराने का भरसक प्रयास करते है। ऐसी अव्यवस्था के अन्तर्गत जख्मी लोग अपने मानव होने की पहचान करने मे भी असमर्थ दिखाई देते है। रघुवीर सहाय का यह प्रयास है कि ऐसी शोषण वाली अव्यवस्था सदा के लिए समाप्त हो जाय, और एक ऐसी व्यवस्था की स्थापना हो, जिसमे कि किसी के साथ किसी प्रकार का वैषम्य न हो और सबको अपने विकास का समान अवसर प्राप्त हो सके। जिसमे सभी अपने अन्दर मानवीय मूल्यो का एहसास करते हुए उसे स्थिर करने का प्रयास कर सके–

"कभी–कभी दुनिया को फिर से बनाने के वास्ते
कागज पर योजना करता हूँ, कुछ नयी पोशाके
कुछ नये फर्नीचर, कुछ नये फूल, कुछ कीडे–मकोडे
लोग नये खोजता हूँ तो सब वही वही लोग जुट जाते हैं
एसे अनेक हैं, इस ठहरे चित्र में सहसा बूढे हुए जड चेहरे"––––[1]

मानवीय मूल्यो का दिन–प्रतिदिन इतना ह्रास होता जा रहा है कि समाज का कोई स्थिर पडाव ही नही दी दिखाई दे रहा 'है। मनुष्य की लालसा और स्वाधीनता पर होने वाले प्रहार को रघुवीर सहाय की कविताओ में देखा जा सकता है। सहाय ने अपनी कविताओं मे आज के उस रहस्यमय खूंखार चेहरे

---

1 कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ– रघुवीर सहाय, पृ0स0 188

मुझे मालूम था मगर इस तरह नही कि जो
खतरे मैंने देखे थे वे जब सच होंगे
तो किस तरह उनकी चेतावनी देने की भाषा
बेकार हो चुकी होगी
एक नयी भाषा दरकरार होगी।"---[1]

मर्यादा, स्वाभिमान एव अपनी संस्कृति से अटूट प्रेम रखने वाले रघुवीर सहाय जनता को अपनी स्वाभाविक स्थिति पाने एवं अपने अधिकारो के प्रति सचेत करने मे बहुत ही प्रयत्नशील रहे। हिन्दुस्तान में रहने वाले प्रत्येक व्यक्ति को अपने अधिकारो को प्राप्त करने की स्वतत्रता है। लेकिन आज स्थिति इतना बदतर हो गयी है कि लोगो को उनके अधिकारो से वंचित कर दिया जा रहा है। नैतिकता एव मानवीयता का कोई महत्त्व ही नही रह गया है। परिणामत मानवीय मूल्यो का सर्वाधिक स्खलन हो रहा है--

"बरसो पानी को तरसाया
जीवन से लाचार किया
बरसो जनता की गगा पर
तुमने अत्याचार किया"---[2]

मानवीय मूल्यो के स्खलन को लेकर रघुवीर सहाय ने जो दर्द महसूस किया है, वह उनका केवल अपना व्यक्तिगत दर्द नही है, अपितु वह शोषण एव दमन का शिकार हुई समस्त मानवता का दर्द है, जहाँ केवल कुढ़न और निराशा ही व्याप्त है। रघुवीर सहाय अपनी कविताओ मे न केवल ऐसे दर्द का बयान करते है,

---

1 हँसो-हँसो-जल्दी हँसो- रघुवीर सहाय, पृ०स० 3

2 वही, पृ०स० 6

अपितु इस दर्द (शोषण एव उत्पीडन से उत्पन्न दर्द) से मुक्ति के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण माँग रखते हुए, अपना बयान प्रस्तुत करने का प्रयास करते है–

हमको तो अपने हक सब मिलने चाहिए
हम तो सारा का सारा लेंगे जीवन
कम से कम वाली बात न हमसे कहिए"---[1]

मानवीय मूल्यो के स्खलन के लिए रघुवीर सहाय ने आज के भ्रष्ट राजनीतिक तंत्र को पूरी तरह जिम्मदार ठहराया है। उनकी कविताए आज के भ्रष्ट राजनीतिक तंत्र मे जीते मरते आदमी की पीडा एव टीस का चित्रण करती है, जो कि उनकी कविताओ की अपनी असली जमीन है। सहाय मानवीय मूल्यो को प्रश्रय देते हुए स्वय यह मानते है कि कविता के लिए राजनीति की नही, बल्कि रचना की शर्त जरूरी होती है। उनका मानना है कि– "राजनीति की ओर मेरा यही रवैया है, संकट–कालीन रवैया कह लीजिए– कि "वह बहुत जरूरी है या वह फिजूल है, दोनो फतवे सकट से भागने के बहाने है। वह बहुत जरूरी है, पर मै भी अपने लिए बहुत जरूरी हूँ"---[2]

---

1 सीढियो पर धूप मे– रघुवीर सहाय, पृ0स0 108

2 आत्म हत्या के विरूद्व– रघुवीर सहाय का वक्तव्य, पृ0स0 9

3 **मानवीय भावों के महत्त्वकी स्थापना—करूणा, सहानुभूति, प्रेम, विश्वास, ईमानदारी**

मानवीय मूल्यो के स्थायित्व के प्रति पूर्ण जागरूक सहाय ने समाज की स्थिरता एवं प्रगति के लिए उन मूल्यो को सर्वथा प्रश्रय दिया है। वे पूर्णरूप से एक सामाजिक कवि रहे है। यही कारण है कि सामाजिक मूल्यो के प्रति उनकी अपनी अटूट आस्था रही है। उन मानवीय मूल्यो को जीवित रखने के लिए सहाय ने अथक प्रयास किया। उनकी रचनाओ मे दया, करूणा, सहानुभूति, ईमानदारी, ममता आदि मानवीय मूल्यो के प्रति छटपटाहट दिखाई देती है।

उनका विश्वास था कि मानवीय भावो के सत्य के आधार पर समाज के ढाँचे की मजबूती का आकलन किया जा सकता है—

"हम जानते है कि पतन अनेक रूप धर कर
हमे क्षय कर रहा है
और यह भी जानते हैं कि बदलना तो सब कुछ एक साथ होगा
पर समाज को एक साथ बदलने के लिए
एक व्यापक बहुआयामी आदर्श और उतना ही
स्पष्ट कार्यक्रम चाहिए"———[1]

सहाय जी ने यह स्वीकार किया है कि वैज्ञानिक युग होने के कारण सघन औद्योगीकरण का परिवेश सर्वत्र व्याप्त है। जिसके परिणामस्वरूप मानवीय मूल्यो पर निरन्तर प्रहार हो रहा है। इसके अतिरिक्त बेरोजगारी, विशेषीकरण तथा

---

1 एक समय था— रघुवीर सहाय, पृ0स0 27

सयुक्त परिवार के विघटन से सम्बद्ध अनेकानेक समस्याए उत्पन्न हो रही है। जिससे दया, ममता, सहानुभूति, ईमानदारी आदि मानवीय भाव क्षीण होते जा रहे है। सर्वत्र भ्रष्टाचार एव अन्याय की सशक्त दीवाल नजर आ रही है। सहाय हर दृष्टिकोण से यह स्वीकार करते है कि औद्योगिकीकरण का सबसे बड़ा दुष्परिणाम यह है कि इससे यान्त्रिकीकरण को बढावा मिला, जिससे खण्डित विघटित एव सवेदन शून्य व्यक्तित्व का जन्म हुआ, जिससे मानवीय मूल्यो का कोई महत्त्व नही स्थापित हो सकता है–

"देश की व्यवस्था का विराट वैभव
व्याप्त है चारों ओर
एक कोने मे दुबक ही तो सकता है
सब लोग जो कुछ रचते है उसमें
केवल अपना मत नही दे ही तो सकता हूँ
वह मैं करता हूँ
किसी से नही डरता हूँ
अपने आप और बेकार"---[1]

आज के बदलते सामाजिक परिवेश में रघुवीर सहाय की कविताएं यह अभिव्यक्ति करती हैं कि सच्चे सामाजिक आदर्शो की पूर्णरूपेण अवहेलना हो रही है। पूँजीवादी दुर्व्यवस्था ने सबको अपने चंगुल में कर लिया है ओर सामाजिक मान्यताओ और मानवीय आदर्शों की पूर्णरूपेण उपेक्षा हो रही है। इस सामाजिक अव्यवस्था मे सामान्य जन का कोई मूल्य नही रह गया है। देश के बहुसंख्यक लोगो पर मुट्ठभ्भर लोगों द्वारा किया जाने वाला -----

---

1 आत्म हत्या के विरूद्व– रघुवीर सहाय, पृ0स0 34

अन्याय एव अत्याचार जो कि मानवीय एव सामाजिक मूल्यो को नष्टप्राय बना दे रहे है, वे सब रघुवीर सहाय की कविताओं के मुख्य विषय है।

आज साधारण जनता के सन्दर्भ मे किये गये निर्णयो में जनता का कही कोई शिरकत नही है। शोषक वर्ग के हितो की रक्षा करने वाले शासन का अत्याचार एव अन्याय झेलते हुए आम जनता बार-बार आत्महत्या की स्थितियाँ झेल रही है। रघुवीर सहाय की कविताओ में इन स्थितियों के विरोध मे खड़े होने की एक निरन्तर छटपटाहट प्राप्त होती है-

"कितना अच्छा था छायावादी
एक दु ख लेकर वह एक गान देता था
कितना कुशल था प्रगतिवादी
हर दु ख का कारण
वह पहचान लेता था
कितना महान था गीतकार
जो दु ख के मारे अपनी जान लेता था
कितना अकेला हूँ मै इस समाज मे
जहाँ सदा मरता है एक और मतदाता"---[1]

रघुवीर सहाय की कविताएं यह प्रतिपादित करती हैं कि विकृत राजनीतिक परिवेश से सामाजिक परिवेश भी विकृत हो गया है, जिसके कारण चिरकाल से प्रतिष्ठित मानवीय मूल्य भी सकट में पड गये है। चारों तरफ व्याप्त लूट-खसूट, अत्याचार एव अन्याय से मानवीय एव सामाजिक मूल्यो की नीव भी डगमंगा गयी है- मानवीय ईमान और धर्म का कोई महत्तव नही रह गया है- अपने मानीवय एव नैतिक धर्म पर लोग टिक नहीं पा रहे है। एक दूसरे की

---

1 आत्म हत्या के विरूद्व- रघुवीर सहाय, पृ0स0 73

अन्याय एव अत्याचार जो कि मानवीय एव सामाजिक मूल्यो को नष्टप्राय बना दे रहे है, वे सब रघुवीर सहाय की कविताओ के मुख्य विषय है।

आज साधारण जनता के सन्दर्भ में किये गये निर्णयो मे जनता का कही कोई शिरकत नही है। शोषक वर्ग के हितो की रक्षा करने वाले शासन का अत्याचार एवं अन्याय झेलते हुए आम जनता बार-बार आत्महत्या की स्थितियाँ झेल रही है। रघुवीर सहाय की कविताओ मे इन स्थितियो के विरोध मे खड़े होने की एक निरन्तर छटपटाहट प्राप्त होती है-

> "कितना अच्छा था छायावादी
> एक दु ख लेकर वह एक गान देता था
> कितना कुशल था प्रगतिवादी
> हर दु ख का कारण
> वह पहचान लेता था
> कितना महान था गीतकार
> जो दु ख के मारे अपनी जान लेता था
> कितना अकेला हूँ मै इस समाज मे
> जहाँ सदा मरता है एक और मतदाता"---[1]

रघुवीर सहाय की कविताए यह प्रतिपादित करती है कि विकृत राजनीतिक परिवेश से सामाजिक परिवेश भी विकृत हो गया है, जिसके कारण चिरकाल से प्रतिष्ठित मानवीय मूल्य भी सकट मे पड गये है। चारों तरफ व्याप्त लूट-खसूट, अत्याचार एव अन्याय से मानवीय एव सामाजिक मूल्यो की नीव भी डगमंगा गयी है- मानवीय ईमान और धर्म का कोई महत्तव नही रह गया है- अपने मानीवय एव नैतिक धर्म पर लोग टिक नही पा रहे हैं। एक दूसरे की

---

1 आत्म हत्या के विरूद्व- रघुवीर सहाय, पृ0स0 73

चाटुकारिता एव खुशामद करना लोगो का अपना क्रमश व्यवसाय बन गया है। प्रेम, दया, सहानुभूति आदि के स्थान पर उनके अन्दर नफरत एव ईर्ष्या की दीवाल खडी हो गयी है, जो कि किसी भी दशा मे मानवीय मूल्यो को स्थिर नही रख सकती है–

"लोग या तो कृपा करते है या खुशामद करते है
लोग या तो ईर्ष्या करते है या चुगुली खाते हैं
लोग पाश्चाताप करते है य. घिघियाते है
न कोई हँसता है, न कोई रोता है
न कोई प्यार करता है, न कोई नफरत
लोग या तो दया करते है
या घमण्ड
दुनिया एक फुंफुदियायी हुई सी चीज हो गयी है"---[1]

रघुवीर सहाय का यह मानना है कि आज की दुनिया इतनी बदल गयी है, कि मनुष्य प्रेम के स्थान पर घृणा, ईमानदारी के स्थान पर बेईमानी और ईर्ष्या का रास्ता अपनाकर चल रहा है। ऐसी स्थिति मे सत्य और प्रतिष्ठित सभी मानवीय मूल्य गौण होते जा रहे है। पूँजीवादी अव्यवस्था के अन्तर्गत मची लूट–खसूट एव रिश्वतखोरी तथा निरन्तर शोषण से मानवीय भावो की समाप्ति होती जा रही है। परार्थ के स्थान पर स्वार्थ की प्रवृत्ति निरन्तर सशक्त होती जा रही है, जिससे दया,करूणा, सहानुभूति, ईमानदारी, परोपकार आदि सहज मानवीय मूल्यो की स्थापना मे कठिनाई हो रही है, आज बढ़ते हुए भ्रष्टाचार की सस्कृति सभी मानवीय मूल्यो का भक्षण करती जा रही है– "भ्रष्टाचार मे हमेशा से एक सर्वग्रासी प्रक्रिया छिपी

---

1 सीढ़ियों पर धूप में– रघुवीर सहाय, पृ0स0 138–39

रही है। वह लोकतत्र, आजादी, सभ्यता और सस्कृति को नष्ट करने वाले तत्वो से हर समय जुडता रहता है और समाज इस पतनशील राह पर एक एक कदम बढता जाता है। एक व्यापक राजनैतिक आन्दोलन अवश्य इस राह को बदल सकता है। पर इतिहास मे ऐसे दौर भी आते है, जब आन्दोलन व्यापक नही हो पाते, छिटपुट उद्देश्यो और उत्तेजनाओ की शकल मे बिखर जाते है।[1]

रघुवीर सहाय मानवीय मूल्यो एव मानवीय भावो को समाज का बुनियादी आधार स्वीकार किया है। जिनके द्वारा किसी समाज की मजबूती को विधिवत प्रमाणित किया जा सकता है।

रघुवीर सहाय मानवीय भावों के सतत पक्षधर होकर उनके ह्रास / के लिए ब्रिटिश शासन को भी बहुत सीमा तक उत्तरदायी ठहराया है। उनके अनुसार आजादी मिलने के तुरन्त बाद ही साम्राज्यवादी स्वार्थ और अर्द्ध सामन्ती, अर्द्ध पूँजीवादी सत्ता की राजनीति ने सम्पूर्ण देश के लोगो को अपनी जमीन और सही वातावरण से काटकर अपने ही घर में शरण लेने के लिए मजबूर किया। इसके अतिरिक्त तत्कालीन गाँधी जी की हत्या ने भारतीय जनता के भविष्य के प्रति अग्रसर होने वाले विश्वास पर भयानक प्रहार किया। ऐसी परिस्थिति मे पुराने मानवीय मूल्यो एवं मानवीय भावो का टूटना स्वाभाविक ही था।

आज के बदलते राजनीतिक परिवेश मे जहाँ पर सम्पूर्ण राजनीतिक ढाँचा ही विकृत हो गया है, और जिसमे पूँजीवादी का शोषण अपनी चरम सीमा पर पहुँच चुका है, ऐसी स्थिति मे मानवीय मूल्यो को कोई अपना स्थिर पडाव मिलना बहुत मुश्किल दिखाई देता है–

---

1 अर्थात– रघुवीर सहाय, पृ०स० 45

"जब दलित लोग दमनकारी के तत्र की
उनहार करते है अपने को सान्त्वना
देते है हम जीते सबसे बडी जीत
दमन की होती है उस पर दलित को
बधाइयाँ देती है दमन तत्र की प्रजा
फैला देती है दमन तंत्र की प्रजा
फैला विराट है विशाल है अपार देश
पर अपार से भी जियादा अथाह है
हम कितने गहरे में चले जाँय और एक
ताकत ले आये वही कही बूड़ नही रहे"---[1]

रघुवीर सहाय की सभी रचनाए मनुष्य और मनुष्य के बीच समानता के लिए सघर्ष करते हुए दिखाई देती हैं। वे तो स्वय अपनी करूणा को शंका की दृष्टि से देखते है कि कही यह दूसरे आदमी की स्वतत्रता को कम करके खुद अपने को श्रेष्ठ होने के बोध से तो नहीं भर रही है। सहाय की अपनी शका की जड़ में उनकी जनतात्रिक सवेदना समाहित है।

वे ऐसी विचारधारा वाले कवि रहे हैं जो कि सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्था तथा मानवीय मूल्यो के ह्रास पर गहरा शोक प्रकट करते है।

रघुवीर सहाय अपनी पीड़ा को पूरा उधेडकर देखने-समझने की कोशिश करते है और उनका कहना है कि अपने को श्रेष्ठ मानकर दिखाई हुई करूणा से लोकतात्रिक जीवन मूल्य का क्षरण होता है, जो कि रघुवीर सहाय को बिल्कुल मजूर नही है-

---

1 लोग भूल गये हैं - रघुवीर सहाय, पृ0स0 23

"बहुत बडे देश मे बहुत से मनुष्यो की पीडाए
अगर उसे बडा नही करती है तो जमीन को
उसके हत्यारे छोटा कर देते है
बेचकर विदेश मे भेजने के लिए
ये पहाड, जगल, मिट्टी के मैदान हरे,
छोटे हो रहे है जो इतिहास मे बडे देश के प्रमाण थे
इनकी विशालता का कोई गुणगान अब सुन नही पडता
देश के बडे देश होने का गौरव अब
व्यक्ति की विदेश में प्रतिष्ठा बढ़ाता है
देश मे बर्बरता
हत्याए चिथड़े खून और मैल आज भारतीय सस्कृति के मूल्य है
और दया करते है लोग यह मानकर कि कष्ट अनिवार्य है
दया के पात्र को"---[1]

सहाय की गहरी जनतान्त्रिक सवेदना ने स्वातन्त्र्योत्तर भारत मे पूँजवादी ढाँचे और पश्चिमी आधुनिकतावादकी नकल के कारण पनपती असमानताओ को विभिन्न रूपो और परतो मे देखने, सुनने और समझने का प्रयास किया है। गैर बराबरी और अन्याय पर टिकी व्यवस्था ने आदमी और आदमी के बीच समानता को खत्म कर दिया है, साथ ही अपने को नीचा और हेय मानकर बिना प्रतिवाद के अपनी स्थिति को स्वीकार करने वाला आदमी बनाया है। शोषण एव दमन तथा अत्याचार का शिकार होने के कारण उसका व्यक्तित्व समाप्तप्राय हो गया है–

"प्राचीन राजधानी अधमरे लोग
वही लोग ढोते उन्ही लोगो को
रिक्शे मे

---

1 लोग भूल गये है - रघुवीर सहाय, पृ0स0 102

पन्द्रह लाख आबादी दस लाख शरणार्थी
रिक्शे वाले की पीठ शरणार्थी की पीठ
एक सी दीखती
बस चेहरे है जैसे बलपूर्वक अलग–अलग किये गये
एक बुढिया लपकी हुई जाती थी
पीछे–पीछे चुप चलती थी औरत वह बहन थी
आगे लागे लाश प पूरा कफन नही था
वे उसे ले जाते थे जल्दी –जल्दी जला देने को"---[1]

मानवीय मूल्यो के प्रबल हिमायती रघुवीर सहाय ने राजनीतिक ढाँचे का, जिसमे कि बहुत सारी विकृतियाँ नेताओ एव भ्रष्ट मत्रियो के कारण उत्पन्न हुई है) का नग्न चित्रण प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। एक जनवादी कवि होने के कारण सहाय ने राजनीतिक क्षरण एव स्वार्थ प्रेरित राजनीति से प्रभावित मानवीय मूल्यो के प्रति अपना खेद व्यक्त किया है–

"निर्धन जनता का शोषण है
कहकर आप हँसे
लोकतत्र का अन्तिम क्षण है
कहकर आप हँसे
सबके सब है भ्रष्टाचारी
कहकर आप हँसे
कितने आप सुरक्षित होंगे
मै सोचने लगा
सहसा मुझे अकेला पाकर
फिर से आप हँसे---[2]

---

1 हँसो–हँसो जल्दी हँसो–रघुवीर सहाय, पृ0स0 69

2 वही, पृ0स0 16

रघुवीर सहाय यह मानते है कि दूषित राजनीतिक तत्र के कारण बदहाली की स्थिति को प्राप्त समाज मे मानवीय भावो एव मानवीय मूल्यो की स्थापना कैसे हो सकती है ? उनके अनुसार इसके लिए वह तत्र और नेतृत्व उत्तरदायी है, जिसने आजादी के बाद सामाजिक आधारो को बदले बगैर, लोकतत्र की कल्पना की थी, और इस लोकतत्र के हवाले से उसने जनता की मुक्ति और विकास का मिथ्या दावा प्रस्तुत किया था। लोकतत्र के बहाने बेईमानी और अपराध ही फूलने–फलने लगा–

> "दस मत्री बेईमान और कोई अपराध सिद्ध नही
> काल रोग का फल है अकला अनावृष्टि का
> यह भारत एक महागद्दा है प्रेम का
> ओढने –बिछाने को, धारण कर
> धोती महीन सदानन्द पसरा हुआ
> दौडे जाते है, डरे–लदे फँदे भारतीय
> रेलगाडी की तरफ
> थकी हुई औरत के बडे दाँत
> बाहर गिराते है उसकी बची खुची शक्ति
> उसकी बच्ची अभी तीस साल तक
> अधेड होने तक तीसरे दर्जे मे
> मातृभूमि के सम्मान का सामान ढोती हुई
> जगह ढूँढती रहे
> चश्मा लगाये हुए एक सिलाई मशीन
> कन्धे उठाये हुए"–––[1]

रघुवीर सहाय मानवीय मूल्यों जैसे दया, सहानुभूति, ममता, ईमानदारी आदि को साहित्य सृजन के लिए एव सफल साहित्य के लिए भी अनिवार्य माना है। उनका

---

1 आत्म हत्या के विरूद्ध रघुवीर सहाय, पृ0सं0 29

विचार है कि इन मानवीय मूल्यो के अभाव में साहित्य की समीचीनता नही प्रमाणित हो सकती है। मामूली अभावग्रस्त जिन्दगी जीने वाले लोगो को अपनी कवतिा का वर्ण्य विषय बनाकर रघुवीर सहाय ने सच्चे मानवीय भावो के महत्त्व को प्रकट करने का प्रयास किया है। सचमुच रघुवीर सहाय का काव्य तो पूरी तरह भारतीय है।

वह भारतीय आम आदमी का ससार है। यह उस आदमी का ससार है जो आदमी से एक दर्जा नीचे रहने का दर्द झेल रहा है। इस दर्द को रघुवीर सहाय ने बडी आत्मीयता से महसूस किया है और उसके प्रति अपनी गहन संवेदना भी प्रकट किया है–

"भेडकर
दर्द मैने कहा क्या अब नही होगा
हर दिन मनुष्य से एक दर्जा नीचे रहने का दर्द
गरजा मुस्टडा विचारक समय आ गया है
कि राम लाल कुचला हुआ पाँव जो
घसीटकर
चलता है अर्थहीन हो जाये"---[1]

सहाय की कविताए मानवीय भावो को आत्मसात करती हुई आगे बढती है, जिसमे कि उन मानवीय मूल्यो एवं मानवीय भावो के प्रति स्वाभाविक छटपटाहट दिखाई देती है। ये वही मानवीय भाव हैं, जो कि मानवीय सवेदना और सामाजिक प्रौढ़ता के आधार–स्तम्भ सिद्व होते है। मनुष्य की सही पहचान एवं मानवता की सही खोज इन्ही मानवीय मूल्यो के द्वारा संभव हो सकती है। रघुवीर सहाय ने

---

1 आत्म हत्या के विरूद्व– रघुवीर सहाय, पृ0स0 86

सम्पूर्ण मानवता के परिदृश्य को अपनी रचनाओ मे चित्रित करने का प्रयास किया है–

"सभा मे विराजे है बुद्धिमान
वे अभी राजा से तर्क करने को है
आज कार्य सूची के अनुसार
इसके लिए वेतन पाते है वे
उनके पास उग्रस्वर ओजमयी भाषा है
मेरा सब क्रोध, सब कारूण्य सब क्रन्दन
भाषा मे शब्द नही दे सकता
क्योंकि जो सचमुच मनुष्य मरा
उसके पास भाषा न थी"---[1]

रघुवीर सहाय मानवीय मूल्यो का चित्रण करने के साथ ही अपनी रचनाओ मे नारी चेतना को चित्रित करके नारी के मान–सम्मान के प्रति अपनी गहरी चिन्ता दर्शायी है, सहाय नारी के अधिकारो के सच्चे हिमायती रहे है। उन्होंने समाज की मजबूती के लिए नारी के मान–सम्मान की सम्यक् सुरक्षा को अति आवश्यक माना है। नारी के साथ होने वाले भेदभाव एव गैर बराबरी की स्थिति को रघुवीर सहाय ने मानवीय मूल्यों की स्थापना मे बहुत ही अवरोधक माना है– उनकी कविताए सच्ची नारी पीडा को उभारती है–

"औरतों के चेहरे समाज के दर्पण है
पुरूषो जैसे
किन्तु जो दर्द दिखलाते है, उनमे मिठास है
पुरूष गिड़गिड़ाते है औरते सिर्फ थाम लेती है बेवसी
कोई शरीर नही, जिसके भीतर उसका दु ख न हो
तुम जब उसमे प्रवेश करते हो और वह नही मिलता
वही है बलात्कार
बाकी है प्रेम और दोनों के बीच की कोई स्थिति नही"---[1]

---

1 हँसो–हँसो जल्दी हँसो– रघुवीर सहाय, पृ0स0 3

रघुवीर सहाय की कविताए यह प्रमाणित कती है कि आज की सामाजिक स्थितियो के बीच असहाय स्त्री कितनी व्यथाओ से घिरी है। उसकी मर्यादा एव सम्मान का कोई मूल्य नही रह गया है। सहाय की प्रबल-करूणा की भावना स्त्रियो और बच्चो की यातनामय जिन्दगी की अभिव्यक्ति द्वारा सर्वाधिक प्रकट हुई है। सहाय स्वय यह स्वीकार करते है कि उनकी कविताओ मे औरते और बच्चे सर्वाधिक इसलिए आते है कि वे उनकी मानवीय सवेदना के सर्वाधिक निकट है। उनका मानना है कि मानवीय मूल्यो के मार्ग मे जिस तरह के मानसिक-आध्यात्मिक जुल्म अवरोधक सिद्व हो रहे है, वे सभी सर्वाधिक औरते और बच्चो के ऊपर हो रहे है-

"यह इस समाज मे है औरत की विडम्बना
हरबार उसे मरना होता है
टूटा हुआ बचाती है
वह अपने भीतर टूट-फूट के
बदले नया रचाती है
पर देखो उसके चेहरे पर
कैसी थकान है यह फैली
हँसने रोने को कहती है
उसमे पुरूषो की प्रियशैली"----[1]

सहाय का यह मानना है कि हम सच्चे अर्थों में मानवीय मूल्यों की स्थापना मे तभी सफल हो सकते है जब समाज मे व्याप्त, भ्रष्टाचार एव अत्याचार को जड से समाप्त क दिया जायेगा।

1-- लोग भूल गये- रघुवीर सहाय, पृ0स0 91

रघुवीर सहाय की कविताए यह सिद्व करती है कि औरतो को भी पुरूषो के समान दर्जा मिल सकता है, जब उनके साथ होने वाले अनेकानेक अत्याचार को समाप्त करके, उनके बीच जो विषमता की खाई मजबूत हो रही है, उसे सदा के लिए समाप्त कर दिया जायेगा। आज जहाँ मानवीय मूल्यो को गौण बना दिया गया है और शोषण, दमन एव बलात्कार जैसी भयावह स्थितियाँ औरतो के सम्मुख है, उनका एकताबद्व होकर विरोध करने की आवश्यकता है। वस्तुत तभी सच्चे न्याय और समानता की स्थिति के साथ–साथ मानवीय मूल्यो की प्रतिष्ठा स्थापित हो सकती है।

"हाथ बालो पर नही जिनके कभी फेरा गया
बैठकर दो चार के सग
तजुर्बे अपने सुनाने का नही मौका मिला
औरते वे सूखकर रह गयी
उनकी बच्चियो ने जवाँ होकर दादियो की
काठियाँ पाईं'———[1]

रघुवीर सहाय सदैव मानवीय भावों को स्थिर रखने के पक्ष मे रहे है। उन्हे किसी प्रका की महफिलबाजी पसन्द नही थी, क्योकि वे यथार्थ की सच्ची चपेट मे ही जीवन का सत्य एवं मानवीय भावो को खोजने का प्रयास करते रहे है।

समाज मे व्याप्त अव्यवस्था जिसके परिणामस्वरूप मानवीय भावो पर सतत प्रहार हो रहा है, उसके खिलाफ रघुवीर सहाय एक सतत सघर्ष करने का प्रयास करते रहे है–

---

1 कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ– रघुवीर सहाय, पृ0स0 44

आधुनिक जीवन का सम्पूर्ण अध्ययन करते हुए जीवन की समस्त बिडम्बनाओ को जिनके कारण आज मानवीय भावो, दया, करूणा, प्रेम, ईमानदारी आदि पर जो आघात पहुँच रहा है, उसे सहाय ने अपनी कविता का वर्ण्य विषय बनाकर चलने का प्रयास किया है– उन्होने तत्कालीन अपने काव्य सग्रहो मे सवेदना और बदलते सामाजिक मूल्यो, मानवीय भावो पर आघात पहुँचाने वाली अव्यवस्था के प्रति अपने दर्द को सहज भाव में अभिव्यक्त किया है, जेसा कि–

> टूटते हुए समाज का रोना जो रोते है
> उनके कल और परसो के आसुओ का
> प्रमाण मेरे पास लाओ
> मुझे शक है ये टूटते समाज मे
> हिस्सा लेने आये है उसे टूटने से रोकने नही"---[1]

रघुवीर सहाय ने अपने अन्तिम कविता सग्रह, "एक समय था" मे भी आजादी, न्याय और समता तथा मानवीय मूल्यो की सही तलाश के लिए बेचैन दिखाई देते है। उनके मतानुसार मानवीय मूल्यो के द्वारा ही एक आदर्श समाज की स्थापना की जा सकती है। ऐसे समाज की जिसमे किसी प्रकार का वैषम्य नही रह सकता। "रघुवीर सहाय की जिजीविषा उनके सभी सग्रहो के आर–पार स्पन्दित है। उसमें विषाद है, पर निरूपायता नही, उसमे दु ख है, पर हाथ पर हाथ धरे बैठी लाचारी नही। वे अभी भी जीना चाहते है। कविता के लिए नहीं, कुछ करने के लिए कि मेरी सन्तान कुत्ते की मौत न मरे"---[2]

---

1 एक समय था– रघुवीर सहाय, पृ0स0 51

2 वही, भूमिका मे अशोक बाजपेयी का वक्तव्य

समाज मे व्याप्त अत्याचार और गैर बराबरी के ऐश्वर्य और वैभव के विरूद्ध अन्तिम कविता सग्रह की कविताए जिन्दगी की निपट साधारणता मे भी प्रतिरोध और सघर्ष की असमाप्य मानवीय सभावना की कविता है। अन्य काव्य सग्रहो की भाँति अन्तिम काव्य सग्रह मे भी भाषा कौशल का ही नही, अपनी पूरी ऐन्द्रिकता मे नैतिकता तलाश, मानवीय मूल्यों की खोज और आग्रह का हथियार विद्यमान है। पुरानी सामाजिक मान्यताओ एव नैतिक परम्पराओ के ह्रास पर कवि अपना क्षोभ इस प्रकार प्रस्तुत किया है–

"एक समय था, मै बताता था कितना
नष्ट हो गया है अब मेरा पूरा समाज
तब मुझे ज्ञात था कि लोग अभी व्यग्र है
बनाने को फिर अपना परसो कल और आज"---[1]

आज युग इतना बदल चुका है कि मानवीय मूल्यो की प्रतिष्ठा बिल्कुल समाप्त हो चुकी है। कवि, लेखक एव अन्य साहित्यकार भी इन मानवीय मूल्यो की तरफ विशेष ध्यान नही देख रहे हैं, जिसके कारण इन मानवीय मूल्यो का निरन्तर ह्रास ही हो रहा है। लेकिन रघुवीर सहाय ने अपने सभी काव्य सग्रहो एव अन्य रचनाओ मे भी मानवीय मूल्यो के ह्रास पर अपनी गहरी चिन्ता प्रकट की है, और उनको जीवित करने के लिए अपना सशक्त प्रयास भी किया है।

******

---

1 एक समय था– रघुवीर सहाय, पृ0स0 39

अध्याय : पचम

भाषा और रचना शिल्प

अध्याय – पंचम

भाषा और रचनाशिल्प

1 भाषा को प्रभावित करने वाले घटक

क) पत्रकारिता, ख) अग्रेजी साहित्य, ग) यथार्थ से जुड़ाव

2 नयी भाषा की खोज

3 भाषा की विशेषताए क) सपाटबयानी, ख) सघन एव तुकात्मक गद्यात्मकता, ग) वाक्य का महत्त्व, घ) नाटकीयता एव झटका देने की कला, ड) व्यग्यात्मक तेवर, च) बिम्ब और प्रतीक

4 भाषा की शाब्दिक सरचना– अग्रेजी, सस्कृत, उर्दू, तद्भव, देशज, तत्सम।

5 छन्द, लयात्मकता, सगीतात्मकता

भाषा

रघुवीर सहाय आम जनता के कवि हैं। सामान्य जन के अभाव, सघर्ष एव पीडा को सहाय ने सम्यक् रूप से समझने का प्रयास किया। यही कारण है कि उनकी काव्य–भाषा आम जनता के बिल्कुल करीब पहुँचने वाली भाषा है। इस भाषा मे एक सजग एव सवेदनशील नागरिक का दायित्व बोध समाहित है। उनकी सवेदना और अनुभूति आम आदमी की अनुभूति है, जिसमे कि समाज के दु ख झेलते शोषित उपेक्षित लोगो का चित्रण प्राप्त होता है। जनता के दु ख दर्द को रघुवीर सहाय ने अपना दर्द समझने का प्रयास किया है। अपनी सहज प्रवाहमान भाषा के माध्यम से रघुवीर सहाय ने जन साधारण के दु ख दर्द को अपने काव्य मे उभारने का प्रयास किया है–

"झुर्रिया डरा हुआ दुबला–साँवला चेहरा
बस से उतरी हुई भीड मे एक–एक कर देखा वह नही था
पिछली बार बहुत देर पहले उसे अच्छी तरह देखा था
रोज आते–जाते है बस मे लोग एक दिन खत्म हो जाते है
या कि खत्म नही होते चुप–चाप
मरने के लिए कही दुबक जाते हैं–––[1]

यह बिल्कुल निश्चित है कि रघुवीर सहाय के लिए एक समाज और एक बिल्कुल बराबरी के समाज की खोज करना अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विषय रहा है। इन सबकी स्पष्ट छाप रघुवीर सहाय की भाषा पर है। भाषा के प्रति भी उनकी बहुत बडी चिन्ता थी। वे हिन्दी के बहुत बडे समर्थक थे, लेकिन हिन्दी के पुजारी बनने के विरोधी थे। वे हिन्दी के रचनात्मक इस्तेमाल और उसकी

---

1 हँसो–हँसो जल्दी हँसो–रघुवीर सहाय, पृ0सं0 65

सभावनाओ को लगातार खोजने के आग्रही थे। उसे पूजनीय वस्तु बनाने वालो पर उन्होने "दिनमान" मे कई बार करारा व्यग्य किया। भाषा को रघुवीर सहाय सामाजिक सम्बन्धो का ही दूसरा नाम मानते थे। दूसरी भारतीय भाषाओ से उनका गहरा प्रेम भी इसी हिन्दी प्रेम का एक आयाम था। "दिनमान" के पन्नो मे रघुवीर सहाय ने कवि शमशेर बहादुर सिह से "उर्दू" शिक्षा के कई पाठ लिखवाये थे। जिनसे हजारो लोगो ने उर्दू सीखने का प्रयास किया। भाषा को अर्थहीन या विकृत करने की शासक वर्ग की कोशिशो के प्रति रघुवीर सहाय हमेशा सजग रहे। उनकी एक कविता "दो अर्थ का भय" इन्ही कोशिशो का विरोध करने वाली कविता है, जिसमे उन्होंने लिखा है–

> मुझे मालूम था मगर इस तरह नही कि जो
> खतरे मैने देखे थे वे जब सच होगे
> तो किस तरह उनकी चेतावनी देने की भाषा
> बेकार हो चुकी होगी
> एक नयी भाषा दरकरार होगी"---[1]

रघुवीर सहाय भाषा और मनुष्य के रिश्ते को किस तरह अविभाज्य मानते थे। इसका सफल उदाहरण "फूल माला हाथों" मे मिलता है–

> "जब हत्यारे सारे शब्दो को
> तोड लेंगे
> तब वे अपने–अपने मित्रो को
> मार देंगे
> एहतियातन
> फूल माला हाथो मे
> बच्चो के"---[2]

---

1 हँसो–हँसो जल्दी हँसो – रघुवीर सहाय, पृ0स0 3

2 वही " पृ0स0 70

रघुवीर सहाय अपने जीवन की एक बहुत बडी लडाई भाषा के मोर्चे की लडाई समझते थे, और इस मोर्चे पर उन्होने अपनी हार की सूचना एक ईमानदार योद्वा की तरह दी थी–

"हम लड रहे थे
समाज को बदलने के लिए एक भाषा का युद्ध
पर हिन्दी का प्रश्न नही रह गया
हम हार चुके है
हिन्दी है मालिक की
तब आजादी के लिए लडने की भाषा फिर क्या होगी"–––[1]

रघुवीर सहाय मे भाषा सम्बन्धी खोज की छटपटाहट का एक और पहलू दिखाई देता है, जो उनकी कविता "फिल्म के बाद चीख में" इस प्रकार अभिव्यक्त की गयी है–

"न सही यह कविता
यह मेरे हाथ की छटपटाहट सही
यह कि मै घोर उजाले मे खोजता हूँ
आग
जबकि हर अभिव्यक्ति
व्यक्ति नही अभिव्यक्ति
जली हुई लकडी है न कोयला न राख"–––[2]

रघुवीर सहाय की भाषा की खोज धीरे–धीरे आग की खोज मे बदल गयी है और कविता बिल्कुल हाथ की छटपटाहट बन गयी है। रघुवीर सहाय ने अपनी

---

1 लोग भूल गये है– रघुवीर सहाय, पृ0स0 77

2 आत्म हत्या के विरूद्व– रघुवीर सहाय, पृ0स0 27

कविताओं मे जिस भाषा का प्रयोग किया है, उसमे कही न कही निराला, शमशेर, नागार्जुन, मुक्तिबोध, त्रिलोचन सभी याद आते है। लेकिन वे सभी केवल इसी अर्थ मे याद आते है कि रघुवीर सहाय की अपनी एक भाषा है। यथार्थ और जीवन की करूण और सवेदनशील पहचान है, जिस प्रकार इन सभी कवियो की अपनी पहचान है। सहाय ने अपनी कविताओ मे सन्दर्भो, अनुभूतियो और घटनाओ की जो प्रत्यक्षता रची है उसे आज भी हमारी विश्वविद्यालयी आलोचना का एक बहुत बडा अश "अखबारी रपट" वाला यथार्थ कहकर मुक्त हो जाता है लेकिन एक दूसरा वर्ग जो थोडा अधिक साहसी और आधुनिक है, उनके निकट तो जाता है लेकिन लगातार इसी बात पर चमत्कृत होता रहता है कि इन कविताओ मे बेशुमार लोगो का माना जाना है।

सहाय का यह अपना विचार है कि कविता मे जितना महत्त्व नये विषय–वस्तु का है उतना ही इस बात का भी है कि वह किस प्रकार सवेदना के नये रूपाकार गढ़ रही है। सहाय की काव्य सवेदना और उनकी निरन्तर सक्रिय प्रयोगधर्मिता, उनकी भाषा को एक सुव्यवस्थित रूप प्रदान करता है ।

(1) भाषा को प्रभावित करने वाले घटक

(क) पत्रकारिता

यह सर्वविदित तथ्य है कि रघुवीर सहाय ने अपने जीवन की वास्तविक शुरूआत पत्रकारिता से की थी और 1951 ई0 में "प्रतीक" के सम्पादक मण्डल मे आकर उन्होने अपने कार्य को आगे बढाया।

एक आधुनिक कवि होने के कारण रघुवीर सहाय की भाषा और अनुभूति मे जो बातें विशेष रूप से हम पाते है- वे है-

1 भाषा मे बोलचाल का लचीलापन

2 गद्य जैसी रवानी और ऊपर से दिखाइ देने वाली

3 अति सरलता या सपाट बयानी -

4 कोई न कोई ट्विस्ट देकर पाठक को शाक करने की इच्छा।

जीवन की सम्पूर्ण अभिव्यक्ति के लिए प्रयत्नशील होने के कारण नयी कविता मे भाषा का बोलचाल का रूप खुलना स्वाभाविक है। इसके पहले के युगो की कविता उदात्त चरित्रो के उदात्त जीवन की ही अभिव्यक्ति थी। रघुवीर सहाय अपनी भाषिक सवेदना के लिए यह स्वीकार करते है कि उनकी कविता उदात्त और साधारण मे कोई अन्तर नही करती है। उनकी कविता के लिए यह आवश्यक है कि अधिक से अधिक और समग्र से समग्रतर जीवन अर्थमय हो सके। जीवन मे यदि उन्मुखता और ऊब है, तो दोनो ही अनुभव उसके लिए मूल्यवान है। रघुवीर सहाय स्वय यह प्रतिज्ञा करते है कि-

> "हम तो सारा का सारा लेंगे जीवन
> "कम से कम" वाली बात न हमसे कहिए"---[1]

"समग्र" और "सम्पूर्ण" आलोचक के शब्द हैं। कवि के लिए बोलचाल का "सारा का सारा" अधिक अर्थ देता है। रघुवीर सहाय की भाषा की यह अपनी एक अलग विशेषता है।

---

1 सीढियो पर धूप मे- रघुवीर सहाय पृ0स0 109

रघुवीर सहाय आरम्भ से ही आकाशवाणी, दूरदर्शन एव समाचार पत्र–पत्रिकाओ से सम्बद्ध रहे है, परिणामस्वरूप उनकी भाषा मे अखबारी पुट का पाया जाना नितान्त स्वाभाविक है। उनकी पत्रकारिता को मुख्य रूप से "दिनमान' के माध्यम से जाना जाता है। रघुवीर सहाय ने अपने को हिन्दी पत्रकारिता के उन स्रोतो से जोडा था जो जनोन्मुख और जनाधारित थे। यह निश्चित है कि रघुवीर सहाय की कविताएँ एक गहरे अर्थ मे राजनैतिक चेतना से ओत–प्रोत हैं। केवल इतना ही नही, रघुवीर सहाय ने अखबार की भाषा से राजनीति लेकर उसे कविता मे गढा है, आज जबकि साहित्यिक रचनात्मकता पर पत्रकारिता का दबाव बढता जा रहा है, व्यवसायगत समाचार पत्रों से जुड़े कवि रघुवीर सहाय ने अखबार को कविता मे रूपान्तरित किया है। सहाय यह मानते थे कि अखबार स्वभावत बोल–चाल और दिन–प्रतिदिन के जीवन से जुडा हुआ है, और कवि वही से अपने अनुभव के लिए भाषा उठाता है। रघुवीर सहाय ने अपनी भाषा मे जिस अखबारी भाषा का प्रयोग किया है। उनमे मानवीय रिश्ते छिपे हुए है। उनकी पत्रकारिता, बिल्कुल लोकतत्र की पत्रकारिता है, जिसमे पूँजीवादी व्यवस्था के अन्तर्गत घायल किये गये निम्न मध्यवर्गीय लोगो मे दर्द का चित्रण है। यही कारण है कि रघुवीर सहाय ने अपनी भाषा मे जो अखबारी तेवर प्रस्तुत किया है, वह केवल अखबारी रपट या निराधार सबूत न होकर सच्चे मानवीय रिश्ते को प्रकट करता है–

"जब मर के गया मै बाहर
तब याद मुझे आया घर
अब भी वो झगडते होंगे
हगनी–मुतनी बातो पर
माँ अब भी दिलाती होगी
क्या मेरे मरने का डर"–––[1]

---

1 कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ– रघुवीर सहाय, पृ०स० 51

रघुवीर सहाय का यह भी मानना है कि कविता मे अखबार की स्थिति से वास्तविकता प्रकट होती है और उससे भाषा भी गद्यमय हो जाती है। उनके अनुसार रचना मे एक विस्तृत ससार के लिए जिस जटिलता की आवश्यकता होती है, वह अखबार के माध्यम से सरल और सुबोध बन जाता है। इस सन्दर्भ मे डा0 नामवर सिह ने स्वय लिखा है – ""सार्थकता का कारण है वर्तमान की सही पहचान" सूक्ष्म पर्यवेक्षण और अप्रतीकी अभिव्यक्ति। क्या इन सब बातो मे परस्पर विरोध नही है? यदि पर्यवेक्षण सूक्ष्म है तो फिर व्यापक ससार सरल कैसे हुआ ? यदि कविता मे वर्तमान की सही पहचान है तो फिर वह अखबारी कैसे हुई"?---[1]

यह निश्चित है कि रघुवीर सहाय ने समाचार सग्रह के साथ-साथ अपनी जीविका के लिए जिस पत्रकारिता के क्षेत्र मे कदम रखा था वह उस समय बहुत आसान नही था। इसीलिए तब भी और आज भी पत्रकारिता को नियन्त्रित करने वाली व्यवस्था का चेहरा कभी साफ नही दीखता। इस न दिखाई देने वाली लेकिन सर्वत्र उपस्थित चेहरे को पढने और व्यर्थ बनाने की ही नही, उसे उखाड फेकने की जितनी ईमानदार कोशिश रघुवीर सहाय की रचनाओ मे मिलती है, उतनी किसी और कवि की कृति मे नही प्राप्त होती है।

पत्रकारिता के साथ-साथ सचार माध्यमो आकाशवाणी, तथा दूरदर्शन द्वारा विभिन्न कार्यक्रमो की परिकल्पनाओ से जुडे रहने के बावजूद सरकारी माध्यमो के अनावश्यक हस्तक्षेप के बारे मे रघुवीर सहाय उदार नही रहे थे। वे सरकारी टेलीविजन को आडे हाथ लेते रहे और दूरदर्शन को दुरदर्शन कहने लगे थे। अपने जीवन के अन्तिम वर्षों मे वे इसके प्रबल समीक्षक हो गये थे।

---

1 कविता के नये प्रतिमान- डा0 नामवर सिह पृ0स0 217

"कल जब घर को लौट रहा था देखा उलट गयी है बस
सोचा मेरा बच्चा इसमे आता रहा न हो वापस
टेलिविजन ने खबर सुनायी पैंतिस घायल एक मरा
खाली बस दिखला दी खाली नही कोई चेहरा
वह चेहरा जो जिया या मरा व्याकुल जिसके लिए हिया
उसके लिए समाचारो के बाद समय ही नही दिया"---[1]

रघुवीर सहाय की भाषा यद्यपि पत्रकारिता एव अखबारी पुट से बिल्कुल प्रभावित है, लेकिन उसे अखबारी कहना समीचीन नही होगा। सहाय ने जीवन के सच्चे यथार्थ की अभिव्यक्ति के लिए अपनी भाषा को ऐसी कसौटी पर कसने का प्रयास किया है जो कि हर तरह से उपयुक्त भाषा सिद्व हो सके। चूँकि उनका साहित्यिक जीवन पत्रकारिता से ही आरम्भ होता है, परिणामस्वरूप उनकी भाषा मे पत्रकारिता का प्रभाव स्वाभाविक है, जिसके माध्यम से सामाजिक और राजनीतिक यथार्थ का सही मूल्याकन होता है। पत्रकारिता रघुवीर सहाय के जीवन का अभिन्न अग रही है, इसलिए पत्रकारिता को अलग करके उनकी भाषा का मूल्याकन करना अधूरा ही साबित होगा।

"हो सकता है कि कोई मेरी कविता आखिरी कविता हो जाये
में मुक्त हो जाऊँ
ढोग के ढोल जो डुड बजाते हैं उस हाहाकार मे
यह मेरा अट्हास ज्यादा देर तक गूँजे खो जाने के पहले
मेरे सो जाने के पहले
उलझन समाज की वैसी ही बनी रहे।"[2]

---

1 हँसो-हँसो जल्दी हँसो- रघुवीर सहाय, पृ0स0 47

2 आत्म हत्या के विरूद्व - रघुवीर सहाय, पृ0स0 16

(ख) अग्रेजी साहित्य

रघुवीर सहाय अग्रेजी मे एम0ए0 होने के कारण अग्रेजी साहित्य मे भी भरपूर रूचि रखते थे। मूलत वे हिन्दी के ही हिमायती रहे है। लेकिन उनकी भाषा अग्रेजी साहित्य से प्रभावित है। सहाय ने अपनी भाषा को सामान्य बोलचाल की भाषा का रूप दिया है। चूँकि आज के परिवेश मे सामान्य बोल चाल की भाषा मे अग्रेजी का पुट भाषा को ज्यादा सशक्त बनाने के लिए बडी तेजी से बढ रहा है, रघुवीर सहाय की भाषा भी इस प्रभाव से अछूती नही रही है। समाचार पत्र-पत्रिकाओ एवं दूरदर्शन से सम्बद्व होने के कारण इनकी भाषा मे अग्रेजी के शब्दो का आना स्वाभाविक है। उन्होंने डिसमिस, इडियट, रिवर्ज थैंक यू, सोसायटी, माडर्न जैसे शब्दो को अपनी भाषा मे प्रयुक्त करके अपनी भाषा को अधिक सक्षम एव धारदार बनाने का प्रयास किया है।

(ग) यथार्थ से जुड़ाव

रघुवीर सहाय आम जनता के कवि होने के कारण यथार्थ का सफल चित्रण अपनी सहज एव साधारण बोल-चाल की भाषा मे करने का प्रयास किया है। उनकी भाषा का यथार्थ से गहरा रिश्ता साबित होता है, जिसमे कि सामाजिक आर्थिक, राजनीतिक, सास्कृतिक सभी परिवेश स्वत उभरकर सामने आ जाते है।

यह निश्चित है कि सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक आदि सभी क्षेत्रो में रघुवीर सहाय का दृष्टिकोण चाहे कुछ भी रहा हो, लेकिन उनकी अनुभूति और सवेदना बिल्कुल मानवीय रही है। जिसमे कि वे सम्पूर्ण मानवता के दु ख दर्द को समेटने का प्रयास किया है। अपनी भाषा के माध्यम से वे अपनी आत्मीयता को यथार्थ की अभिव्यक्ति हेतु अक्सर आलोचना या खीझ

की तरह रखते है। अपनी सामयिक स्थितियो से उनका यह सघर्ष जो एक ओर बेहद आत्मीय है, गहन और दुर्बोध भी, वही पर उनकी भाषा के यथार्थ सम्बन्धी तत्त्व का निरूपण करती है। यही कारण है कि रघुवीर सहाय यथार्थ की गहराई को सच्चे रूप मे अभिव्यक्त करने के लिए नई भाषा, एक नयी लय, नये तरह के वाक्य का सहारा लेते है।

उनकी भाषा यथार्थ का सिर्फ वर्णन ही नही करती, अपितु यथार्थ का, उसके सच का वह अन्वेषण करती है। रघुवीर सहाय ने यह भी कहा है कि–

"कविता तभी होती है जब वह विषय से दूर और वस्तु के
निकट होती है
कविता अकेले करती है
और जब हम बहुत तरह के अन्य काम करते है तो
उनसे कविता मे बाधा इसलिए नही पडती
कि वे दूसरे प्रकार के काम है
बल्कि इसलिए कि वे हमेशा हमें बाध्य करते है
कि हम दूसरो के साथ काम करें
जबकि कविता अकेले ही काम करने का तकाजा करती है"---[1]

यथार्थ से सीधे जुडे होने के कारण सहाय ने अनुभूति और अभिव्यक्ति दोनों पक्षो के प्रति अपनी होशियारी दिखाई है। उनकी काव्य भाषा की शक्ति सम्पन्नता उनकी कविताओ मे आरम्भ से है। यथार्थ से उनका जुडाव आरम्भ से ही है। रघुवीर सहाय की भाषा की जीवन्तता के कारण पर विचार करते हुए सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्सायन अज्ञेय ने एक उल्लेखनीय बात कही थी–

---

1 लोग भूल गये है– रघुवीर सहाय, पृ0स0 53

"अपने छायावादी समवयस्को के बीच बच्चन की भाषा जैसे एक अलग आस्वाद रखती थी और शिखरो की ओर न ताककर शहर के चौक की ओर उन्मुख थी। उसी प्रकार अपने विभिन्न मतवादी समवयस्को के बीच रघुवीर सहाय भी चट्टानो पर चढकर नाटकीय मुद्रा मे बैठने का मोह छोड, साधारण घरो की सीढियो पर धूप मे बैठकर प्रसन्न है"---[1]

रघुवीर सहाय की भाषा के सन्दर्भ मे यह कहना कि वह शिखरो की ओर न ताककर शहर के चौक की ओर उन्मुख है, यह प्रमाणित करता है कि रघुवीर सहाय की भाषा बिल्कुल बोल-चाल की भाषा और सर्वसाधारण की भाषा है, जिसका यथार्थ से सीधा और गहरा रिश्ता है। वस्तुत रघुवीर सहाय की भाषा नयी कविता के दौर मे अपना सहज एवं यथार्थवादी प्रभाव छोड़ती है साथ ही साथ जनसाधारण के बिल्कुल करीब पहुँच जाती है। रघुवीर सहाय की भाषा के यथार्थ सम्बन्धी रिश्ते एव साधारण बोल-चाल की निकटता को लक्ष्य करके डा0 नामवर सिह ने लिखा है कि-

"वह केवल भाषागत स्वाभाविकता अथवा स्थूल प्रकृत्तिवादी (नेचुरलिस्ट) प्रवृत्ति का ही सूचक नही, बल्कि उसके साथ कवि का एक गम्भीर नैतिक साहस जुडा हुआ है, जिसके अनुसार अपने आस-पास की दुनिया मे हिस्सा लेते हुए ही कविता को इस दुनिया के अन्दर एक दूसरी दुनिया की रचना करना आवश्यक हो जाता है"---[2]

---

1 सीढियो पर धूप मे-रघुवीर सहाय, पृ0स0-10

2 कविता के नये प्रतिमान- डा0 नामवर सिह, पृ0स0 116

सर्वसाधारण एव बोल–चाल की भाषा मे जो एक सहज आत्मीयता एव लय है, चीजो को प्रस्तुत करने की जो यथातथ्यता है, उसके द्वारा सहाय अपनी कविता मे भाषा की जीवन्त शक्ति तो प्राप्त करते ही है, इसके अतिरिक्त नयी कविता के दौर म बहुप्रचलित दुरूहता से बचकर यथार्थ के बिल्कुल करीब पहुँच जाते है। अपनी भाषा और अनुभूति के माध्यम से जीवन के सच्चे यथार्थ को चित्रित करने के कारण रघुवीर सहाय के अनुभव और सवेदना की प्रामाणिकता सिद्ध होती है–

"सच क्या है?
बीते समय का सच क्या है ?
क्रूरता, जो कुचलकर उस दिन की गयी
वही सच है उसे याद रख, लिख अरे लेखक
दस बरस बाद बचे लोग समझते होंगे
युग नया आ गया
तब हुकुम होगा कि दस बरस पहले का वह दमन
वास्तविक यथार्थ मे क्यो हुआ था समझ,
क्यो गला बच्चे का घोटा गया था
यह उसकी घुटन से अधिक अर्थवान है।
वह बता"---[1]

यथार्थ से मुठभेड तथा जीवन के प्रति सच्ची हिस्सेदारी ने रघुवीर सहाय की कविता की भाषा को सर्जनात्मक बनया है। भाषा की यह सर्जनात्मकता जिन्दगी के यथार्थ मे सीधी हिस्सेदारी के बगैर कविता मे सभव नही की जा सकती है। भाषा की सर्जनात्मकता की जो शक्ति रघुवीर सहाय की साठ के बाद की कविताओं मे अपने समकालीनो के मुकाबले सर्वाधिक दीखती है, उसका आरम्भ उनकी नयी कविता के दौर की कविताओ मे हो ही गया था।

---

1 कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ– रघुवीर सहाय, पृ0स0 21

यह सर्वथा सत्य है कि रघुवीर सहाय की भाषा मे जहाँ एक ओर अखबारी पुट है, वही पर हम यह देखते है कि इनकी भाषा बिल्कुल साधारण और सामान्य जन की भाषा है। यह भाषा आम आदमी की भाषा है, जिसके माध्यम से हर व्यक्ति अपने-अपने विचारो को सम्प्रेषित कर सकता है। रघुवीर सहाय ने अपनी कविता मे जिस भाषा का प्रयोग किया है उसमे जीवन की स्वाभाविकता का सफल चित्रण है और वह यथार्थ के गहरे तल को स्पर्श करती है-

"हम सब जानते थे गरीब क्या चीज होती है
हम सब गरीब को बिसरा चुके थे
हममे से एक ने कहा रोज कम खाना मेरे दो बच्चो
को तोडता
मरोडता कुतरता है रोज-रोज कुछ समझे?
बुझते हुए धीरे-धीरे एक दिन हजार लोग रोज
सहने के अन्तिम कगार पर खडे हो
भारतवर्ष मे फलाँग पड़ते है
व्यक्ति स्वातन्त्र्य के समुद्र मे कोई धमाका नही"---[1]

---

1 आत्म हत्या के विरूद्ध- रघुवीर सहाय, पृ0स0-25

(2) नयी भाषा की खोज

रघुवीर सहाय भाषा की खोज के प्रति बहुत ही प्रयत्नशील रहे है। अपनी कविता के द्वारा सहाय ने समय की फरियाद को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। यही कारण है कि कविता चाहे प्रकृति की हो, चाहे प्रेम की बाजार की या कि ससद की, रघुवीर सहाय की भाषा के विधान मे कोई जटिलता नही आती। वह सबके लिए समान रूप से सुलभ है। आँगन–शयन कक्ष, बैठक और सडक कही के लिए उसे विशेष सज्जा या कि असज्जा नही करनी पडती। बिल्कुल सामान्य बोल–चाल और साधाण अनुभव का रघुवीर सहाय की कविता मे खुलना कवि के पहले सकलन "सीढियो पर धूप में" मिलता है।

> "नव युग आजादी का, नव युग की आजादी
> इतने मे किसी ने टोक कर जैसे डपट दिया
> "देख, सुन, समझ, अरे घर घुस जनवादी"
> चौक देखा कोई नही, सुना केवल ढप्–ढप्
> आँगन में गेहूँ का कूडा फटका रही
> सोलह सेर वाले दिन देखे हुई दादी"---[1]

जहाँ बच्चन की भाषा दूर तक इतिवृत्तात्मक और मुहाचिरो से परिचालित होने वाली है, वही पर रघुवीर सहाय साधारण बोलचाल की भाषा को लेकर उसमे बिम्ब रचते है जो सम्प्रेषण का कही अधिक दक्ष, लेकिन उतना ही मुश्किल ढग है–

"सीढियो पर धूप में" की "धूप" कविता मे उन्होने लिखा है –

> "कितने सही है ये गुलाब
> कुछ कसे हुए और कुछ झरने–झरने को
> और हल्की सी हवा मे और भी जोखम से
> निखर गया है उनका रूप जो झरने को है"---[2]

---

1 सीढियो पर धूप मे– रघुवीर सहाय, पृ0स0 174

2 वही " पृ0स0 168

रघुवीर सहाय की भाषा को ही लक्ष्य करके "सीढियो पर धूप मे" की भूमिका मे अज्ञेय जी ने लिखा है– कि "भाषा की सहज प्रवाहमान प्रगादमयता" रघुवीर सहाय की कविता मे है, कहानियो और समय–समय पर टीप लिये गये अन्तरालोकित वाक्यो मे सघात के क्षण को पकडने की पूर्ण सजगता भी रघुवीर सहाय की भाषा मे दिखाई देती है"---[1]

कविता भाषा के लिए कितनी आवश्यक है? इस बात को रघुवीर सहाय भली–भाँति समझते थे और अपनी भाषा को उसके मुताबिक ढालने का प्रयास भी करते थे –

"एकाएक किसी चेहरे को देखकर मुझे जब लगता है कि
यह वही है
तब थोडी देर मे गौर से देखकर जान पाता हूँ वह नहीं है
हथियार मुझसे यह छीन ही नही सकता"---[2]

जब इन सब वाक्यो को हम बडे सपाटे के साथ पढने की चेष्टा करते है, तो ये वाक्य पढे नही जा सकते। कामा, अर्द्धविराम या पूर्ण विराम भी यहाँ नहीं, जो बाहर से कुछ अकुश लगाये। अगर इनको तेजी से पढ़ जाय तो ऐसा लगता है कि ये वाक्य है। न तो अर्थ ठीक प्रकार से पकड मे आता है और न तो उसका कोई सौन्दर्य ही खुलता है। ऐसी स्थिति मे हम ऐसा सोचते है कि उसका ऐसा लिखा जाना कोई काव्य चातुर्य ही है, शमशेर का गद्य और कविता पढ़ने वाले से जैसा धीरज और ठहर–ठहरकर पढने की दरकार रखता है। आत्यन्तिक रूप से भेद

---

1 सीढियों पर धूप मे की भूमिका मे अज्ञेय जी का वक्तव्य

2 लोग भूल गये है– रघुवीर सहाय, पृ0स0 50

रखते हुए रघुवीर सहाय की कविता का वाक्य भी बहुत कुछ वैसा ही चाहता है– अपनी कविता की भाषा मे उन्होने जीवन की सहजता और यथार्थ को सफलतापूर्वक चित्रित करने का प्रयास किया है।

"वे जिन तकलीफो को जानकर
उनका वर्णन नही करते है
वही है कला उनकी
कम से कम कला है वह
और दूसरी जो है बहुत सी कला है वह
कला बदल सकती है क्या समाज?
नही, जहॉं बहुत कला होगी, परिवर्तन नी होगा"---[1]

अपनी साधारण बोलचाल की भाषा मे रघुवीर सहाय ने लम्बी कविता का विधान नही किया है। उनकी छोटी-छोटी कविताओ मे ही जीवन का इतना विस्तार और वैविध्य है कि महाकाव्य के लिए गिनाये गये वर्ण्य विषयो की लम्बी सूची और उसकी सार्थकता अनायास याद हो आती है। मनुष्य और मनुष्य, मनुष्य और प्रकृति, प्रविधि तथा तथा राजनीति की अनेक स्तरीय टकराहटो को सहज ढग से कवि अगीकार करता है–

"घडी नही कहती है "डिग" जो अपने पथ से
डिग जाने पर घडी नही कहती है "धिक"
और यह तो वह कभी नही कहती है, साथी "ठीक" है
वह कहती है टिक-टिक टिक-टिक टिक-टिक टिक
और टिक-टिक टिक
और टिक-टिक-टिक
और टिक-टिक-टिक
और टिक
और टिक
टिक ---"[2]

---

1 लोग भूल गये है– रघुवीर सहाय, पृ0स0 12

2 सीढियो पर धूप मे– रघुवीर सहाय, पृ0स0 159

साधारण और बोल चाल की भाषा मे अपनी कविता लिखते हुए रघुवीर सहाय यह प्रतिपादित करते है–

"सारे संसार मे फैल जायेगा एक दिन मेरा ससार
सभी मुझे करेगे–दो चार को छोड– कभी न कभी प्यार
मेरे सृजन, कर्म–कर्तव्य, मेरे आश्वासन, मेरी स्थानाए
और मेरे उपार्जन, दान व्यय मेरे उधार
एक दिन मेरे जीवन को छा लेंगे – ये मेरे महत्त्व
डूब जायेगा तन्त्रीनाद–कवित्त रस मे, राग मे, रग मे
मेरा यह ममत्व।
जिससे मै जीवित हूँ।
मुझ परितृप्त को तब आकर बरेगी मृत्यु
मै प्रतिकृत हूँ"---[1]

जीवन के प्रति यह आभार और सार्थकता का बुनियादी भाव रघुवीर सहाय की कविताओ में अर्न्तधारा की तरह व्याप्त है, जो खीज, ऊब, निराशा के बीच सूखता नही। सीढियो पर बैठा व्यक्ति आत्म हत्या के विल्कुल विरूद्व हो, यह बिल्कुल सहज स्वाभाविक है। अपने निहित विश्वास के साथ कि "सारे ससार मे फैल जायेगा एक दिन मेरा ससार" यह रघुवीर सहाय का अपना कोई अहकार नही, बल्कि आत्म विश्वास है। उन्होने अह को डुबोकर अपनी व्यापक अनुभूति अर्जित की है। यहाँ उनकी साधारण बोल–चाल की भाषा शिल्प या मुद्रा नही है, बल्कि उनकी निष्ठा का आधार है। यह मध्यम वर्ग और बोलचाल ही जीवन का अनन्त प्रवाह है, जो मनुष्य की महिमा, करूणा और विद्रूप सबको साधे है, और जो मनुष्य जीवन का बहुत बड़ा हिस्सा है। रघुवीर सहाय की बोल चाल की भाषा मे तोष "उल्लास"

---

1 सीढियो पर धूप मे– रघुवीर सहाय, पृ0स0 88

रघुवीर सहाय यथार्थ को उसी रूप मे अभिव्यक्त करने के लिए बिम्ब की परिसीमा को पार करके एक खास तरह की सपाटबयानी की तरह अग्रसर होते है–

प्रिय पाठक
ये मेरे बच्चे है
कोई प्रतीक नही
और इस कविता मे
मै हूँ मै
कोई रूपक नही"–––[1]

"एक अधेड भारतीय आत्मा" के माध्यम से रघुवीर सहाय का यह कथन उस बदली हुई मन स्थिति का अर्थ पूर्ण सकेत है।

यह सत्य है कि हिन्दी साहित्य मे छठे दशक के अन्त और सातवें दशक के आरम्भ मे सामाजिक स्थिति इतनी विषम हो उठी थी कि उसकी चुनौती के सामने बिम्ब विधान कविता के लिए अनावश्यक बोझ प्रतीत होने लगा। जिस प्रकार सन् 1936 तक आते–आते स्वय छायावादी कवियो को भी सुन्दर शब्दो और चित्रो से लदी हुई कविता नि सार लगने लगी, उसी प्रकार सन् 1960 ई0 के आस–पास नयी कविता की बिम्ब–धर्मिता की निरर्थकता का एहसास होने लगा। ऐसी कठिनाई सामने आयी कि चीजो को किस नाम से पुकारूँ। इसी कठिनाई ने उस प्रवृत्ति को जन्म दिया जिसे अशोक बाजपेयी ने श्रीकान्त वर्मा के दो नये काव्य सग्रह "माया दर्पण" और "दिनारम्भ" की समीक्षा (धर्मयुग 23 जून 1968) करते हुए "सपाट बयानी" का नाम दिया है।

---

1 आत्म हत्या के विरूद्व– रघुवीर सहाय, पृ0स0–75

इस सपाटबयानी के क्रम मे रघुवीर सहाय केदारनाथ सिह और श्रीकान्त वर्मा, इन तीन कवियो का विशेष रूप से उल्लेख करते हुए अशोक बाजपेयी ने यह प्रतिपादित किया हे कि इन तीनो रचनाकारो ने सपाटबयानी के मूल्य को पहचाना, लेकिन उसे अपनी बुनियादी बिम्बधर्मिता के प्रतिकूल न रखकर उसे उसके साथ सयोजित किया और अपने मुहावरो को और उनसे उजागर होने वाले काव्य ससार को समृद्ध किया। चित्रमयता को खोये बिना उसे रोजमर्रा की जीवन्तता दी।

कविता मे सपाटबयानी का यह आग्रह वास्तव मे गद्य सुलभ जीवन्त वाक्य विन्यास को पुन प्रतिष्ठित करने का प्रयास है, जिसके मार्ग मे बिम्बवादी रूझान निश्चित रूप से बाधक रहा है। रघुवीर सहाय की कविताओ मे यह सपाटबयानी सही तौर पर उपलब्ध है।

उनका विश्वास है कि कविता बिम्ब का पर्याय नही है। सामान्य तौर पर जिसे बिम्ब कहा जाता है, उसके बिना भी कविताएं लिखी गयी है। बिम्बो के कारण कविता बोलचाल की भाषा से सदैव दूर हटी है। बोलचाल की सहज लय खण्डित हुई है। विशेषणो का भी भार बढा है। इसी कमी को दूर करने के लिए रघुवीर सहाय ने अपनी कविता मे सपाटबयानी का सहारा लिया।

रघुवीर सहाय की सपाटबयानी के आगे बिम्ब प्रक्रिया छिप गयी है। सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक सभी पहलुओ की सच्ची अभिव्यक्ति उन्होने अपनी भाषा मे सपाटबयानी का सहारा लेकर प्रस्तुत किया है, "यह सही है कि एक गाँव मे लगातार रहकर भी अपने इसान को जाना जा सकता है। मगर एक गाँव से, एक पचायत से, घुटने से, मुक्ति से, दूसरी मे जाना जाति के घेरे मे रहकर सभव नही। भाषा का पक्षधर एक घर घुस समाज दूर पर जो घेरा डाले कृतिकार को हर समय तोडता

रहता है, उसको फलाँग कर किसी और भाषा मे, किसी और विधा मे, किसी और देश मे किसी इतिहास मे, कही भी किसी और घेरे मे जाना ही पड़ेगा– अन्त मे उसको भी अपेक्षया जल्दी ही तोड़ने के लिए। मुझे शक्ति यह जानकर नही मिलती है कि मैने अपने को कहाँ जोडा है। मेरा सर्जनात्मक सुख यह जानने मे है कि मैने अपने को कहाँ तोडकर एक नयी बस्ती बसाई है"---[1]

(ख) सघन एवं तुकात्मक गद्यात्मकता

रघुवीर सहाय अपने समय के समाज को अपनी आँखो से प्रत्यक्ष देखा था और तत्काल परिवेश को समुचित रूप से चित्रित करने का भी प्रयास किया है। उन्होने जीवन के सच्चे यथार्थ को व्यक्त करने के लिए अपनी भाषा मे गद्यात्मकता का भी सहारा लिया है। इनकी काव्य भाषा भी अधिकतर गद्योन्मुख दिखाई देती है। यह निश्चित है कि रघुवीर सहाय के काव्य–स्वभाव मे छायावादी नीली भावुकता और तरल रोमान की गन्ध नही आती है। वे अपनी भाषा मे गद्यात्मकता का पुट देकर जिस यथार्थ को अभिव्यक्त करने का प्रयास करते है, उसके माध्यम से यथार्थ की विभीषिकाओ से हमारा साक्षात्कार होता है। वे अपनी काव्य भाषा में सघन गद्यात्मकता का भाव पैदा करके यथार्थ की उबड–खाबड और पथरीली जमीन पर चलने का प्रयास करते है। रघुवीर सहाय अपनी काव्य भाषा के माध्यम से जो प्रभाव छोडते है, उसमे केवल हवाई मुट्ठियाँ बाँधने का तेवर ही नही दिखाई देता है, अपितु सम्पूर्ण शोषण व्यवस्था को ही बदलने की जुझारू व तीखा तेवर और गहरी करूणा है। वे खुशीराम ही नहीं, सम्पूर्ण शोषित जनता का "इतना दु ख" नही देख सकते है जैसा कि–

---

1 कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ–रघुवीर सहाय, पृ0स0 38

"दिनरात सास लेता है ट्राजिस्टर लिये हुए
खुशनसीब खुशीराम
फुरसत मे अन्याय सहते मे मस्त
स्मृतियाँ खँखोलता हकलाता बतलाता सबेरे
अखबार में उसके लिए खास करके एक पृष्ठ पर दुम
हिलाता सम्पादक एक पर गुर गुराता है
एक दिन आखिरकार दुपहर मे छूरे से मारा गया खुशीराम
वह अशुभ दिन था, कोई राजनीति का मसला
देश मे उस वक्त पेश नही था। खुशीराम बन नही
सका कत्ल का मसला, बदचलनी का बना उसने
जैसा किया वैसा भरा
इतना दु ख मै देख नही सकता---"[1]

रघुवीर का यह अपना विचार है कि सच्चे यथार्थ को अभिव्यक्त करने के लिए काव्य की ही सुकोमल गोद पर्याप्त नही है। यह निश्चित है कि विश्लेषण को पल्लवित करने मे पद्य के बजाय गद्य का चरित्र ज्यादा अनुकूल और सार्थक सिद्ध होता है। रघुवीर सहाय ने तर्क मिश्रित या विश्लेषण परक पद्वति को अपनी काव्याभिव्यक्ति के लिए स्वीकार किया, परिणामस्वरूप उनके काव्य रूसार के लिए भाषा का गद्यीय ढाँचा एय अपरिहार्य जरूरत बन गया है उनकी कविता मे गद्य का प्रवेश एक गैर जरूरी घुसपैठ नही, बल्कि जीवन और जगत के खुरदुरे यथार्थ को कविता व्यक्त करने की आवश्यकता का सच्चा प्रतिफल है।

उनकी सघन गद्योन्मुखता के कारण ही उनकी कविताओ को बहुत तेजी से नही पढा जा सकता है, अपितु थोड रूकते हुए चलना पडता है जैसा कि-

---

1 आत्म हत्या के विरूद्व- रघुवीर सहाय, पृ0स0 72-73

"दु ख मे, दु ख मे भी अन्तर है जो सहने वालो मे है
एक खुले घावो मे है दु ख, एक पके छालो मे है
उस दु ख से क्या लेना-देना, जो मरने वालो मे है
हम उस दु ख के अन्वेषक हे जो जीने वालो मे है"---[1]

रघुवीर सहाय ने जहाँ कविता मे गद्य सरीखे वाक्याशों के लिये जगह बनायी, वही पर उन्होंने काव्य मे भी गद्यात्मक लय के द्वारा नग्न यथार्थ की भयावहता और सश्लिष्ट मानव रोगो को उत्कटता से प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। रघुवीर सहाय की भाषा म सघन गद्यात्मकता का प्रभाव होने के कारण उसमे तुकात्मकता की कमी है। लेकिन ऐसा नही है कि उनकी काव्य भाषा विषयवस्तु से हटकर हो। उनकी भाषा के व्यवहार से ऐसा प्रतीत होता है कि वे भाषा के प्रवाह को कई तरह से बार-बार रोकने का प्रयास करते है-

"कोई और कोई और कोई और और अब भाषा नही,
शब्द अब भी चाहता हूँ
पर वह कि जो जाये वहाँ-वहाँ होता हुआ
चीजो के आर-पार दो अर्थ मिलाकर सिर्फ एक
स्वच्छन्द अर्थ दे
मुझे दे। देता रहा है जैसे छन्द केवल छन्द
घुमड-घुमडकर भाषा का भास देता हुआ
मुझको उठाकर नि शब्द दे देता हुआ"---[2]

निश्चय ही रघुवीर सहाय अपनी काव्य भाषा मे अति परिचित उपकरणो को त्यागकर उस सिरे से अपनी कविता शुरु करते है, जहाँ अक्सर चिन्तन,

---

1 सीढियो पर धूप मे- रघुवीर सहाय, पृ0स0 114

2 आत्म हत्या के विरूद्ध- रघुवीर सहाय, पृ0स0 40-41

आलोचना भाष्य और दर्शन शुरू हो जाया करता है। उनकी भाषा केवल एक प्रकार से गद्य चम्पू या गद्य काव्य न होकर अच्छा-खासा खुरदरा गद्य है। जिसमे कि लय के साथ साथ-साथ गत्यात्मकता भी है और प्राय देखने मे ऐसा लगता है कि एक वाक्य जैसे दूसरे वाक्य के अन्दर घुसा हुआ, तीसरे वाक्य को आगे धक्का देता सा मालूम पडता है। अपनी भाषा मे गद्यात्मकता और अखबारी पुट लाकर रघुवीर सहाय यथार्थ की सच्ची तह खोलने मे समर्थ होते है। रघुवीर सहाय अपनी कविता मे दिन-प्रतिदिन जीवन की भाषा का प्रयोग करते है, जिसमे कि तुकात्मकता की कमी होने पर भी विचारो का विश्लेषण प्राप्त होता है।

(ग) वाक्य का महत्त्व

रघुवीर सहाय सचमुच वाक्य के कवि है, शब्द के नही। वे सदैव वाक्य को महत्त्व देते है। रघुवीर सहाय मे अर्थ और शैली का युग्म मिलकर नाटकीयता को रचता है। वह एक सीधा वाक्य नही है। कविता मे यदि वाक्य की चर्चा होती है तो तुरन्त त्रिलोचन की याद आ जाती है। नि संदेह वे एक पूरे वाक्य के कवि है (सम्भवत सबसे समर्थ) लेकिन उनके वाक्य का गठन बेहद कसा हुआ है। रघुवीर सहाय का वाक्य बाँकपन लिये है। प्रवाह मे पढने पर वह सायास असुविधा पैदा करता है।

रघुवीर सहाय की काव्य भाषा के वाक्य मे बुनावट भावो को अधिक जटिल बनाती है। रघुवीर सहाय के वाक्य मे निष्कर्ष से अधिक सशय है, आलोचना से ज्यादा विश्लेषण पर जोर है-

"हो सकता है कि कोई मेरी कविता आखिरी कविता हो जाये
मै मुक्त हो जाऊँ
ढोग के ढोल जो झुड बजाते है उस हाहाकार मे
यह मेरा अट्हास ज्यादा देर तक गूँजे खो जाने के पहले
मेरे सो जाने के पहले
उलझन समाज की वैसी ही बनी रहे"[1]

(घ) नाटकीयता एवं झटका देने की कला

रघुवीर सहाय ने जहाँ अपनी काव्य भाषा मे सघन गद्यात्मक वाक्यो का प्रयोग किया है, वही पर इन सघन गद्यात्मक वाक्यो मे रघुवीर सहाय की ट्विस्ट देने की कला भी दिखाई देती है।

रघुवीर सहाय की भाषा मे अति सरलता के साथ ही साथ कोई न कोई ट्विस्ट देकर पाठक को शाक करने की प्रबल इच्छा दिखाई देती है। उनकी यह ट्विस्ट देने की कला उनकी भगिमा मे न केवल बक्रता लाती है बल्कि नाटकीयता भी उत्पन्न करती है।

रघुवीर सहाय ऐसे कवि रहे है जो अपने समय के मूल्यों की असलियत प्रकट करने का सदैव प्रयास करते रहे। मरती हुई मानवीय सवेदना की पूरी पडताल रघुवीर सहाय की कविता मे प्राप्त होता है। नये मानव सम्बन्धो की तलाश, मनुष्य की लुप्त होती हुई रागात्मक वृत्ति और मानवीय मूल्यो के ह्रास तथा समाज मे अराजकता की बढ़ती हुई प्रवृत्ति को रघुवीर सहाय ने अपनी भाषा मे और ट्विस्ट देकर अभिव्यक्त करने का प्रयास किया है–

---

1 आत्म हत्या के विरूद्ध, रघुवीर सहाय, पृ०स० 16

रघुवीर सहाय सच्चे यथार्थवादी कवि रहे है। उनकी काव्य भाषा मे जटिल बुनावट के अतिरिक्त कुछ जटिल भावों का ऐसा समावेश है जिससे कि यथार्थ की सच्ची अभिव्यक्ति हेतु उनकी भाषा एक नाटकीय मुद्रा का भी रूप ले लेती है। यद्यपि नागार्जुन को नाटकीयता का अद्वितीय कवि माना जाता रहा है, लेकिन नागार्जुन का मिजाज स्पष्ट रूप से आलोचकीय है। वर्ग व्यवस्था के विरूद्व उनके काव्य मे प्रतिहिंसा स्थायी भाव है। विश्लेषण से प्राप्त सूत्र वहाँ निष्कर्षात्मक ढग से आते है। लेकिन रघुवीर सहाय ने विश्लेषण पर अधिक जोर दिया है। उन्होंने अपनी भाषा मे समय के भय को दिखाने का प्रयास किया है। वे आतक को इस प्रकार प्रस्तुत करने का प्रयास करते है कि वह एक प्रकार की वक्रोक्ति जैसा साबित होता है, जिसमे कि नाटकीयता सफलतापूर्वक व्याप्त है---

"वे भागे जाते हैं जैसे बमबारी के
बाद भागे जाते हो नगर निगम की
सड़ाँध लिये दिये दूसरे शहर को
अलग अलग वश के वीर्य के सूखे
अण्डकोष बाँध
भोपू ने कहा
पाँच बजकर ग्यारह मिनट सत्रह डाउन नौ
नम्बर लेटफारम
सिर उठा देखा विज्ञापन में फिल्म के लडकी
मोटाती हुई चढी प्राणनाथ के सिर उसे
कही नही जाना है।"---[1]

---

1 आत्म हत्या के विरूद्व- रघुवीर सहाय, पृ0स0 29

जनता या आम लोगो के बारे मे रघुवीर सहाय ने अधिकतर अपने निषेधात्मक वाक्यो के द्वारा नाटकीयता लाने का प्रयास किया है। लेकिन उनका यह नाट्य कोई निषेध का नाट्य नही है, बल्कि वह तो एक आत्मीय नाट्य है, जिसमे कवि बार–बार एक खीझे हुए, चिढ़े हुए आक्रोशी आदमी की भूमिका मे दिखाई देता है। काफी सीमा तक ऐसा इसलिए भी दिखाई देता है कि और लोग उनकी तरह इस सन्दर्भ मे सघर्षशील नही है।

अपनी भाषा मे नाटकीयता का तेवर देकर रघुवीर सहाय ने अपनी आत्मीयता को अक्सर एक आलोचकीय रूप मे प्रस्तुत करते है– तथा सम्पूर्ण काव्य ससार मे परिवेश की सघनता को नाटकीय मुद्रा मे व्यक्त करने की कोशिश करते है–

"सस्कृति मत्री से कहा राजा ने देखो–देखो मत्री जी
हर एक विधा के भीतर कितने प्राचीन कलारूप–
क्या तुम्हे यह उपयोगी नही दिखाई देता?
क्यो नही तुम सैकडो कलाकार इसी काम पर लगा देते
कि वे उनमे से पुराने रूप लेकर नयी रचनाएँ करे ?
क्या तुम नहीं समझ पाते कि यह उनको
एक अनिश्चित आगामी कल रचने से रोके रखने का
सरलतम ढंग है"?[1]

रघुवीर सहाय की गद्यात्मक काव्य भाषा के वाक्य एक दूसरे को कुछ झटका देते हुए दिखाई देते है और ऐसा लगता है कि वे एक दूसरे से बिल्कुल जुडे हुए है। उनकी भाषा मे गद्यात्मकता एव बोलचाल का लचीलापन तथा एकाएक पाठक को शाक करने की शक्ति विद्यमान है–

---

1 हँसो–हँसो–जल्दी हँसो, रघुवीर सहाय, पृ0स0 75

"सब व्यवस्थाए अपने को और अधिक सकट के लिए
तैयार करती रहती है
और लोगो को बताती रहती है
कि यह व्यवस्था बिगड रही है
तब जो लोग सचमुच जानते है कि यह व्यवस्था बिगड रही है
वे उन लोगो के शोर मे छिप जाते है
जो इस व्यवस्था को और अधिक बिगाड़ते रहना चाहते है
क्योंकि
उसी मे उनका हित है
लोकतत्र का विकास राज्यहीन समाज की ओर होता है
इसलिए लोकतत्र को लोकतत्र मे शासक बिगाडकर
राजतत्र बनाते है"---[1]

अपनी साधारण बोलचाल एव गद्योन्मुख काव्य भाषा मे रघुवीर सहाय ने सहज करूणा और जिन्दगी की शिरकत को पहचानने का सफल प्रयास किया है। अपने समय की परिस्थितियो से अवगत कराती हुई उनकी काव्य भाषा पाठक को झकझोरती हुई दिखाई देती है–

"युग बदलता है उमर ढलती है
औरते मर्दो को जगत के अनुसार
जीवन बदलने का परामर्श देती है
पुरूष भी थक चुके होते हैं, एक चोट खाते ही ध्वस्त होने के पर्व
सोचने लगते है क्या पतन ही जीवन जीने की कीमत है
क्या मेरा झूठा अहकार खुशी भरे जीवन से वंचित
मुझे करता है
और अब अहकार से
पैदा कर रहा हूँ मै क्या"?[2]

---

1 एक समय था– रघुवीर सहाय, पृ0स0 20

2 कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ– रघुवीर सहाय, पृ0स0 26

﴾ड﴿ व्यंग्यात्मक तेवर

व्यग्यात्मकता– मनुष्य की एक विकसित प्रवृत्ति है। हास्य का शुभारम्भ जहाँ बाल्यावस्था मे ही होने लगा है, वही पर व्यग्य मनुष्य की अवस्था के विकास के साथ विकसित होता है।

हरिशकर परसाई ने व्यग्य के उद्‌देश्य एव उसके निर्णयात्मक पक्ष पर अधिक जोर देते हुए यह प्रतिपादित किया है कि–

"व्यंग्य जीवन से साक्षात्कार करता है, विसगतियो, मिथ्याचारो और पाखण्डो का पर्दाफाश करता है। यह नारा नही है। जीवन के प्रति व्यंग्यकार की उतनी ही निष्ठा होती है, जितनी गम्भीर रचनाकार की, बल्कि ज्यादा ही। अच्छा व्यग्य सहानुभूति का सबसे उत्कृष्ट रूप होता है"---[1]

इसके अतिरिक्त हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कहा है कि–

"व्यग्य वह है जहाँ कहने वाला अधरोष्ठो मे हँस रहा हो और सुनने वाला तिलमिला उठा हो, फिर भी कहने वाले को जवाब देना अपने को और भी उपहासास्पद बना लेना हो जाता है।"---[2]

इस प्रकार व्यग्य से हमारा अभिप्राय यह है कि वह अपने साहित्यिक रूप मे एक गम्भीर उद्‌देश्यपूर्ण अभिव्यक्ति है, जिसमे किसी असगति, विकृति या अर्न्तविरोध की बिडम्बनामय या उपहासास्पद स्थिति पर हर तरह से एक प्रहार सिद्व होता है, और इसमे वक्र भाषा, चमत्कार पूर्ण शैली तथा विशिष्ट शब्दो का प्रयोग भी किया जाता है।

---

1 सदाचार का तावीज–हरिशकर परसाई, पृ0स0 10

2 कबीर –डा0 हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ0स0 143

व्यग्य तो नयी कविता की एक ऐसी प्रवृत्ति रही है, जो क्रमश विकसित होती रही है। नये कवियो की विचार धाराए व्यग्यात्मकता के अनुकूल रही है। यद्यपि साहित्य के हर युग के, प्रत्येक काल-खण्ड की काव्य-कृतियो मे कम या अधिक व्यग्य पाया जाता रहा है। लेकिन नयी कविता और साठोत्तरी कविता के दौरान व्यंगात्मक तेवर सर्वाधिक होता गया है। इस सन्दर्भ मे डा0 जगदीश गुप्त ने लिखा है- "नयी कविता आकर्षण को ही नही, विकर्षण को भी टटोलती है। व्यग्य करना, चोट करना, झकझोर देना, ध्यान मे डूबे हुए को जैसे टोक देना और कुछ सोचने पर मजबूर कर देना उसका स्वभाव है। वह रिझाती कम है, सताती अधिक है"---[1]

नयी कविता और साठोत्तरी कविता से जुड़े होने के कारण रघुवीर सहाय की कविताओ मे व्यग्यात्मक तेवर सर्वाधिक है। उन्होने राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक आदि सभी बातो को लेकर अपनी व्यग्यात्मक तेवर की पुष्टि की है। निश्चय ही कविता को भाषा की सहजता के साथ समसामयिक को सूक्ष्म स्तरो पर उद्घाटित कर देना रघुवीर सहाय की अपनी निजी विशेषता है। अपनी कविताओ और गद्य रचनाओ मे जिन क्षेत्रो को चुना है, उसमे व्याप्त पाखण्ड, ढोंग और व्यर्थ के दिखावे पर व्यग्य और छीटाकशी की तीखी धार प्रकट की है। रघुवीर सहाय औरो को चुपचाप सुनने वाले और उनकी आदतो पर नजर रखने वाले उत्तम पर्यवेक्षक थे। यही कारण है कि उनका व्यग्य निरर्थक न होकर सार्थक ही सिद्ध होता है।

रघुवीर सहाय ने अपनी रचनाओ मे सत्तापक्ष के शोषक रूप, अमानवीय स्थितियाँ, नेताओ की ढोगी गतिविधियाँ इन सभी को अपने व्यग्यात्मक तेवर मे कसने

---

1 आलोचना-अक (3), अप्रैल 1953 लेख "नयी कविता मे रस और बौद्धिकता- डा0 जगदीश गुप्त पृ0स0 57

का प्रयास किया है। रघुवीर सहाय के राजनीतिक व्यग्य बाद की कविताओ मे मानवीय सन्दर्भो से बिल्कुल जुडते गये हैं। यह निश्चित है कि रघुवीर सहाय उस भारतीयता के समर्थक थे जो बिल्कुल अपनी थी, वह फासिज्म का मार्ग प्रशस्त करती हुई ढोंगी विचार शैली के खिलाफ खडी हुई भारतीयता थी, जिसे मानवीय सघर्ष के जरिये अर्जित करना पडता है। सहाय ऐसी भारतीयता के पोषक थे जो तोहफे मे नही मिली थी, वह एक सच्चे लोकतांत्रिक और समतामूलक वर्तमान के सघर्ष से पैदा होने वाली भारतीयता थी, जिसके प्रति तुच्छ प्रदर्शन करने वालो के प्रति सहाय ने अपना करारा व्यग्य कसा है– अपने आत्म हत्या के विरूद्व" सग्रह मे सहाय ने राजनीतिक चेतना और उससे उत्पन्न व्यग्य को बडे फौलादी स्वरो मे अभिव्यक्त करने का प्रयास किया है। नेताओ द्वारा जनता का शोषण एव अपनी झोली भरने तथा सम्पूर्ण व्यवस्था को विकृत बना देने की बात को लेकर सहाय ने करारा व्यग्य कसा है–

"हँसती है सभा
तोंद मटका
ठठाकर
अकेले अपराजित सदस्य की व्यथा पर
फिर मेरी मृत्यु से डरकर चिचिंयाकर
कहती है
अशिव है, अशोभन है मिथ्या है"–––[1]

इस उद्धरण मे "अकेले अपराजित सदस्य की व्यथा पर" सभा का तोंद मटका, ठठाकर हँसना सत्तापक्ष की अमानवीयता पर सटीक एव तीखा व्यंग्य है। इसके अतिरिक्त "आत्महत्या के विरूद्व" की कविता मे ही सहाय ने मंत्री को मटकते हुए मच पर चढता देख उसे जनता की छाती पर चढने के रूप मे व्यक्त कर उसका सही पर्दाफाश करने का प्रयास किया है–

---

1 आत्म हत्या के विरूद्व– रघुवीर सहाय, पृ0स0 18

"नगर निगम ने त्योहार जो मनाया तो जनसभा की
मन्थर मटकता मत्री मुसद्दी लाल महन्त मच पर चढा
छाती पर जनता की
बसन्ती रग जानते थे न पसारी न मुसद्दी लाल
दोनो ने राय दी
कन्धे से कन्धा भिडा ले चलो
पालकी"---[1]

"आत्म हत्या के विरूद्व" सग्रह की कविताओ मे कवि ने भ्रष्ट लोकतत्र, नेताओ के शोषण से आम जनता की दयनीयता एव शासको तथा नेताओ की स्वार्थ लोलुपता पर कटु व्यग्य किया है, साथ ही राजनीतिक अव्यवस्था के जिम्मेदार लोगो के काइयाँपन को बडे तीखे स्वर मे उभारा है-

"सेना का नाम सुन देश प्रेम के मारे
मेजे बजाते है
सभासद भद-भद कोई नही हो सकती
राष्ट्र की
संसद एक मन्दिर है जहाँ किसी को द्रोही कहा नही
जा सकता

दूध पिये मुँह पोंछे आ बैठे जीवनदानी गोद
दानी सदस्य तांद सम्मुख धर
बोले कविता मे देश प्रेम लाना हरियाना प्रेम लाना
आइसक्रीम लाना है
भोला चेहरा बोला
आत्मा ने नकली जबडे वाला मुँह खोला"---[2]

---

1 आत्म हत्या के विरूद्व- रघुवीर सहाय, पृ0स0 85

2 आत्म हत्या के विरूद्व- रघुवीर सहाय, पृ0स0 28

अपने काव्य सग्रह "हँसो-हँसो जल्दी हँसो" मे भी रघुवीर सहाय ने राजनीति की असलियत को प्रकट करने का प्रयास किया है। सहाय ने सत्ता पक्ष की नकली सहानुभूति की पोल, उसकी खायी, अघायी और बात-बात पर खिल पडने वाली हँसी के ऊपर विशेष बल देकर असलियत खोलने का प्रयास किया है-

"निर्धन जनता का शोषण है
कहकर आप हँसे
लोकतत्र का अन्तिम क्षण है
कहकर आप हँसे
सबके सब है भ्रष्टाचारी
कहकर आप हँसे
चारो ओर बडी लाचारी
कहकर आप हँसे
कितने आप सुरक्षित होगे
मै सोचने लगा
सहसा मुझे अकेला पाकर
फिर से आप हँसे"---[1]

इस कविता में प्रयुक्त व्यग्य समग्र प्रभाव मे करूणा एवं मार्मिकता का स्पर्श कराता है। अपनी बाराबकी कविता मे रघुवीर सहाय ने अपनी व्यग्यात्मकता इस प्रकार प्रकट की है-

"मैने कहा जिन्दाबाद
दल के दल लोग बोले-जिन्दाबाद
बोले कार्यक्रम क्या है?
मैने कहा डर और हिम्मत

---

1 हँसो-हँसो जल्दी हँसो-रघुवीर सहाय, पृ0स0 16

बोले   नीति क्या है ?
मैने कहा खोज
बोले नीति किसकी है ?
मैने कहा क्या ?
बोले नही किस विचारक की
मैने कहा   क्या ?
बोले यदि तुम्हे नही पता कि तुम विश्व के
राष्ट्रो मे किसके समर्थक हो
तो तुम पर बारकी की जनता विश्वास ही क्यो करे"---[1]

लोग भूल गये है" सग्रह की कविताओ मे भी रघुवीर सहाय ने अपना राजनीतिक व्यग्य इस प्रकार प्रस्तुत किया है–

"हिन्दी के नेता बोले बडी देर तक हिन्दी
जनता ने पूछा अग्रेजी बोल सकते है
उनमे से सबसे बडी चुटियावाला आया
अग्रेजी बोल गया बाकी हिन्दी वाले रह गये"---[2]

रघुवीर सहाय अपने काव्य सग्रह "कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ" की "सच क्या है"? शीर्षक कविता मे सत्ता पक्ष की क्रूरता को उभारते हुए शोषण तत्र द्वारा क्रूर सच्चाइयो पर पर्दा डालने की प्रक्रिया का हल्की सी व्यग्यातमकता के साथ उभारा है–

---

1 हँसो–हँसो जल्दी हँसो– रघुवीर सहाय, पृ0स0 38

2 लोग भूल गये है– रघुवीर सहाय, पृ0स0 17

"सच क्या है ?
बीते समय का सच क्या है?
क्रूरता, जो कुचलकर उस दिन की गयी
वही सच है उसे याद रख, लिख अरे लेखक
दस बरस बाद बचे लोग समझते होंगे
युग नया आ गया
तब हुकुम होगा कि दस बरस पहले का वह दमन
वास्तविक यथार्थ मे क्यो हुआ था, समझ।
क्यो गला बच्चे का घोटा गया था,
यह उसकी घुटन से अधिक अर्थवान है,
वह बता"---[1]

रघुवीर सहाय सामाजिक परिवेश को लेकर अपनी कविताओं में समाज मे वैषम्य की खाई उत्पन्न करने वाले एव तरह-तरह से जनता का शोषण करने वाले पूँजीपतियो के ऊपर अपना करारा व्यग्य कसा है- अपनी सामाजिक व्यग की शैली मे सहाय ने तीखे एव घृणा मूलक शब्दो तथा ग्राम्य जीवन के सहज उपहासमूलक शब्दो के प्रयोग द्वारा व्यंग्य का तीखापन तथा विनोद का चुलबुलापन दोनो ही प्रकट किया है-

"सभी लुजलुजे है
मोल तोल करते है, हिचकिचाते है, मुकर जाते है
ऐठते है बिछ जाते हे
तपाक से मिलते है, कतरा जाते है
बीड़ा उठाते है, बरा जाते है
सभी लुजलुजे है, गिज-गिज है, गिल गिल है"---[2]

---

1 कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ-रघुवीर सहाय, पृ0स0 21

2 सीढियो पर धूप मे- रघुवीर सहाय, पृ0स0 140-41

समाज मे व्याप्त वैषम्य एव पूँजीपतियो द्वारा उत्पन्न शोषण की स्थिति पर जहाँ रघुवीर सहाय एक तरफ अपना व्यग्य कसते है, वही पर दूसरी तरफ ये शोषित वर्गो की पीडा से पूर्णतया द्रवित भी हो जाते है। जैसा कि–

> जोडकर हाथ काढकर खीस
> खडा है बूढा राम गुलाम
> सामने आकर के हो गये
> प्रतिष्ठित पडित राजाराम
> मारते वही जिलाते वही
> वही दुर्भिक्ष वही अनुदान
> विधायक वही, वही जनसभा
> सचिव वह, वही पुलिस कप्तान।
> दया से देख रहे है दृश्य
> गुसलखाने की खिडकी खोल
> मुक्ति के दिन भी ऐसी भूल!
> रह गया कुछ कम ईस्पगोल!"---[1]

इस उद्वरण मे कवि ने एक ओर निम्न वर्ग के प्रतिनिधि रामगुलाम की गरीबी तथा भूख को और दूसरी ओर अभिजात्य वर्ग के शोषक राजाराम की अपच की स्थिति को पहुँची हुई सम्पन्नता को आमने सामने रखकर सामाजिक अन्याय तथा व्याप्त वैषम्य की विडम्बना की बडी तीखी अभिव्यक्ति की है।

हँसो–हँसो जल्दी हँसो, लोग भूल गये है और कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ" सग्रह की कविताओ मे भी सामाजिक अव्यवस्था को लेकर सहाय ने तीखा व्यग्य किया है– "लोग भूल गये है" की "फायदा" कविता मे कवि ने केवल अपने स्वार्थ–चिन्तन मे रत लोगो की मानसिकता पर व्यंग्य किया है–

---

1 आत्म हत्या के विरूद्व– रघुवीर सहाय, पृ0स0 63

"उन्हे मतलब नही कि वक्त ने समाज के साथ
क्या किया है
वे जानना चाहते है कि वक्त ने जो हालत की है समाज की
उनमें वे सबसे ज्यादा क्या पा सकते हैं"---[1]

"कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ" मे रघुवीर सहाय का व्यग्य आधुनिक सभ्यता तथा मनुष्य की विकृति और दिखावटी शालीनता के प्रति बहुत सहज एव तटस्थ विश्लेषण के साथ हुआ है। "हत्या की सस्कृति" कविता में कवि ने आधुनिक सास्कृतिक मूल्यो को नाटकीय शैली मे नग्न करते हुए उसकी कुरूपता पर प्रहार किया है-

"अग्रेजी पढा लिखा हत्यारा कहता है
"मुझे कही छिपना है, पुलिस पीछे पडी है"
आधुनिक प्रेमिका कहती है "खून अरे लाओ, पट्टी कर दूँ"
औरत से कहता है, अभिजात अपराधी "धन्यवाद"---[2]

औरतो के साथ होने वाले अत्याचार एव उनकी वैषम्यपूर्ण स्थिति को ध्यान मे रखकर, सहाय ने उस अव्यवस्था के पोषक लोगो के प्रति अपना तीखा और चुटीला व्यग्य प्रकट किया है-

"औरतो के चेहरे समाज के दर्पण हैं
पुरूषो जैसे
किन्तु जो दर्द दिखलाते है उनमे मिठास है
पुरूष गिडगिडाते है औरते सिर्फ चुपचाप थाम लेती है बेवसी

---

1 लोग भूल गये है- रघुवीर सहाय, पृ0स0 64

2 कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ- रघुवीर सहाय, पृ0स0 17

कोई शरीर नही जिसके भीतर उसका दु ख न हो
तुम जब उसमे प्रवेश करते हो और वह नही मिलता
वही है बलात्कार
बाकी है प्रेम और दोनो के बीच की कोई स्थिति
नही है"---[1]

रघुवीर सहाय व्यर्थ का दिखावा करने वाले साहित्यकारो एव बुद्धिजीवियो पर भी अपना तीखा और धारदार व्यग्य किया है। व्यर्थ मे अग्रेजी के मोह मे पड़ने वाले एव राष्ट्रभाषा हिन्दी को गौण बनाने वाले साहित्यकारो पर जमकर छीटाकसी रघुवीर सहाय की कविताओ मे उपलब्ध है–

घर मे सब कुछ है जो औरतों को चाहिए
सीलन भी और अन्दर की कोठरी मे पाँच सेर सोना भी
और सन्तान भी जिसका जिगर बढ़ गया है
जिसे वह मारि फ पत्रिकाओ पर हगाया करती है
और जमीन भी जिस पर हिन्दी भवन बनेगा"----[2]

उपर्युक्त पंक्तियों में रघुवीर सहाय के व्यग्यात्मक तेवर ने एक सम्पूर्ण व्यग्यात्मक चित्र प्रस्तुत कर दिया है। बुद्धिजीवियों एव साहित्यकारो के प्रति रघुवीर सहाय द्वारा किया गया व्यग्य प्रभाव मे अत्यन्त तिलमिलाने वाला होते हुए भी अभिव्यक्ति मे सयत और क्रमश शालीन होता गया है। सहाय की भाषा व्यग्य के लिए अत्यन्त सहज रूप मे उपयुक्त एव सटीक शब्दो से सम्पन्न है।

---

1 लोग भूल गये है – रघुवीर सहाय, पृ0स0 63

2 आत्म हत्या के विरूद्व– रघुवीर सहाय, पृ0स0 71

"वहाँ प्रकट होती हे प्रायोजित स्मृति–सभा
लेखक, समाजविद् और नयी जाति के विचारक आमन्त्रित है
तत्र के सलाहकार
कोई प्रसताव नही सिर्फ सर्व सम्मति है।
अन्त मे प्रीतिभोज
एक बडे कमरे मे गलमुच्छे, चिन्तन की मुद्रा मे
प्रौढ पुरूष, मोहक गत यौवना औरते,
सकट से सभ्य खान सामो को धन्यवाद देती है"–––[1]

रघुवीर सहाय व्यर्थ के ढोग रचने वाले पाखण्डी एव भ्रष्टाचार तथा वैषम्य को बढावा देने वाले लोगो को भी अपने व्यग्य का शिकार बनाया है। बडे तीखे स्वर मे ऐसे लोगो पर सहाय ने चोट की है और साम्प्रदायिकता को बढावा देने वाले लोगो का पर्दाफाश किया है। उनके धार्मिक व्यग्य साम्प्रदायिक एव विषमता की स्थितियो को लेकर उत्पन्न हुए है जैसा कि–

"सादी दीवार मे
लकडी का द्वार
सिर झुकाये बन्द
लिख दिया उस पर पुरोहित ने सुलेख
कृपा करके यहाँ विज्ञापन न चिपकाये
यह हमारा प्रार्थना घर है"–––[2]

धार्मिक बकवासो मे पडने वाले और धर्म की आड मे देश के पतन की तरफ ले जाने वाले लोगो को रघुवीर सहाय ने अपने करारे व्यग्य का शिकार बनाया है।

---

1 कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ – रघुवीर सहाय, पृ0स0 81

2 आत्म हत्या के विरूद्व– रघुवीर सहाय, पृ0स0 54

रघुवीर सहाय की कविताओ मे व्याप्त व्यग्यात्मक तेवर सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक सभी परिवेशो के यथार्थ से अवगत कराते हुए, असलियत का पर्दाफाश करते है।

﴾च﴿ बिम्ब और प्रतीक

रघुवीर सहाय अभिधा के कवि थे। उनका यह मानना था कि काव्य मे "बहुत कला" होने का अर्थ है यथार्थ को छुपाने की चातुरी। सहाय युगीन यथार्थ के प्रति सम्पूर्णत प्रतिबद्ध कवि थे। वे अपनी बात को सीधी भाषा मे जनता को सीधे सम्प्रेषित करना चाहते थे। उनकी दृष्टि मे कलात्मक कथन समाज को नही बदल सकता है–

"कला और क्या है सिवाय इस देह– मन आत्मा के
बाकी समाज है
जिसको हम जानकर समझकर
बताते है औरो को, वे हमे बताते है"---[1]

रघुवीर सहाय बिम्बो और प्रतीको से इसलिए बचते रहे कि उन्हे भय था कि उनके शब्दो का दूसरा अर्थ लगाकर उनकी कविता की धार को कम कर दिया जायेगा–

"शब्द, अब भी चाहता हूँ
पर वह कि जो जाये वहाँ–वहाँ होता हुआ
तुम तक पहुँचे
चीजो के आर–पार दो अर्थ मिलाकर सिर्फ एक
स्वच्छन्द अर्थ दे

---

1 लोग भूल गये है– रघुवीर सहाय, पृ0स0 12

मुझे दे। देता रहा है जैसे छन्द केवल छन्द
घुमड–घुमडकर भाषा का भास देता हुआ,
मुझको उठाकर नि शब्द दे देता हुआ---[1]

नयी कविता के अधिकाश कवियो की तरह बिम्ब रचना एवं प्रतीक योजना रघुवीर सहाय की काव्य रचना की विशिष्टता नही है। चूँकि रघुवीर सहाय सपाटबयानी के कवि रहे है, इसलिए वे बिम्बवादी नही है। यही कारण है कि रघुवीर सहाय "नयी कविता" के दौर मे रूढियो के शिकार नही होते है। सहाय जी नयी कविता की बिम्ब बहुलता की निरर्थकता को भलीभाँति समझते थे। उनका मानना था कि बिम्बों के कारण कविता मे वास्तविक यथार्थ की अभिव्यक्ति नही हो पाती है।

यह निश्चित है कि बिम्ब रचना रघुवीर सहाय की काव्य भाषा का कोई मौलिक उद्देश्य नही रहा है। बिम्ब के प्रति उनकी अरूचि ही दिखाई पड़ती है, लेकिन यह भी निश्चित है कि रघुवीर सहाय के काव्य सृजन मे बिम्ब अनायास ही प्रवेश करते गये है।

रघुवीर सहाय यह स्वीकार करते है कि कविता मे बिम्ब अपने आप मे कोई उद्देश्य नही है। वह कविता मे जीवनानुभव को रचनात्मकता और मूर्तिमत्ता में सप्रेषित करने का मात्र उपकरण ही है। अपनी बिल्कुल आरम्भिक दौर की कविताओ में रघुवीर सहाय ने जीवन्त गत्यात्मक बिम्बो की सृष्टि की है, जिसमे कि एक विशेष प्रकार की क्रीड़ावृत्ति भी है जैसा कि–

"दूर क्षितिज पर महुओ की दीवार खडी है
जिस पर चढकर सूरज का शैतान छोकरा
झाँक रहा है

---

1 आत्म हत्या के विरूद्व–रघुवीर सहाय, पृ0स040–41

चौडे चिकने पत्तो की ललछौर
फुनगियो को सरकाकर
नीडो मे फिर लौटी, मँडराती, पिडकुलियाँ"---[1]

रघुवीर सहाय की इस कविता मे प्रकृति के सम्पूर्ण बिम्ब मोजूद है, जिसमे गन्ध, गति, वर्ण, स्पर्श एव ध्वनि बिम्बो की व्यक्त और अव्यक्त रूप मे योजना है। "महुआ" अव्यक्त रूप मे अपनी सुगन्धी को, "चिकन पत्तों" मे स्पर्श बिम्ब, ललछौर फनगियो मे वर्ण बिम्ब, झाँक रहा है, "मँडराना" तथा "लौटना" मे "गति" बिम्ब है। इसके अतिरिक्त "नीड़ो मे फिर लौटी, मँडराती पिड़कुलियाँ" मे ध्वनि बिम्ब अनभिव्यक्त होते हुए भी व्यक्त हो जाता है।

इस प्रकार न चाहते हुए भी रघुवीर सहाय की कविताओं मे सभी बिम्ब सम्यक् रूप से मोजूद है। लेकिन ये सभी बिम्ब रघुवीर सहाय की प्रारम्भिक कविताओ मे सर्वाधिक है, लेकिन क्रमश जब रघुवीर सहाय की अनुभूति अधिक सघन और यथार्थ होती गयी है, तो उनकी कविता मे बिम्ब भी क्रमश कम होते गये है।

उनकी "दूसरे सप्तक" मे छपी कविताओ एव "सीढियो पर धूप में" की कविताओ मे जिस प्रकार बिम्बो की झलक प्राप्त होती है, वह परवर्ती सग्रहो "आत्म हत्या के विरूद्व", या, "हँसो-हँसो जल्दी हँसो" एव लोग भूल गये है या "कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ" आदि मे नही उपलब्ध है। इसका कारण यह है कि रघुवीर सहाय बिल्कुल यथार्थ से जुडे रहने वाले कवि रहे है, और उनकी बाद की रचनाओ मे उनकी यथार्थवादी प्रवृत्ति अधिक सबल होती गयी है, जिससे उन कविताओ मे बिम्बो की कमी होती गयी है।

---

1 दूसरा सप्तक- स0 अज्ञेय, पृ0स0 159

रघुवीर सहाय यथार्थ के कवि है– केवल यथार्थ के। उनकी आरम्भिक कविताए जीवन–यथार्थ से शुरू होती हैं, लेकिन एक सुन्दर बिम्ब तक पहुँच जाती है–

"अब शीतल जल की चिन्ता मे
लगती बहुओ की भीड़ कूए पर
मँजी गगरियो पर से किरणे घूम–घूम
छिपती जाती पनिहारिन के
सॉवल हाथो की चूडियो मे
धीरे–धीरे झुकता जाता है शरमाये नयनो सा दिन"———[1]

इस कविता में कवि ने कई चित्र एक साथ दिये है– "मँजी गगरियों", "किरणें छिपती–जाती, सॉवले हाथो की चूडियो तक। इसमे गत्यात्मक बिम्ब है। किरणो की गगरियो से चूडियो तक की यात्रा को कवि नापता है, किरणों का सुनहलापन भी कवि बिम्बित करता है इसलिए वर्ण बिम्ब भी है।

रघुवीर सहाय की कल्पना निराला व अज्ञेय की तरह लघु से आरम्भ करके प्रकृति के विराट् तक सहज ही पहुँच जाती है। धीरे–धीरे ढलते हुए दिन को चित्राकित कर देती है। सहाय इन पंक्तियो मे वर्णन से शब्दार्थक तथा उससे आगे बिम्बो तक पहुँच जाते है।

"दूसरा सप्तक" और "सीढ़ियो पर धूप में" की बहुत सारी कविताओ मे रघुवीर सहाय का झुकाव वर्णन से बिम्ब की ओर ही है।

---

1 दूसरा सप्तक– स0 अज्ञेय, पृ0स0 160

"ठेलो की खड़खडाहट दूध वालों के खनकते बर्तन
जल्दी चलते हुए चप्पल के हकलाने से
शब्द पास आते है, और दूर चले जाते है"---[1]

इन पंक्तियो मे प्रात काल का बिम्ब ध्वनियो के सहारे प्रस्तुत है, यहाँ पर वर्णन एव बिम्ब का अन्तर समाप्त हो जाता है। इस प्रकार रघुवीर सहाय अपनी भाषा के रचाव मे वर्णन एव बिम्ब के भेद को क्रमश मिटाया है। वे सभी कविताए चाहे राजनीति के अनुभव क्षेत्र से सम्बद्ध हो या कि प्रेम के अनुभव क्षेत्र से, या वे प्रकृति के मानवीय चित्र हों, उनकी कविताओ मे वर्णन एव बिम्ब का अभेद कैसे सभव होता है– इसका सफल उदाहरण "आत्म हत्या के विरूद्ध" की निम्न पक्तियो में मौजूद है–

"सिहासन ऊँचा है सभाध्यक्ष छोटा है
अगणित पिताओ के
एक परिवार के
मुँह बाये बैठे है लड़के सरकार के
लूले काने बहरे विविध प्रकार के
हल्की सी दुर्गन्ध से भर गया है सभाकक्ष"---[2]

"मुँह बाये, लूले, काने, बहरे, हल्की सी दुर्गन्ध मे "गन्ध बिम्ब है–"इसी प्रकार –

"एक गरीबी, ऊबी, पीली रोशनी, बीवी
रोशनी, धुन्ध, जाला, यमन, हरमुनियम अदृश्य

---

1 दूसरा सप्तक– स0 अज्ञेय, पृ0स0 157

2 आत्म हत्या के विरूद्ध– रघुवीर सहाय, पृ0स0 18

डब्बा बन्द शोर
गाती गला भीच आकाशवाणी
अन्त मे टडग"---[1]

इस प्रकार इन दोनो उदाहरणो मे से पहले उदाहरण मे किसी सामान्य सभाकक्ष का वर्णन भी है और किसी विशिष्ट सभाकक्ष का बिम्ब भी है। दूसरे उदाहरण मे हम यह देखते हे कि वर्णन बिम्ब मे निम्न मध्यवर्गीय गृहस्थ जीवन का चित्र है, जो रघुवीर सहाय की कविताओ मे गति बिम्ब ही सर्वाधिक है, और यथार्थ जीवन के बिम्ब भी स्वत उपलब्ध है - जैसा कि-

पॉच दल आपस मे समझौता किये हुए
बडे-बड़े लटके हुए स्तन हिलाते हुए
जॉघ ठोक एक बहुत दूर देश की विदेश नीति पर
हौकते डौकते मुँह नोच लेते है
अपने मतदाता का"---[2]

रघुवीर सहाय अपने आगे की रचनाओ मे बिल्कुल यथार्थवादी बिम्बो का सहारा लिया है। जिससे उनकी कविताओ मे जीवन की सहजता, मौलिकता एव समाज का जीता-जागता चित्र प्रकट होता है- इसके अतिरिक्त इन यथार्थवादी बिम्बो के सहारे रघुवीर सहाय समाज के शोषक वर्ग पर एक तीव्र प्रहार भी करते है- जैसा कि-

सेना का नाम सुन देश प्रेम के मारे
मेजे बजाते है
सभासद भद-भद-भद कोई नहीं हो सकती
राष्ट्र की

---

1 आत्म हत्या के विरूद्व- रघुवीर सहाय, पृ0स0 84

2 वही पृ0स0 29-30

> ससद एक मन्दिर है जहाँ किसी को द्रोही कहा नही
> जा सकता।
> दूध पिये मुँह पोछे आ बैठे जीवनदानी गोद
> दानी सदस्य तोद सम्मुख धर"---[1]

अपने बाद के काव्य सग्रहो मे सहाय ने पूर्णतया यथार्थवादी बिम्बो के द्वारा ही यथार्थ की पथरीली सतह को खोलने का प्रयास किया है। उनके यथार्थवादी बिम्ब औरतो की दुर्दशा से सम्बद्व बहुत सारी कविताओ मे उपलब्ध है- जैसा कि-

> "उसके पतले अधर, बडी-बडी आँखे,
> पलकें महीन, दाँत भिचे हुए है
> जो खुलें तो चेहरे का चरित्र कौध जाय
> उगलियाँ रोज के काम काज से घिसी
> हरी-हरी चूड़ियाँ
> अब हकीम चेहरे को देखकर पाता है
> यौवन के बाद के बरस जी उठे है रोगी के मुख पर
> औरत अधेड हो गयी है, हकीम चुप-
> अचरज से नही बल्कि आदर से"---[2]

बिम्ब की तरह ही प्रतीक भी काव्य भाषा के लिए आवश्यक है। प्रतीक भी मूलत पश्चिम की देन है। साहित्य मे प्रतीक अभिव्यजना की एक सशक्त पद्वति माना गया है, प्रतीक के प्रयोग से साहित्य में कम से कम शब्दो के द्वारा अधिक वक्तव्य वस्तु को सर्वाधिक प्रभावशाली ढग से अभिव्यक्त किया जा सकता है-

---

1 आत्म हत्या के विरूद्व- रघुवीर सहाय, पृ0स0 28

2 कुछ पते कुद चिट्ठियाँ - रघुवीर सहाय, पृ0सं0 40

रघुवीर सहाय ने आवश्यकतानुसार प्रतीको का भी अपनी भाषा मे समावेश किया है। जीवन की स्वाभाविक स्थिति की तलाश करने के लिए रघुवीर सहाय ने प्रतीको का सहारा लिया है। रघुवीर सहाय सदैव जीवन को स्वाभाविकता मे पाना चाहते है–

"आज फिर शुरू हुआ जीवन
आज मेने एक छोटी सी सरल कविता पढ़ी
आज मैने सूरज को डूबते हुए देर तक देखा
जी भर आज मैने शीतल जल से स्नान किया
आज एक छोटी सी बच्ची आयी किलक मेरे कन्धे चढी
आज मैने आदि से अन्त तक एक पूरा गान किया
आज फिर शुरू हुआ जीवन"---[1]

जीवन की जिस स्वाभाविक रचनात्मक स्थितियो की खोज के द्वारा कविता सभव की गयी है, उससे साधारण जीवन मे "नया रस" तथा "नया महत्त्वबोध" उत्पन्न होता है।

दूसरा सप्तक की अधिकाश कविताओ मे रघुवीर सहाय ने जीवन की स्वाभाविकता और साधारणता के बहुत सारे चित्र उभारे है। "सीढ़ियो पर धूप में" सग्रह की बौर, आओ नहाए, जभी पानी बरसता है। रूमाल, तथा पानी, शीर्षक कविताए अत्यन्त महत्तवपूर्ण हैं। बौर कविता के अन्तर्गत कवि एक विशेष प्रकार के सुख की प्राप्ति करता है–

"नीम मे बौर आया
इसकी एक सहज गन्ध होती हे
मन को खोल देती है गन्ध वह
जब मति मन्द होती है
प्राणो ने एक ओर सुख का परिचय पाया"---[2]

---

1 सीढियो पर धूप मे– रघुवीर सहाय, पृ0स0 165

2 वही पृ0स0 104

इन कविताओ की सबसे उल्लेखनीय विशेषता यह है कि चाहे तो कोई"पानी, नीम, तथा रूमाल, को प्रतीक के रूप मे भले ही ग्रहण करे, लेकिन कविता मे इसका बिल्कुल आग्रह नही है, बल्कि प्रतीक हुए बगैर कविता नये सन्दर्भो मे ज्यादा अर्थपूर्ण है। कदम-कदम पर प्रतीक अन्वेषक, पाठक या आलोचक का रघुवीर सहाय ने विरोध भी किया है।

यही कारण है कि रघुवीर सहाय स्वय अपने पाठको को सम्बोधित करते हुए एक कविता मे यह बयान दिया है कि-

"प्रिय पाठक
ये मेरे बच्चे है
कोई प्रतीक नही
और इस कविता मे
मै हूँ मै
कोई रूपक नही"---[1]

इतना ही नही, एक परस्पर बातचीत मे जब मगलेश डबराल ने "रचना वृक्ष" कविता मे वृक्ष को कवि का प्रतीक माना, तो उनकी अस्वीकृति मे रघुवीर सहाय ने तुरन्त ही कहा है कि- "आप वृक्ष समझे कवि को या जड समझें, मेरी बला से, --- अगर मै किसी वस्तु को वस्तु रहने से वचित करता हूँ तो मै बहुत घटिया कवि हूँ"---[2]

रघुवीर सहाय ने जिस प्रकार बिम्बो को अपनी काव्य भाषा में प्रयुक्त करने का कोई प्रयास नही किया है, वे स्वत आये है,उसी प्रकार प्रतीकों को काव्य

---

1 "आत्म हत्या के विरूद्व"- रघुवीर सहाय, पृ०स० 75

2 लिखने का कारण- रघुवीर सहाय, पृ०स० 167

भाषा मे समावेशित करना उनका अपना कोई लक्ष्य नही रहा है– उनका कहना है कि– "प्रतीक कवि की अभिव्यक्ति क्षमता की दयनीयता प्रकट करता है"---[1]

एक प्रकार से "नयी कविता के कवियो ने सब तरह के प्रतीको का इस्तेमाल किया है। काव्य, नाटको तथा खण्ड काव्यो मे पौराणिक और ऐतिहासिक प्रतीको का भी प्रयोग हुआ है। लेकिन रघुवीर सहाय अपनी कविताओ मे सम्प्रेषण के इस माध्यम का बहुत कम प्रयोग किया है, क्योंकि प्रतीक के माध्यम स्वाभाविक अनुभव या वस्तुए अपनी सम्पूर्ण शक्ति के साथ कविता मे निरावरण होकर ही प्रकट होती है। प्रतीको को अपनी कविता मे अभिव्यक्त करने की कोशिश रघुवीर सहाय ने नही की है, अपितु जीवन की स्वाभाविकता को प्रकट करते समय इन प्रतीकों को एक सहारा के रूप मे देखते है।

इस प्रकार बिम्ब हो या प्रतीक, रघुवीर सहाय इन्हे कोई उद्देश्य बनाकर अपनी कविताओ मे प्रस्तुत करने का प्रयास नही किया है, अपितु ये बिम्ब और प्रतीक जीवन की स्वाभाविकता को प्रकट करने के लिए स्वत ही रघुवीर सहाय की कविताओ मे आते गये है।

आरम्भिक कविताओ मे प्रकृति से सम्बन्धित बिम्ब एव प्रतीको से उन्होने जीवन की सहज अभिव्यक्ति प्रकट करने की कोशिश की है, लेकिन बाद मे उनके काव्य सग्रहो की कविताओ मे यथार्थ से जुडे बिम्ब ही प्रकट होते गये है।

---

1 लिखने का कारण– रघुवीर सहाय, पृ0स0 168

अपनी आरम्भिक कविताओ मे सहाय ने बिम्ब एव प्रतीक को एक साथ प्रकट करते हुए, प्रकृति के अवयवो का सहारा लिया है, जिनमे कि जीवन की एक सहज प्रस्तुति प्राप्त होती है– जैसा कि–

"कौध । दूर घोर वन मे मूसलाधार वृष्टि
दुपहर घना ताल ऊपर झुकी आम की डाल
बयार खिडकी पर खडे, आ गयी फुहार
रात उजली रेती की पार, सहसा दिखी
शान्त नदी गहरी
मन मे पानी के अनेक सस्मरण हैं।"[1]

रघुवीर सहाय की इस कविता "पानी के सस्मरण" मे जीवन के सस्मरण व्याप्त हैं। अपनी सम्पूर्णता मे स्मृति सवेद्य बिम्ब उकेरती हुई रघुवीर सहाय की यह कविता अपनी सरचना के भीतरी स्तरो पर स्थिर तथा गत्यात्मक दृश्य बिम्ब भी प्रस्तुत करती है।

---

1 सीढियो पर धूप मे- रघुवीर सहाय, पृ0स0 101

§4§ भाषा की शाब्दिक संरचना. अंग्रेजी, संस्कृत, उर्दू, तद्भव, देशज, तत्सम आदि

रघुवीर सहाय की काव्य भाषा की शाब्दिक सरचना और बनावट ऐसी है जो कि हर तरह से कसी हुई एव यथार्थ की समुचित अभिव्यक्ति को प्रकट करती है। रघुवीर सहाय यद्यपि आवश्यकतानुसार ही अपने वाक्यो मे श्ब्दो का प्रयोग किया है। लेकिन शब्दो के बावजूद भी रघुवीर सहाय एक मितभाषी कवि रहे है। रघुवीर सहाय की मितभाषिता अपने समकालीन केदारनाथ सिंह से बिल्कुल भिन्न है। यह निश्चित है कि मितव्ययिता और अपव्ययिता शब्द सख्या से तय नही होती है। रघुवीर सहाय की भाषा मे पर्याप्त शब्द हैं, और उन्होने अपनी भाषा मे लम्बे लम्बे वाक्यो को प्रयुक्त किया है। लेकिन यह निश्चित है कि मितव्ययिता और अपव्ययिता शब्द और अर्थ के अनुपात से निर्धारित होती है, और रघुवीर सहाय किसी भी स्थिति मे अपनी भाषा मे बोलचाल के शब्दों का अपव्यय नही करते। इसका एक सफल उदाहरण उनके द्वारा मामूली से लगते अव्ययो का प्रयोग है। हिन्दी के सबसे अधिक प्रचलित, तिरस्कृत उपेक्षित अव्यय "समुच्चय बोधक "और" का इतना रचनात्मक प्रयोग अन्य जगहो पर मिलना कठिन है, और शब्द की अर्थ छायाओ का विकास रघुवीर सहाय ने आगे चलकर भी किया है जिसे नयी कविता के कुछ कवियो ने अपने-अपने ढग से दुहराया है। सबसे बडी बात तो यह है कि बोलचाल के सीधे से वर्णन मे सहाय अपनी पूरी अनुभूति प्रकट कर देते है-

"खुशियो की एक दुनिया एक घडी की तरह जा रही है
बेबस जिन्दगी मे - टिक-टिक है
हम सब पचास के हो गये एक दूसरे का मुँह ताकते खड़े है
हम बचे हुए हैं और इस पर हमे गर्व है कि
कोई डर नही है
जिससे डर था उससे दोस्ती कर ली है

लोग देखते है कितना सुरक्षित हैं
और सडक पर एक हथियार बन्द के हाथो लुटते हुए
मुँह से आवाज नही निकलती
क्योंकि वह कह चुका है कि कोई सुनेगा नहीं"---[1]

एक साधारण सा अव्यय "बल्कि" भी सहाय की काव्य भाषा को सघन बनाने मे सफल योगदान देता है। मामूली शब्द और मामूली अनुभव मे एक नयी शक्ति सक्रिय कर देना यदि नयी कविता की पहचान बनी है, तो इसका बहुत कुछ श्रेय रघुवीर सहाय को ही है। जो शब्द रूप की दृष्टि से अव्यय कहे जाते है, उन्हे अर्थ की दृष्टि से अव्यय बना देना रघुवीर सहाय की गहरी रचना सामर्थ्य का ही द्योतक है-

"बन्धु हम दोनो थके है
और थकते ही रहे तो साथ चलते भी रहेंगे
वह नही है साथ जिसमे तुम थको तो हम तुम्हे लादे फिरे
और हम थके तो दम तुम्हारा फूल जाय-हाय"---[2]

अव्यय का एक और रचनात्मक प्रयोग इस प्रकार है-

"कितने सही है ये गुलाब
कुछ कसे हुए और कुछ झरने-झरने को
और हल्की सी हवा मे और भी जोखम से
निखर गया है उनका रूप जो झरने को है"---[3]

---

1 लोग भूल गये है- रघुवीर सहाय, पृ0स0 60

2 सीढियो पर धूप मे- रघुवीर सहाय, पृ0स0 151

3 वही पृ0स0 168

रघुवीर सहाय ने अपनी भाषा मे ही, भी, जो, जैसे अव्ययो का भी अधिक प्रयोग किया है जिससे भाषा शिथिल बन जाती है, लेकिन भाषा के अर्थ एव बनावट पर कोई प्रभाव नही पडता।

रघुवीर सहाय की भाषा मे अग्रेजी के पर्याप्त शब्द मिलते है– जैसे– डिसमिस, इडियट, रिजर्व, माडर्न, सोसायटी, थैक यू आदि अंग्रेजी के शब्द उनकी भाषा को प्रभावशाली बनाते हैं।

लेकिन भारतीय सस्कृति एव मानव के प्रति अपनी अटूट आस्था– रखने के कारण, रघुवीर सहाय ने सस्कृत के शब्दो का भी प्रयोग किया है। निस्सग, घोष, भ्रष्टाचार, विद्रोह, अन्याय आदि शब्दो का प्रयोग सर्वाधिक प्राप्त होते है– उनके सस्कृतनिष्ठ शब्दो की भाषा का प्रयोग इस कविता मे विद्यमान है–

"तू हत विक्रम श्रमहीन दीन
निज तनके आलम से मलीन
माना यह कुण्ठा है युगीन
पर तेरा कोई धर्म नही"?———[1]

रघुवीर सहाय लखनऊ मे पले और बढ़े थे। अत उनके काव्य मे उर्दू शब्दो के प्रयोग का विशेष आग्रह दिखाई देता है– हिन्दी को उर्दू के निकट लाने में उनकी रचनाएं बहुत सार्थक सिद्व हुईं। शमशेर बहादुर सिह की उर्दू पाठावलि "दिनमान" मे रघुवीर सहाय के आग्रह पर ही छपी थी। सहाय ने प्रसगानुसार अपनी भाषा मे

---

1 सीढियो पर धूप मे– रघुवीर सहाय, पृ0स0–135

अनेकानेक उर्दू के शब्दो का प्रयोग किया है। मुजरिम, तरक्की, मुफीद, मुल्क, मदरसा, नसीब, जहन्नुम, सलाम, ताज्जुब, फकत, तकाजा, फिलहाल, शोहदा, मर्द, तदबीर, नफरत, फरमाइशी, बख्शे आदि उर्दू के शब्द इनकी भाषा को प्रभावशाली बनाते है– जैसा कि–

"एक मेरी मुश्किल है जनता
जिससे मुझे नफरत है सच्ची और निस्सग
जिस पर कि मेरा क्रोध बार–बार न्योछावर होता है"---[1]

इस कविता मे "नफरत" जैसे उर्दू शब्द को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।

रघुवीर सहाय की गद्य रचनाओ मे भी भाषा मे प्रयुक्त उर्दू शब्द, भाषा को प्रभावशाली बनाते है–

"ताज्जुब है कि अभी तक समाचारो पर नियत्रण रखने वाले किसी सुरक्षा तन्त्र ने लेखको को यह सलाह क्यो नही दी कि वे इस शब्द को बदल देने जैसी एहतियाती कार्रवाई तो कर सकते है, मगर उसकी मुश्किल यह हे कि हत्या का वही अर्थ देने वाला कोई दूसरा शब्द भाषा में है ही नही।"---[2]

रघुवीर सहाय ठोस यथार्थ के कवि थे। यथार्थ को व्यक्त करने के लिए उन्होने तद्भव एव देशज शब्दों का प्रयोग अधिक किया है। विनसता, दरद, दुवारे, वरजा, कायथ, भरमे, देउता, अच्छत, थुलथुल, अचरज, पलेटफारम, अनगिनत, बाम्हन, आदि तद्भव शब्दो के द्वारा, उन्होने जीवन के सच्चे यथार्थ को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है–

---

1 आत्म हत्या के विरूद्व– रघुवीर सहाय, पृ0स0 15

2 अर्थात– रघुवीर सहाय, पृ0स0 179

"मक्खन लो रोटी लो
चलो वहाँ हो आयें
सस्कृति की गुदगुदी, करूणा की झुरझुरी बहस की भुखमरी
ले आये बहस–तहस–नहस दूब हल्दी अच्छत
देख आये देवी–देउता का ठाँव पानी बिना सूना"–––[1]

इन पंक्तियो मे प्रयुक्त अच्छत और देउता जैसे तद्भव शब्द भाषा को प्रभावशाली बनाते है। इसी प्रकार–

"हो सकता है कि लोग–लोग मार तमाम लोग
जिनसे मुझे नफरत है मिल जाये, अहकारी
शासन को बदलने के बदले अपने को
बदलने लगें और मेरी कविता की नकले
अकविता जाये। बनिया–बनिया रहे
बाम्हन–बाम्हन और कायथ–कायथ रहे"–––[2]

इन पंक्तियों मे भी बाम्हन और कायथ जैसे तद्भव शब्दों के द्वारा भाषा को एक शक्ति प्राप्त होती है।

अपनी भाषा के माध्यम से सच्चे यथार्थ को व्यक्त करने के उद्देश्य से ही रघुवीर सहाय ने देशज शब्दो का धडल्ले के साथ प्रयोग किया है।

अरझने, झरसौही, मह, पपडियाई, फुँफदियायी, बजबजायी, छटकी, रिरियाता, लिसलिसाता, घूर, सुथन्ना, पटिया, गदराती, गुदगुदी, झुरझुरी, छितरा, पिंपियाता, अखुआ, ऊदबदा आदि देशज शब्द रघुवीर सहाय की भाषा को प्रभावशाली एव सच्चे यथार्थ की अभिव्यक्ति मे सहायता प्रदान करते है–
जैसा कि–

हिलती हुई मुँडेरे है और चटखे हुए है पुल
बररे हुए दरवाजे हे और धँसते हुए चबूतरे
दुनिया एक चुरमुराई हुई सी चीज हो गयी है
दुनिया एक पपडियाई हुई सी चीज हो गयी है"–––[3]

---

1 आत्महत्या के विरूद्ध– रघुवीर सहाय, पृ0स0 23

इन पाक्तियो मे स्पष्ट रूप से तत्सम शब्द मौजूद है। इसके अतिरिक्त–

"सफल था उनका जीवन सबका एक लक्ष्य था
सबकी एक सी गन्ध सबमे एक सा प्रतिवाद
भ्रष्टाचार से
एक सा आत्माभिमान सबमे न कम न ज्यादा
सब खुश और समझदारी से दमदमाते हुए सबके
मुँह पर एक–सा तेल"---[1]

कविता की पक्तियो मे प्रयुक्त प्रतिवाद, एव आत्माभिमान जैसे तत्सम शब्द भाषा को प्रभावशाी बनाते है।

इसके अतिरिक्त बग्ला भाषा का भी ज्ञान होने के कारण रघुवीर सहाय की रचनाओ मे यत्र–तत्र बग्ला के शब्द भी मिलते है। इसके अतिरिक्त सहाय जी अवध प्रान्त के थे। उनकी काव्य–भाषा जहॉ बोलचाल के करीब है, वही पर उसमे कई बार अवधी के शब्द भी नि सकोच आये है, जो कि किसी फैशन नही, अपितु जमीन से जुडने का सहज प्रतिफल है।

अपनी कविताओ मे रघुवीर सहाय ने यथार्थ की परिपुष्टि करने के लिए मुहावरो का भी प्रयोग किया है। उनके मुहावरे काव्य एव गद्य दोनो क्षेत्रों मे सहज मानव जीवन और स्थितियो से जुडे प्रतीत होते है। सहाय ने आवश्यकतानुसार हिन्दी और उर्दू दोनो मुहावरो का प्रयोग करते हैं। ठिठक खड़े थे, हम वह क्षण था, तीर की तरह निकल गया वह– सोलह सेर वाले दिन, हर एक तो कपडो के नीचे नगा है, हमारी हिन्दी एक दुहाजू की नयी बीबी है, कन्धे उचकाना, पीठ ठोकना, जैसे यथार्थ को प्रस्तुत करने वाले एव व्यग्यात्मक मुहावरो तथा कहावतो का प्रयोग रघुवीर सहाय की रचनाओ मे प्राप्त होता है। जैसा कि–

---

1 आत्महत्या के विरूद्व– रघुवीर सहाय, पृ0सं0 57

"हमारी हिन्दी एक दुहाजू की नयी बीबी है
बहुत बोलने वाली बहुत खाने वाली बहुत सोने वाली
गहने गढ़ाते जाओ
सर पर चढाते जाओ
बहुत मुटाती जाये
पसीने से गन्धाती जाये घर का माल मैके पहुँचाती जाये"---[1]

नि सदेह यह माना जाता है कि सामान्य बोलचाल की भाषा का विवेचन करते समय शिष्ट उच्चारण का सही मूल्याकन हो और बोलते समय यह अनुमान लगाया जा सके कि वक्ता भाषा के किस प्रदेश से सम्बन्धित है। इसी प्रकार की कसोटी रघुवीर सहाय अपनी बोलचाल की भाषा के सम्बन्ध मे स्वीकार करते है। बोलचाल की भी अनेक शैलियाँ होती है। पुराने नामो के साथ यदि हम विवेचन करते हैं तो पण्डिताऊ शैली, मुशी शैली, बाजारू शैली आदि। लेकिन यदि हम यह मानते है कि बोलचाल केवल वही परिनिष्ठत है, जिसके बोलने वाले या लिखने वाले के क्षेत्र या वर्ग ज्ञात न हो सके, तो निश्चय ही हम वस्तुस्थिति से दूर नही हो सकेगे। इस दृष्टिकोण से समकालीन कविता मे रघुवीर सहाय को एक आदर्श माना जा सकता है, जहाँ पर तद्‌भवता और देसीपन न किसी प्रतिक्रिया मे है, और न किसी आवेश मे। वह केवल है और उसका होना अपने मे पर्याप्त है।

---

1 आत्म हत्या के विरूद्ध– रघुवीर सहाय, पृ0स0 70

छन्द, लयात्मकता, संगीतात्मकता

निश्चय ही रघुवीर सहाय की रचना प्रक्रिया छन्द विरोधी नही है। रघुवीर सहाय ने "हँसो–हँसो जल्दी हँसो" पुस्तक मे उसकी पहली कविता "हा हा हा" की स्वर लिपि भी दी है।

"आत्म हत्या के विरूद्व" संग्रह के अन्त मे भी "मैदान में" शीर्षक कविता को स्वर लिपि दी है।

इस प्रकार रघुवीर सहाय की यह अपनी मान्यता रही है कि "नये काव्य के लिए एक नयी सगीतात्मक "आधुनिक सवेदना" का एक आवश्यक अग है"___[1]

वर्णिक या मात्रिक जैसी परम्परित छन्द रचना की अनुपस्थिति के बावजूद रघुवीर सहाय की कविताओ मे अनिवार्य लय की छन्दात्मकता है। यह लयोत्पन्न छन्दात्मकता आरम्भ से ही रघुवीर सहाय की कविता की शिल्प सरचना के केन्द्र मे रही है। लिखना उन्होने छन्द मे आरम्भ किया था, लेकिन उसके लगभग दो साल बाद ही जनवरी 1948 को उन्होने मुक्त छन्द की कविता लिखी –"नया वर्ष"। 30 अगस्त 1947 को उन्होने एक कविता लिखी थी– "जिज्ञासा"। रघुवीर सहाय ने अपनी आरम्भिक डायरी में इस कविता के बगल मे हाशिये मे एक तरफ यह लिखा है कि उस कविता को लक्ष्य करके माथुर ने रघुवीर सहाय को मुक्त छन्द लिखने की जल्दी आशा व्यक्त की थी। सहाय इसी बीच बहुत सारी कविताए लिख ली थी। जिसमे छन्द के नये प्रयोग नही है। लेकिन पाँचवे दशक के अन्त मे इनकी कविता

---

1 आत्म हत्या के विरूद्व – रघुवीर सहाय, पृ0स0 7

मे छन्द तथा लयात्मकता के बहुत से प्रयोग मिराते है। इसी के दौरान सहाय अपनी भाषा मे विशेष प्रकार की लयात्मकता का भी सृजन करते है– उनका कहना है कि "प्रतीक, बिम्ब, उपमा, रूपक आदि जो वास्तव मे मानव सम्बन्धो के चिन्ह है, छन्द के बन्धनो के साथ पहले से बँधे चले आये हैं और अब छन्द के बन्धनो को निरे शिल्प की तरह स्वीकार करना दुष्कर हो गया है– उनको बरतने के साथ वे मानव मूल्य भी स्वीकार करने का खतरा मोल लेना पडता है जो कवि के अभीष्ट नही है। जब महाकवि ने छन्द के बन्धन तोड़ने की पुकार दी थी तो वह यह रहस्य सूत्र रूप मे जानते होंगे"---[1]

यही कारण है कि रघुवीर सहाय ने किसी भी छन्द के बन्धन में पडने की कोशिश नही की है, अपितु उनका प्रयास मुक्त छन्द मे ही रचना करना है, जिसमे आवश्यक लय एवं सगीतात्मक भी विद्यमान रहती है।

आत्महत्या के विरूद्व की "नया शब्द" कविता मे इसी बात को लक्ष्य करके रघुवीर सहाय ने प्रतिपादित किया है कि–

शब्द अब भी चाहता हूँ
पर वह कि जो जाये वहाँ–वहाँ होता हुआ
तुम तक पहुँचे
चीजो के आर–पार दो अर्थ मिलाकर सिर्फ एक
स्वच्छन्द अर्थ दे
मुझे दे। देता रहा है जैसे छन्द केवल छन्द
घुमड–घुमडकर भाषा का भास देता हुआ
मुझको उठाकर नि शब्द दे देता हुआ"--- [2]

---

1 अर्थात्– रघुवीर सहाय, पृ0स0 220

2 आत्म हत्या के विरूद्व– रघुवीर सहाय, पृ0स0 40–41

रघुवीर सहाय का प्रयास एक नये छन्द की खोज की तरफ ही रहा है जिसमे कि जीवन का यथार्थ प्रतिबिम्बित हो सके– जैसा कि– "पुराने कवि कहते थे "कविता बन पड़ी है, या वह प्रचलित और बहुधा साहित्येतर कारणो से किसी समय लोकप्रिय छन्दो मे आश्रय लेकर सन्तुष्ट है। पर यदि वह छन्द के साथ सचमुच रचनात्मक रिश्ता बनाना चाहता है और सचमुच बडा कवि होने का दम्भ करके बैठा नही रहता। बल्कि छन्द की प्रबल शक्ति के सामने अपनी नगण्यता पहचानता है तो उसे नया छन्द खोजना होगा– वह "गद्य' मे मिलेगा या पद्य मे, यह निरा किताबी सवाल है, मगर उसका कवि जानता है कि नये नैतिक मानव सम्बन्ध मे मिलेगा"---[1]

इस प्रकार रघुवीर सहाय ने अपनी कविताओ मे किसी छन्द विशेष के बन्धन मे बिना पडे ही, अपनी रचना को आगे बढाया है।

रघुवीर सहाय की काव्य भाषा मे जो लयात्मकता उपलब्ध है, वह उनके समकालीन अन्य की तुलना मे कुछ भिन्न है। सहाय की भाषा में लयात्मकता के साथ–साथ भाषा भी उतनी ही मुखर हो जाती है। उनकी भाषा मे सगीत की लय और बात की लय एक दूसरे से विपरीत चलती है। सगीत संघात के साथ चलता है और भाषा चिन्तन की लय मे, जो कि एक प्रकार से विपरीत युग्म है– जैसा कि–

"कुछ होगा, कुछ होगा अगर मै बोलूँगा
न टूटे– न टूटे तिलिस्म सत्ता का मेरे अन्दर एक
कायर टूटेगा टूट
मेरे मन टूट एक बार सही तरह
अच्छी तरह टूट मत झूठ–मूठ ऊब मत रूठ

---

1 अर्थात– रघुवीर सहाय, पृ0स0 –220–21

मत डूब सिर्फ टूट जैसे कि परसो के बाद
वह आया बैठ गया आदतन एक बहस छेडकर
गया एकाएक बाहर जोरो से एक नकली दरवाजा
भेडकर"---[1]

इस प्रकार "टूट" शब्द मे सगीत तत्व की सृष्टि हो रही है, जिससे कि भाषा मे लयात्मक भाव स्वत उभरता है। रघुवीर सहाय की "आत्म हत्या के विरूद्व" की यह लय "हँसो-हँसो जल्दी हँसो- मे करूणा, साहस, भय और आतक के साथ मिलकर एक अलग रूप ग्रहण कर लेती है-

"एक दिन इसी तरह आयेगा-रमेश
कि किसी की कोई राय न रह जायेगी -रमेश
क्रोध होगा- पर विरोध न होगा
अर्जियो के सिवाय-रमेश
खतरा होगा- खतरे की घटी होगी
और उसे बादशाह बजायेगा-रमेश"---[2]

खतरे की ऐसी घटी आपातकाल मे बजी थी। रघुवीर सहाय ने सकट की ऐसी घडी के लिए भाषा की खास मुद्रा और कविता के लिए कुछ नयी शैलियो का भी आविष्कार किया था। यह सकट की ऐसी भाषा है जो अपने तहो को छिपाकर ही अधिक से अधिक खोलती है।

प्रस्तुत उद्धरण में "रमेश" शब्द की आवृत्ति- अन्त मे रमेश शब्द का प्रयोग, डैश के बाद लयात्मकता के साथ-साथ झटका भी उत्पन्न करता है।

---

1 आत्म हत्या के विरूद्व- रघुवीर सहाय, पृ0स0 85

2 हँसो-हँसो जल्दी हँसो- रघुवीर सहाय, पृ0सं0 10

उन्होंने अपनी काव्य भाषा मे यथार्थ के समुचित चित्रण हेतु जिन शब्दो का प्रयोग किया है, उन शब्दो के द्वारा उनकी भाषा मे एक सगीतात्मक लय उत्पन्न होती है और यथार्थ की भी समुचित अभिव्यक्ति होती है–

"निकल गली से तब हत्यारा
आया उसने नाम पुकारा
हाथ तौलकर चाकू मारा
छूटा लोहू का फव्वारा
कहा नहीं था उसने आखिर उसकी हत्या होगी
भीड ठेलकर लौट गया वह
मरा पडा है रामदास यह
देखो–देखो बार–बार कह
लोग निडर उस जगह खडे रह
लगे बुलाने उन्हे जिन्हे सशय था हत्या होगी"---[1]

कविता की इन पंक्तियो मे स्पष्ट रूप से लयात्मक पुट व्याप्त है।

रघुवीर सहाय ने अपनी भाषा मे खडी बोली की अनेक लयो का इस्तेमाल किया है। इनकी भाषा की लयात्मकता और नाटकीयता पर विचार करने पर यह पता चलता है कि नागार्जुन के बाद रघुवीर सहाय में हमे भाषा की अनेक मुद्राए मिलती है। बोलचाल की नाटकीयता, वक्रता और लोच। नि सन्देह अपनी कविता की भाषा को, बातचीत के इतना करीब लाने मे रघुवीर सहाय के समान कोई और नही दिखाई देता है।

यह निश्चित है कि कभी–कभी जब बोलचाल की लय सामान्य से हटकर बहुत ज्यादा निजी होने लगती है जैसा कि–

---

1 हँसो–हँसो जल्दी हँसो– रघुवीर सहाय, पृ0स0 27–28

"लोग भूल गये है" सग्रह की कुछ कविताओ मे तो सामान्य आदमी को कुछ परेशानी होती है। ऐसी स्थिति मे शब्दो से परिचित होने के बावजूद भी लय की अतिनिजता एक विशेष प्रकार की रूकावट पैदा करती है। लेकिन आमतौर पर हमे रघुवीर सहाय की भाषा की लयात्मकता से यही ज्ञात होता है कि भाषा के विविध स्तरो का सही इस्तेमाल कैसे किया जाय–

> "लोग भूल गये है एक तरह के डर को जिसका कुछ उपाय था
> एक और तरह का डर अब वे जानते है जिसका
> कारण भी नही पता
> इसमे एक तरह की खुशी है
> जो एक नीरस जिन्दगी मे कोई सनसनी आने पर होती है
> कभी किसी को मौत की खबर सुनकर मुस्करा उठते हुए
> अनजाने मे देखा होगा"---[1]

हर वाक्य
रघुवीर सहाय की सफल कविताओ मे ' हर पंक्ति कविता लगती है। उनकी कविता मे कसी हुई और ठीक-ठीक शब्दों से गसी हुई भाषा का इस्तेमाल हुआ है, जिसमे लयात्मकता पूर्णरूप से व्याप्त है–

> "बडी किसी को लुभा रही थी
> चालिस के ऊपर की औरत
> घडी-घडी खिल खिला रही थी
> चालिस के ऊपर की औरत
> खडी अगर होती वह थककर
> चालिस के ऊपर की औरत
> ऐसे दया जगाती थी वह

---

1 लोग भूल गये हे- रघुवीर सहाय, पृ0स0 45

चालिस से ऊपर की औरत
वैसे काम जगाती शायद
चालिस के ऊपर की औरत"---[1]

निश्चय ही रघुवीर सहाय की कविता के सम्बन्ध मे बोलचाल की भाषा और लय वाली बात बिल्कुल जड जमा चुकी है। लेकिन यह भी देखकर आश्चर्य होता है कि उनकी अनेक श्रेष्ठ कविताए बहुत सारे पारम्परिक छन्दो के नये उपयोग से निर्मित है।

"आपकी हँसी" पानी, रामदास, एक दिन रेल मे, लुभाना, और कई इनके अलावा भी अचानक किसी पुरानी लय की अनुगूँज। सहाय की कविता मे भाषा के अनुरूप और कवि इच्छा के अनुसार लय के अनेक सस्मरण हे–

"नाटक शुरू होने के पहले सहसा मैने
पहचाना एक अधेड औरत का दर्द
वह मुझे घूरे जाती थी
क्या तुम मानोगी कि दुगुन मे बजतातबला
अश्लील है
अगर उस पर अपने को थिरकते देखो"---[2]

******

---

1 हँसो–हँसो जल्दी हँसो– रघुवीर सहाय, पृ0सं0 42

2 वही " पृ0सं0 44

उपसंहार

रघुवीर सहाय ने अपनी काव्य यात्रा का आरम्भ अपनी प्रथम काव्य रचना "आदिम–संगीत" शीर्षक से किया था, जो "आजकल" के अगस्त 1947 के अंक मे प्रकाशित हुई थी, लेकिन "दूसरा–सप्तक" मे प्रकाशित 14 (चौंदह) कविताओ ने हिन्दी काव्य–जगत में उनकी अलग पहचान बनायी थी। हालाँकि, सहाय की प्रारम्भिक कविताओ मे छायावादी काव्य की हल्की छाया विद्यमान है, लेकिन सामान्य जन की तकलीफो के प्रति गहरी संवेदनशीलता और सरोकार की चेतना इन कविताओं में विद्यमान है। अपने प्रथम काव्य–कहानी सग्रह सीढ़ियो पर धूप मे वे व्यक्त करते है–

"हमको तो अपने हक सबसे मिलने चाहिए
हम तो सारा का सारा लेंगे जीवन
कम से कम वाली बात न हमसे कहिए"

रघुवीर सहाय का रचना ससार बहुमुखी है। उन्होने कविता, कहानी, निबन्ध, आलेख आदि सभी विधाओं के अन्तर्गत अपनी रचना को आगे बढ़ाया है। सहाय केवल विधा की दृष्टि से बहुमुखी नहीं, अपितु अनुभूति के प्रसार की दृष्टि से भी हैं। अपने आस–पास के परिवेश में व्याप्त राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, अनाचार, शोषण, उत्पीड़न के सभी पक्षो तक उनकी दृष्टि गयी है।

उनकी रचनाओ को पढ़कर इस निष्कर्ष तक सहज ही पहुँचा जा सकता है कि राजनीतिक चेतना उनके काव्य का सर्वाधिक मुखर स्वर है, सहाय राजनीति तत्त्वों से सीधा साक्षात्कार करते है। वे स्वातन्त्र्योत्तर भारत मे व्याप्त आर्थिक, सामाजिक वैषम्य के मूल मे राजनीति और राजनेताओं को ही मानते हैं। राजनेताओं की साँठ–गाँठ पूँजीपतियो से, काले धन से एवं अपराधी तत्वों से है।

उत्पीड़न, अन्याय, गैर बराबरी एव पूँजीपतियो द्वारा असहाय जनता के शोषण को सहाय ने अपनी रचनाओ मे जिस रूप मे निरूपित करने का प्रयास

किया है, उससे उनकी चेतना एक दर्द भरी आवाज के रूप मे मुखरित होती है। लेकिन वे केवल उस दर्द को प्रकट करके या उससे केवल आम जनता को अवगत कराकर ही नही चुप रह जाते है, बल्कि उसके समूल नाश के लिए जनता को विद्रोह करने की प्रेरणा और शक्ति देते है। वे एक समाजवादी, जनवादी रचनाकार होने के साथ ही साथ एक सशक्त क्रान्तिकारी रचनाकार भी सिद्ध होते हैं।

उनकी रचनाओं मे अभिव्यक्त दर्द एव टीस इस ओर सकेत करता है कि केवल छूरी, गोली या तलवार से मारने पर ही किसी की हत्या नही होती है और ऐसा होने पर ही केवल उसे दर्द नहीं होता है, बल्कि जिस व्यक्ति को बिल्कुल लाचार बना दिया जाता है, जिसे अधिकृत रूप से अनधिकृत कर दिया जाता है तथा हर तरह से इतना प्रतिबन्धित कर दिया जाता है कि वह अपनी इच्छा से कुछ भी नहीं कर सकता। वह व्यक्ति बाहर से जीवित रहने पर भी भीतर से तुल्य ही हो जाता है।

एक सच्चा साहित्यकार अपनी रचनाओं के माध्यम से यथार्थ की इन ज्वलन्त विभीषिकाओ से साक्षात्कार कराता हुआ आगे बढ़ता है। रघुवीर सहाय ने इस तथ्य को अपनी रचनाओं मे पूर्णतया चरितार्थ करने का प्रयास किया है। उन्होने अपनी रचनाओं मे राजनीतिक सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक आदि सभी पहुलओं पर प्रकाश डालते हुए एक ज्वलन्त दस्तावेज प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। इसके अतिरिक्त हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में अवतरित होकर अपनी लौह लेखनी से प्रयोगवाद के अवसान एवं नयी कविता के आरम्भ मे मानवीय सवेदनाओं के आधार पर अपनी रचनाए प्रस्तुत कर उन्होंने वर्तमान हिन्दी-जगत को प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया है।

सहाय ने यह प्रकट करने की कोशिश की है कि तत्कालीन युग यथार्थ इतना जटिल और बदतर हो गया था कि उसे एक वैज्ञानिक दृष्टि के अभाव में समझा नही जा सकता था। एक तरफ जहाँ ससद पर तिरगे झण्डे का लहराना उत्साहवर्धक रहा है, वही पर दूसरी तरफ वास्तविक जीवन स्थितियो के और भी बदतर होते चले जाने का भी दृश्य उभरता हुआ दिखाई दे रहा था। लेकिन अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर द्वितीय विश्वयुद्व की समाप्ति एव राष्ट्रीय स्तर पर साम्राज्यवाद के अन्त का भ्रम तत्कालीन प्रयोगशील कवियो के मस्तिष्क में आशा और उत्साह से युक्त बदलाव लाने में बहुत सहायक सिद्व हुआ।

एक जनवादी एव समाजवादी कवि होने के कारण रघुवीर सहाय ने तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक ढाँचे को समझने का भरसक प्रयास किया है। उनके ऊपर पूर्णतया मार्क्सवादी प्रभाव था। इसलिए आजादी मिलने के बाद एवं भारत मे लोकतंत्र की स्थापना हो जाने के बाद उभरते हुए पूँजीवाद का सहाय ने जमकर विरोध किया साथ ही साथ पूँजीपतियो के प्रति अपनी कटुता भी प्रकट की है।

राम मनोहर लोहिया के शिष्यत्व में पले-बढ़े रघुवीर सहाय सदैव से समाजवाद के ही पोषक रहे हैं। उनकी यह मौलिक धारणा रही है कि पूँजीवाद से शोषण एव अन्याय को बढ़ावा मिलता है। केवल समाजवाद एवं साम्यवाद के द्वारा ही इस वैषम्य को दूर किया जा सकता है। उनका यह भी विचार रहा है कि देश आजाद भले हो गया हो, लेकिन वास्तविक आजादी का अनुभव तभी हो सकता है जब देश मे व्याप्त शोषण एव वैषम्य की स्थिति को पूर्णतया समाप्त किया जाय। वे एक स्वस्थ एव स्थायी जनतंत्र के समर्थक रहे हे। इसीलिए वे इस बात को प्रकट करने की कोशिश करते है कि संसद (जो लोकतत्र को कायम रखने की एक प्रतिनिधि सस्था है) आज हिन्दुस्तान मे अधिकांशत गैर जिम्मेदार और

भ्रष्ट प्रतिनिधियो से भर गयी है। इस सस्था में सर्वाधिक प्रतिनिधि शोषक–शासक दल के है, जिनके पूर्वाग्रहो और मूर्खताओं के बीच जनता के सही प्रतिनिधियों की आवाज दबा दी जा रही है। भ्रष्टाचार मे आकण्ठ डूबे हुए ये सभी प्रतिनिधि संसद में ऐसी वकालतो और माँगों से जुड़े हुए हैं, जो अत्यन्त शर्मनाक है–

"सेना का नाम सुन देश प्रेम के मारे
मेजें बजाते है
सभासद भद्–भद्–भद् कोई नहीं कोई नहीं हो सकती राष्ट्र की
ससद एक मन्दिर है जहाँ किसी को द्रोही कहा नहीं जा सकता।"

भारतीय लोकतंत्र को लक्ष्य करके सहाय ने यह स्पष्ट करने की कोशिश की है कि बुर्जुआ लोकतत्र के उपकरणा के दुरूपयोग से उसके ढाँचे में आम जनता शोषण और यातना की भयकर स्थितियों से गुजर रही है।

रघुवीर सहाय की कविताओं से यह स्पष्ट होता है कि सन् 1947 के बाद भारतीय शासन व्यवस्था में लोकतांत्रिक ढाँचे को शोषक शक्तियों के हितों से सम्बद्व रखने का प्रयास किया गया, परिणामस्वरूप जनता के लोकतंत्र को संभव बनाने के सारे प्रयासो को शोषक वर्गो ने विफल करने का निरन्तर प्रयास किया है। रघुवीर सहाय ने इस बात से अवगत कराने का प्रयास किया है कि राजनेताओं ने लोकतंत्र को भ्रष्ट–तत्र बना दिया हैं। सारी लाभकारी योजनाए केवल उन्हीं के लिए बन रही है। उन्हे अपने विकास और स्वार्थ के आगे और कुछ नहीं दिखाई देता है। सामान्य जनता से उन्हें कुछ लेना देना नहीं है।

अपनी काव्य रचनाओं के माध्यम से रघुवीर सहाय ने यह प्रतिपादित करने का प्रयास किया है कि राजनीतिक हवा देश की प्राण वायु है। उनका यह

विचार रहा है कि सफल एव सच्चे लोकतान्त्रिक वातावरण मे ही भारत जैसे विशाल देश का विकास सभव है। लेकिन जब तक शोषको एव पूँजीपतियो द्वारा सामान्य जनता का शोषण होता रहेगा, तब तक भारतीय लोकतत्र की सार्थकता नही सिद्व हो सकती है। उन्होने इस बात की भी पुष्टि करने की कोशिश की है कि हमारी वास्तविक आजादी तभी चरितार्थ होगी, जब हमारे देश के प्रत्येक नागरिक को राजनीतिक अधिकारो के प्रयोग का समुचित अवसर प्राप्त होगा।

रघुवीर सहाय की कविताओ से यह सिद्व होता है कि भारतीय लोकतत्र की अव्यवस्थाओ का विरोध करने के लिए जब कोई जनशक्ति खड़ी होती है, तो उसे रोजी–रोटी से वंचित कर देने की धमकी से सत्ता पक्ष सहमत कर लेता है।

चूँकि सहाय की कविताएं एव गद्य रचनाए नयी कविता एवं साठोत्तरी कविता के दौर मे लिखी गयी है, परिणामस्वरूप उन्होंने तत्कालीन जनतांत्रिक चुनावों की तरफ भी सकेत किया है।

साथ ही साथ उनकी कविताएं सरकार की नीति, आर्थिक–दृष्टिकोंण एव सत्ता के लोलुप भ्रष्ट नेताओं का पर्दाफाश करती हैं। सहाय का यह दावा है कि अपने को सफल बनाने के लिए राजनेतागण किसी भी प्रकार के भ्रष्टाचार, बूथ कैपचरिंग, सच्चे एवं ईमानदार लोगों की हत्या कर देने जैसे जघन्य अपराधों को करने से बिल्कुल नही चूकते है।

अपनी कविताओं के माध्यम से रघुवीर सहाय ने लोकतत्र या जनतत्र की सफलता के लिए आवश्यक सुझाव प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। उनका यह विचार है कि पूँजीवादी व्यवस्था आज देश मे इस प्रकार जड़ जमा चुकी

है कि एक वर्ग (शोषित वर्ग) निरन्तर शोषण के साये मे जी रहा है। इसलिए देश मे भले ही लोकतत्र की स्थापना हो गयी है, लेकिन इसे सच्चा लोकतत्र नही जा सकता है। उनकी कविताओ से इस बात की पुष्टि होती है कि आज के राजनीतिक वातावरण मे भय और दहशत की स्थिति व्याप्त है। हत्या और अपराधो का सिलसिला इतना बढ़ता जा रहा है कि लोकतंत्र का बुनियादी ढाँचा ही खोखला होता जा रहा है।

रघुवीर सहाय की काव्य रचनाओ से यह उजागर होता है कि इस देश के लोकतत्र पर जिन और जैसे लोगो का कब्जा है और जिस कब्जे की वजह से भय, आतक एव अधिकारों के हनन का सिलसिला लगातार बढ़ता जा रहा है, उसी से देश दिन-प्रतिदिन पतनोन्मुख होता जा रहा है- उनकी कविताए यह भी प्रतिपादित करती हैं कि हमारा लोकतत्र ही भ्रष्ट और भीड़ तंत्र हो गया है, जिसमें अकिंचन, असहाय एवं शोषित वर्ग की फरियाद को सुनने वाला कोई नही है। आज के विकृत राजनीतिक परिवेश में "रामदास" और "खुशीराम" जैसे सामान्य एवं निर्दोष लोगों की ऐलान करके हत्या कर दी जाती है, लेकिन उस हत्या की कहीं कोई फरियाद सुनने वाला नही है-

"निकल गली से तब हत्यारा
आया उसने नाम पुकारा
हाथ तौलकर चाकू मारा
छूटा लोहू का फब्बारा
कहा नही था उसने आखिर उसकी हत्या होगी।"

स्वतन्त्रताके पश्चात् आने वाली सरकारो का सम्पूर्ण लेखा-जोखा रघुवीर सहाय की कविताओं से प्राप्त होता है। इनकी कविताए मनुष्य और मनुष्य के बीच समानता

के लिए प्रतिबद्ध विचारो को प्रकट करती हैं। उनकी गहरी जनतान्त्रिक सवेदना ने आधुनिकतावाद की नकल के कारण पनपती असमानताओं को विभिन्न–रूपों और परतों में देखने, सुनने, और समझने की कोशिश किया है। उनका मानना है कि गैर–बराबरी और अन्याय पर टिकी व्यवस्था ने आदमी और आदमी के बीच समानता को खत्म कर दिया है। इसके अतिरिक्त एक वर्ग को अपने को नीचा एव हेय मानकर जीने वाला आदमी बना दिया है।

सहाय की कविताओ से ही इस बात की पुष्टि होती है कि जनप्रतिनिधि लोकतंत्र के प्रहरी होते हैं, लेकिन ये जनप्रतिनिधि भारतीय लोकतंत्र के नायक नहीं, बल्कि खलनायक के रूप में उभरे है। उन्होने अपनी कविताओ में जनप्रतिनिधियो के सवाद की बिल्कुल कृत्रिम शैली एव उनकी राजनीति पर विद्रूप एवं व्यंग्य के माध्यम से सशक्त–प्रहार किया है–

"हमने बहुत किया है
हमही कर सकते हैं
हमने बहुत किया है"।

रघुवीर सहाय ने अपनी कविताओं मे साथ ही साथ अन्य रचनाओ मे भी लोकतत्र का पर्दाफाश करने का प्रयास किया है। उन्होंने यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि इस भारतीय लोकतत्र में सर्वत्र शोषण का ही भयावह दृश्य व्याप्त है। हत्या एव आतक के साथ–साथ जनप्रतिनिधियों की हँसी एक नयी हँसी का रूप धारण कर लेती है, जो कि रघुवीर सहाय की कविताओं मे स्पष्ट रूप से मुखरित हुआ है–

"निर्धन जनता का शोषण है
कहकर आप हँसे
लोकतंत्र का अन्तिम क्षण है
कहकर आप हँसे।"

नि सदेह रघुवीर सहाय की कविताए व्यक्ति, समाज, संस्था–विशेष, राजनीति तथा जनतत्र की असलियत का पर्दाफाश करके, वास्तविकता को उभारने का चित्र प्रस्तुत करती हैं। राजनीति मे व्याप्त ढोग, भाई–भतीजावाद विकृत राजनीतिक परिदृश्य, बुद्धिजीवियो का खोखलापन तथा जी हजूरी करने वाली एव रिरियाती हुई भीड़ पर अपनी रचनाओ के माध्यम से रघुवीर सहाय ने सीधा और तीखा व्यंग्य प्रहार किया है। इसके अतिरिक्त एक सहज मानवीय जीवन, जो कि हर तरह के शोषण एवं दिखावे से मुक्त है, की तरफ उन्होंने संकेत किया है। उन्होंने व्यक्ति और समाज के रिश्तों को जिस तरह परिभाषित करने का प्रयास किया है, उससे उनकी अलग पहचान कायम होती है। उन्होंने अपनी काव्य–रचनाओं एव गद्य–रचनाओ के आधार पर यह सिद्व करने का भरसक प्रयास किया है कि विकृत सामाजिक ढाँचे के मूल कारण के रूप में राजनीतिक अव्यवस्था एव शोषको तथा पूँजीपतियो द्वारा असहाय एवं सामान्य जनता का निरन्तर शोषण की प्रक्रिया ही समाहित है।

सहाय की कविताओ ने राजनीतिक क्षेत्र मे भाषावाद एवं जातिवाद को बिल्कुल त्याज्य बताया है। उन्होंने हिन्दी भाषा को ही सच्ची राष्ट्रभाषा के पद पर स्थापित कराने का प्रयास किया है। उनका यह मानना था कि आज हिन्दी को केवल अनुवाद की भाषा बना दिया गया है। वे यह भी स्पष्ट करने का प्रयास किये है कि हिन्दी को राष्ट्र–भाषा के पद की पदवी दिलाने का दावा करने वाले साहित्यकार, हिन्दी सलाहकार, सरकारी सस्थानों के मूर्ख हिन्दी

अधिकारी तथा जड़ हिन्दी अध्यापक, हिन्दी भाषा को अपने जीवन–यापन तथा सुख–सुविधा का उपकरण मात्र बनाते हुए अन्ततोगत्वा शासक वर्ग के हितो को पुष्ट कर रहे हैं।

परिणामत हिन्दी भाषा मे विकास के बदले मात्र एक सड़न पैदा हो रही है। उन्होंने बार–बार हिन्दी भाषा की सच्ची उन्नति की बात प्रकट की है–

"हमारी हिन्दी एक दुहाजू की नयी बीबी है
बहुत बोलने वाली बहुत खाने वाली बहुत सोने वाली"

उनकी कविताएं आपातकाल लागू किये जाने से बिल्कुल पहले के खतरो से आगह किया था। आज वही खतरा भारतीय जनता के सम्मुख एक चुनौती का विषय बन चुका है। शोषक–सत्ताधारी वर्ग निरन्तर शोषितों एवं असहाय लोगों का शोषण ही करता जा रहा है। आपातकाल के दौरान इनकी लिखी गयी कविताएं यह सिद्ध करती है कि उस दौरान अपने मौलिक अधिकारो से वंचित जनता न तो विरोध मे कुछ कह सकती थी और न तो उसे कुछ कहने का अधिकार ही दिया गया था। आज की स्थितियाँ भी कमोवेश वही हैं। बढ़ते हुए पूँजीवाद, शोषण एव दमन के कारण हर पड़ाव पर सामान्य आदमी ही मारा जा रहा है।

एक सामाजिक सरोकार के कवि होने के कारण एव समाज के प्रति अपनी गहरी अनुभूति प्रकट करने के कारण, सहाय ने समाज की विषमता एव उससे उत्पन्न बदहाली की स्थिति को अपनी कविताओ एव अन्य गद्य रचनाओं के द्वारा उभारने का प्रयास किया है। यही कारण है कि उनकी चेतना आम नागरिक की चेतना बन जाती है, जिसमे समाज का जीता–जागता स्वरूप एव बदलते परिवेश की झकार स्पष्ट रूप से सुनाई देती है–

"लोग -लोग–लोग चारो तरफ हैं मार तमाम लोग
खुश और असहाय
उनके बीच रहता हूँ उनका दु ख
अपने आप और बेकार"।

सहाय ने समाज की दलित, पीड़ित एवं लाचार जनता से अपना सीधा सम्बन्ध रखने का प्रयास किया है, इसके अतिरिक्त उनकी कविताएं लाचारी एव बदहाली के कारणो को प्रकट करती हुई उनके सहज आक्रोश को अभिव्यक्त करती है। सहाय ने यह स्वीकार किया है कि बढ़ते हुए पूँजीवाद के परिणामस्वरूप समाज मे शोषक और शोषित वर्गो का जन्म हुआ है। जिसमे शोषक वर्ग निरन्तर शोषितों का शोषण करता जा रहा है।

रघुवीर सहाय ने समाज के लोगो की पीड़ा को बिल्कुल अपनी पीडा समझकर, शोषित जनता के साथ होने वाले निरन्तर अत्याचार के प्रति अपनी विद्रोह की भावना प्रकट की है। उनकी कविताए जर्जर बदलते सामाजिक परिवेश एव राजनीतिक ह्रास का सफल दृष्टान्त प्रस्तुत करती है, साथ ही साथ सहाय का यह भी मानना है कि विकृत राजनीति के परिणामस्वरूप ही सामाजिक परिवेश भी विकृत हुआ है–

"बीस बरस बीत गये
लालसा मनुष्य की तिल तिल कर मिट गयी"।

रघुवीर सहाय की कविताए यह प्रकट करती है कि भारतीय समाज की सबसे बड़ी विषमता है– वर्ण विभाजन, जिसने अब जातिवाद का रूप ले लिया है। इस जातिवाद की विषमताओ को सहाय ने बड़े सहज ढग से अपनी

कविताओ मे उभारने का प्रयास किया है। शोषको एव शोषितो के बीच भयकर विषमता के दृश्य को उभारते हुए उन्होने जहाँ पर शोषितो के प्रति अपनी गहरी सहानुभूति प्रकट की है, वही पर शोषको के प्रति अपने घृणा को व्यक्त करने से नही चूकते हैं। कार्लमार्क्स ने जिस प्रकार शोषितो का करूण गान करके, शोषको के प्रति अपना आक्रोश व्यक्त किया है, उसी प्रकार रघुवीर सहाय ने भी शोषकों के प्रति अपने आक्रोश को व्यक्त करते हुए, सर्वहारा वर्ग का ही समर्थन किया है। उनका अपना यह कहना हे कि वर्तमान आत्यन्तिक अत्याचारों के पीछे पूँजीवाद और सामन्तवाद का सम्मिलित अश्लील चेहरा है। उन्होने ऐसे चेहरे पर ही प्रहार करने का प्रयास किया है।

उनकी कविताए "रामसरण" और "रामदास" सभी वर्गो का समुचित प्रतिनिधित्व करती है। यह तो वह वर्ग है जो यन्त्रणा और दमन का शिकार हुई हिन्दुस्तान की शोषित जनता का वर्ग है। उनकी रचनाओं में व्यक्तिवाचक नामो का इस्तेमाल इस प्रकार किया है कि नाम लेते ही वैसे शोषित चेहरे सामने उपस्थित हो जाते है। सहाय की कविताएं बेचू, मँगरू, ढोड़े, गोबर आदि का उल्लेख करके शोषितो तथा अन्याय एवं विषमता की जिन्दगी जी रहे लोगों का ही चित्रण किया है–

> "कम्बल रेलगाड़ी मे बीस अजनबियों के सामने
> बेचू वल्द निरहू, ढीड़े–मँगरे पाँचू–गोबरे
> पाँच भाई
> बैठे थे"।

सहाय की कविताएं हमें हर दौर के यथार्थ से अवगत कराती हैं, इसके अतिरिक्त उसमे यथार्थ को पहचानने के काबिल औंजार भी मौजूद दिखाई

देते है। दमन, हिंसा, शोषण, बेकारी, नव धनाढ्य सस्कृति और सामाजिक उच्छृखलता के कारण हम वास्तव में क्या खो रहे हैं– इसकी सही पहचान करवाने मे रघुवीर सहाय की कविताए बहुत ही सार्थक सिद्व होती है। उन्होंने अपनी कविताओं मे सामजिक मूल्यो के प्रति अपनी अटूट आस्था प्रकट की है।

जीवन को बिल्कुल असलियत मे प्रकट करके सहाय ने यथार्थ से साक्षात्कार कराने का प्रयास किया है। दया, करूणा, सहानुभूति सच्चा मानव–प्रेम अहिंसा आदि बहुत सारे सामाजिक मूल्यों को आत्मसात् करके सहाय ने अपनी रचनाओ का सृजन किया है।

रघुवीर सहाय की कविताओं में मनुष्य की लालसा एव स्वाधीनता पर होने वाले प्रहार का देखा जा सकता है। मर्यादा, स्वाभिमान एव अपनी संस्कृति से अटूट प्रेम रखने वाले सहाय ने जनता को अपनी स्वाभाविक स्थिति पाने एवं अपने अधिकारो के उपभोग के प्रति सचेत किया है। उनकी रचनाएं यह प्रकट करती हैं कि हिन्दुस्तान में रहने वाले प्रत्येक व्यक्ति को अपने अधिकारों को प्राप्त करने की स्वतंत्रता है, लेकिन बदलते इस सामाजिक बदहाली में बहुसख्यक लोगों को अपने अधिकारों से वंचित कर दिया गया है। उनका यह भी मानना है कि सामाजिक आदर्शों एव मान्यताओ की पूर्णरूपेण अवहेलना हो रही है। पूँजीवादी दुर्व्यवथा ने सबको अपने चंगुल मे कर लिया है, परिणामतः सामाजिक मान्यताए एवं सभी आदर्श नगण्य हो गये है, और इस सामाजिक अव्यवस्था में सामान्य जन का कोई मूल्य नही रह गया है।

रघुवीर सहाय की कविताओं से यह स्पष्ट पता चलता है कि उन्होंने सामाजिक मूल्यों को सर्वथा कायम रखने पर बल दिया है। इसके

अतिरिक्त उन्होंने व्यर्थ का पोज बनाने वाले कवियो एव साहित्यकारों का भी पर्दाफाश किया है। जो समाज पतन की तरफ झुका है आर जहाँ की सस्कृति विकृत हो चुकी है, जिसमे सर्वत्र अन्याय और असमानता की लहर व्याप्त है, ऐसे समाज के पुनर्निमाण हेतु सहाय अपनी लेखनी के माध्यम से पूर्ण प्रतिबद्ध थे। उन्होने नारी की सभी स्थितियों एवं समाज में उसके साथ होने वाले अत्याचार को पूर्ण–यथार्थवादी दृष्टि से चित्रित किया है। उनकी कविताएं सर्वत्र नारी चेतना को मुखरित करती हैं। वे नारी के अधिकारों के सच्चे हिमायती रहे है। उन्होंने समाज की दृढ़ता के लिए नारी के सहयोग को अपेक्षित माना है। उनकी रचनाएं इस पुरूष–प्रधान समाज में औरतो को अपने अधिकारों के लिए भी पुरूषो की कोटि मे लाकर खड़ी करती हैं।

सहाय की काव्य रचनाओ में आम–जनता की यन्त्रणाओ के साथ ही साथ नारी की यंत्रणा को अभिव्यक्त करने का प्रयास किया गया है, जिसे वे इस भ्रष्ट एव बुर्जुआ लोकतत्र मे झेल रही हैं। सहाय की कविताओं मे नारी के साथ होने वाले बलात्कार, अनावश्यक शोषण एव गैर बराबरी का मार्मिक चित्र प्राप्त होता है–

"नारी विचारी है
पुरूष की मारी है
तन से क्षुधित है
मन से मुदित है"

यह निश्चित है कि सहाय ने वर्तमान समाज मे स्त्री के साथ होने वाले अत्याचार एव उसकी गुलाम स्थिति को लेकर बहुत ही क्षुब्ध थे। उनकी कविताओ में बहुत सारे असहाय बच्चों, स्त्रियों एव लड़कियों के चित्र प्राप्त होते है। उनका अपना जो समाज है, उसमे जूता–पालिस करने वाला लड़का, अखबार बेचने वाला सुथन्ना पहने हर चरना, गर्भवती–मजदूरन आदि अनेक असहाय चरित्र है वे उनकी कविता मे अपनी अलग पहचान प्रकट करते हैं। उनकी रचनाओं मे नारियो को भी पुरूषों के समान अधिकार प्रदान किये जाने की बात बार–बार कही गयी है। उन्होंने नारी के साथ होने वाले वैषम्य भाव, एव उसकी बदतर स्थिति के लिए भी इस भ्रष्ट राजनीतिक तत्र को ही जिम्मेदार ठहराया है। डा0 राम मनोहर लोहिया ने भी औरतों के प्रति होने वाले अत्याचार को विधिवत महूसस किया और उनके दर्द एवं अत्याचार के पीछे राजनीतिक एवं सामाजिक दोनों कारणों को जिम्मेदार ठहराया था।

रघुवीर सहाय ने अपनी कविताओं के माध्यम से ऐसे अत्याचार एवं अन्याय के प्रति विरोध व्यक्त किया है, साथ ही इसको समाप्त करने के लिए औरतो को एकजुट होकर सामने आने की प्रेरणा भी प्रदान की है।

सहाय की सभी रचनाओ मे वर्तमान पूँजीवादी अव्यवस्था, शोषण एवं उत्पीड़न तथा समाज की बदहाल स्थिति के बीच बदलते हुए मानवीय सन्दर्भ की सफल झाँकी भी प्राप्त होती है। देश की विशाल जनता पर मुट्ठी भर लोगों द्वारा किया जाने वाला सतत अन्याय सहाय की कविताओ का मुख्य वर्ण्य विषय है। वे यह परिभाषित करते हैं कि शोषक वर्ग के हितों की सुरक्षा करने वालों से शासन का अत्याचार झेलते हुए लोग तंग आकर आत्म हत्या की स्थिति मे पहुँच चुके हैं। इस प्रौढ़ होते पूँजीवादी व्यवस्था के अन्तर्गत सामान्य आदमी

के लिए कोई पड़ाव नही रह गया है। उसे अपने व्यक्तित्व के विकास के लिए अपनी सही स्थिति प्राप्त करने से हर मोड़ पर रोक दिया जा रहा है। आज का शासन तंत्र इतना भ्रष्ट हो गया है कि वह पूँजीपतियो एव अभिजात्य वर्ग का ही पक्षधर है। ऐसी विषम परिस्थिति में देश की बहुत सारी मानवीय प्रतिभाएँ समाप्त होती जा रही है और बहुत सारे प्रतिभाशाली लोग इस बढते हुए पूँजी बाजार से ऊबकर दूसरे देशो को भी पलायित हो जा रहे है।

सहाय की कविताए पूँजीवादी अव्यवस्था के अन्तर्गत पिसते हुए लोगो का सफल चित्रण प्रस्तुत करती है। मानवीय सवेदना के स्तर पर रघुवीर सहाय की कविताएं शोषित जनता की पीड़ा का जिस प्रकार एहसास कराती हैं, वह उस विसंगत यथार्थ को बदलने के प्रयासों से जुड़ने के लिए एक सतत प्रेरणा का मार्ग है। उनकी बहुत सारी कविताओ मे जिन मनुष्य विरोधी स्थितियो के प्रसंग आये हैं उसमें प्रमुखता इस विडम्बना को उखाड़ने की है ताकि आत्महत्या और घुटन की वर्तमान स्थितियाँ खत्म हों। इसके लिए समाज के तात्कालिक नेतृत्व द्वारा उद्घोषणाएं तो की जा रही हैं, लेकिन इन उद्घोषणाओ की आड़ में उन्हीं के द्वारा ही वे बहुत सारे कारण और भी पुख्ता किये जा रहे हैं, जिनसे ये सभी स्थितियाँ पैदा होती है–

"मरते मनुष्यों के मध्य खड़ा मक्कार मंत्री
कहता है सविश्वास
सरकार सिचाई करें।"

सहाय की कविताओं में इस बात की स्पष्ट झलक मिलती है कि आज शासन व्यवस्था का दौर इतना बिगड़ चुका ह कि गरीब एवं असहाय जनता के लिए सभी आवश्यक चीजे बहुत मँहगी कीमत पर खरीदना पड़ रहा है।

परिणामत आर्थिक क्षेत्र मे आर्थिक असमानता एव अन्याय की एक सशक्त दीवार खड़ी होती जा रही है, जिसमे केवल सामान्य एव मामूली आदमी ही पिस रहा है।

रघुवीर सहाय अपनी कविताओ मे यह अभिव्यक्त करने का प्रयास किया है कि बढ़ती हुई चोर बाजारी एवं पूँजीवादी अव्यवस्था के कारण सामान्य जन–जीवन बहुत ही सकट मे पड़ गया है, जिसके कारण लाचार एवं असहाय व्यक्ति को इस दौर मे किसी प्रकार का कोई स्थान नही मिल पाता है। इस बिगड़ी हुई राजनीतिक अव्यवस्था के अन्तर्गत पूँजीवाद के शोषण की शिकार जनता हर तरह की यातनाए झेल रही है। अत्याचार एवं घूसखोरी, तस्करी एव नकलीपन तथा अनेकानेक अन्य दुर्व्यवस्थाए अपनी चरम सीमा पर पहुँच चुकी हैं। इसके साथ ही सहाय की कविताए यह उल्लेख करती हैं कि देश का भ्रष्ट तंत्र जिसमें कि शासक वर्ग एवं राजनेता अपनी झोली भरने के पीछे उतावले हो गये हैं, वे कभी भी सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था को स्थायी एवं हितकारी रूप नहीं प्रदान कर सकते है।

रघुवीर सहाय ने यह स्पष्ट कर दिया है कि जब तक समाज की सतह से पूँजीवाद एव शोषण का अन्त नहीं हो जाता है, तब तक एक स्वस्थ समाज की स्थापना केवल एक कोरी कल्पना होगी, इसके अतिरिक्त जब तक शोषण एवं उत्पीड़न का खौफनाक परिदृश्य हमारे भारतीय समाज में जारी रहेगा, तब तक किसी भी स्थिति में व्यक्ति, समाज, राष्ट्र एवं मानव जाति का कदापि विकास संभव नही है। उनकी कविताएं वर्तमान समाज की भयावह परिस्थितियो के बीच समाज मे चिरकाल से प्रतिष्ठित मानवीय मूल्यों के ह्रास एवं विघटन के प्रति उनके चिन्ता भाव को भी प्रकट करती हैं। अपनी रचनाओं के

द्वारा रघुवीर सहाय ने इस बात की परिपुष्टि करने की कोशिश की है कि विकृत–राजनीतिक–सामाजिक परिवेश के मूल में मानवीय मूल्यो का सतत विघटन है –

"बाँध मे दरार
पाखण्ड वक्तव्य में
घट तौल न्याय मे
मिलावट दवाई में"।

सहाय की कविताएं जिस ससार का चित्रण करती हैं, वह पूरी तरह भारतीय है, जिसमें बिल्कुल आम–आदमी का संसार समाहित है। सहाय ने वर्तमान पूँजीवादी व्यवस्था एव राजनीतिक अव्यवस्था तथा उथल पुथल को मानवीय मूल्यो के विघटन के लिए उत्तरदायी माना है। उन्होंने मानवीय एव नैतिक मूल्यों के प्रति अपनी गहरी चिन्ता प्रकट की है। उनकी रचनाएं यह सिद्व करती है कि किसी समाज और देश की अस्मिता को हम मानवीय मूल्यों के आधार पर ही बचाये रख सकते हैं। उनकी कविताए समाज के ऐसे वर्गों के प्रति व्यग्य कसती हुई आगे बढ़ती हैं, जो मानवीय मूल्यों की उपेक्षा करते हैं।

नैतिकता के निरन्तर विघटन एवं उस पर आच्छादित राजनीतिक, सास्कृतिक सकट का सजीव एवं सागोपांग विवरण सहाय की कविताओं में प्राप्त होता है। उन्होंने यह प्रतिपादित करने का प्रयास किया है कि पद एव सत्ता के लोभ मे प्रत्येक राजनेता किसी भी प्रकार का जुर्म एवं अन्यायपूर्ण कार्य करने मे तनिक भी सकोच नही करता है। इसके अतिरिक्त वे इस बात से भी अवगत कराते है कि ऐसा जुर्म एवं अत्याचार करने वाले लोग इतना सशक्त और बलशाली हैं कि वे साफ बच जाते हैं–

"दस मन्त्री बेईमान और कोई अपराध सिद्व नही
काल रोग का फल है अकाल अनावृष्टि का"

रघुवीर सहाय का यह विचार रहा है कि आज के बदलते परिवेश मे लोग अपने वास्तविक मूल्यो एव सामाजिक परम्पराओं को भूलकर व्यर्थ के आडम्बरो में फँसते है, जिसके कारण दिन–प्रतिदिन मानवीय मूल्यों का ह्रास हो रहा है। सहाय के काव्य सग्रह हमें यह संदेश प्रदान करते है कि सामाजिक ढाँचे की मजबूती एव उसके आधार की प्रौढ़ता के लिए सांस्कृतिक मान्यताओ एवं सम्पूर्ण मानवीय मूल्यों को जीवित रखना नितान्त आवश्यक है। उनकी कविताए यह भी प्रतिपादित करती हैं कि एक सभ्य समाज का सही मूल्यांकन मानवीय मूल्यो एव सास्कृतिक मान्यताओ तथा प्रमाणों के आधार पर सिद्व होता है। उनकी रचनाओं से यह सिद्व होता है कि आज स्वार्थ लिप्सा का प्राबल्य होने के कारण नैतिकता का दिन–प्रतिदिन क्षरण होता जा रहा है। आज के बढ़ते हुए शोषण एव जातिवाद के कारण, मनुष्य और मनुष्य के बीच एक गहरी खाँई पैदा हो गयी है, परिणामस्वरूप परस्पर प्रेम एव विश्व–बन्धुत्व का भाव भी समाप्त होता जा रहा है–

"हिन्दू और सिख मे
बंगाली असमिया मे
पिछड़े और अगड़े में
पर इनसे बडी फूट"

एक मानवीय सवेदना के कवि होने के कारण सहाय ने सांस्कृतिक मान्यताओं एव मानवीय मूल्यो के स्खलन के प्रति भी अपनी गहरी चिन्ता व्यक्त की है। उनकी कविताए सहज रूप मे सांस्कृतिक एवं मानवीय सन्दर्भो के प्रति एक तड़पन प्रकट करती हैं, जिनके बुनियादी ढाँचे पर ही किसी स्वस्थ एवं समृद्व समाज की स्थापना हो सकती है।

सहाय की कविताए इस तथ्य को उजागर करती हैं कि सघन औद्योगिकीकरण के परिणामस्वरूप, शह्वरीकरण, बेरोजगारी, विशेषीकरण तथा सयुक्त परिवार के विघटन से जुड़ी हुई अनन्त समस्याए उत्पन्न हुई हैं। सहाय ने यह भी प्रतिपादित करने का प्रयास किया है कि पूँजीवादी औद्योगिकीकरण के उत्कर्ष ने मनुष्य को मशीन का गुलाम बना दिया है। यांत्रिकीकरण के बीच उसका दर्जा भी मशीन के एक पुर्जे के रूप मे हो गया है। फलत मानवीय सवेदनाएं निरन्तर मरती जा रही हैं, इसके साथ ही मानव और मानव के बीच का रिश्ता टूटता जा रहा है।

रघुवीर सहाय की रचनाएं इस सच्चाई को व्यक्त करती है– कि आज की दुनिया इतनी बदल गयी है कि मनुष्य प्रेम के स्थान पर घृणा, ईमानदारी के स्थान पर बेईमानी का रास्ता अपनाकर चल रहा है। ऐसी भयंकर परिस्थिति में सत्य और प्रतिष्ठित मान्यताओं का कोई महत्त्व नहीं रह गया है। पूँजीवादी अव्यवस्था के अन्तर्गत मची–लूट–खसूट एव रिश्वतखोरी तथा निरन्तर शोषण से मानवीय भावो की समाप्ति होती जा रही है। परार्थ के स्थान पर स्वार्थ की प्रवृत्ति निरन्तर सशक्त होकर नैतिकता का क्षरण कर रही है। सहाय ने अपनी कविताओ मे मानवीय भावो को समाज का बुनियादी आधार स्वीकार किया है, जिनके आधार पर किसी समाज की मजबूती को विधिवत प्रमाणित किया जा सकता है।

अपनी सभी रचनाओ मे सहाय मनुष्य और मनुष्य के बीच समानता के लिए सघर्षशील दिखाई देते हैं–

"मेरा सब क्रोध सब कारूण्य– सब क्रन्दन
भाषा में शब्द नही दे सकता"

रघुवीर सहाय की सभी कविताए मानवीय भावो को आत्मसात् करती हुई आगे बढ़ती हैं, जिनमे कि उन मानवीय मूल्यो एव मानवीय भावों के प्रति स्वाभाविक छटपटाहट दिखाई देती है। सहाय की कविताए यह प्रकट करती है कि इन्ही मानवीय मूल्यो के द्वारा मनुष्य की सही पहचान एव मानवता की सही खोज सभव हो सकती है। उनकी कविताए सम्पूर्ण मानवता के परिदृश्य को चित्रित करते हुए आगे बढ़ी हैं।

आधुनिक जीवन का सम्पूर्ण अध्ययन करते हुए, जीवन की समस्त विडम्बनाओ को, जिनके द्वारा आज मानवीय भावों–दया, करूणा, ईमानदारी, आदि को आघात पहुँच रहा है, उसे सहाय की कविता मे मुख्य वर्ण्य विषय के रूप में देखा जा सकता है। संवेदना और बदलते सामाजिक–मूल्यो तथा मानवीय भावो पर आघात–पहुँचाने वाली अव्यवस्था के प्रति उनका सहज दर्द प्रस्फुटित हुआ है–

"टूटते हुए समाज का रोना जो रोते हैं
उनके कल और परसों के आसुओं का
प्रमाण मेरे पास लाओ"

रघुवीर सहाय की रचनाएं यह प्रमाणित करती हैं कि वे आम जनता के कवि रहे है, क्योंकि उन्होंने सामान्य जन के अभाव संघर्ष एवं दु ख दर्द को सम्यक् रूप से समझने का प्रयास किया है। उनकी काव्य–भाषा आम–जनता के बिल्कुल करीब पहुँचने वाली भाषा है, जिसमें कि समाज के दुःख झेलते हुए शोषित उपेक्षित लोगों का चित्रण प्राप्त होता है। उनकी भाषा केवल यथार्थ का वर्णन ही नहीं करती है, अपितु यथार्थ का एवं उसके सच का अन्वेषण भी करती है। उन्होंने अनुभूति और अभिव्यक्ति दोनों पक्षों के प्रति अपनी

कुशलता प्रकट की है। उनकी काव्य–भाषा की शक्ति राम्पन्नता उनकी कविताओ मे आरम्भ से ही विद्यमान है। उन्होंने अपनी कविताओं में आम बोलचाल की भाषा प्रयुक्त किया है। उनकी भाषा एव यथार्थ के बीच एक समवाय सम्बन्ध ही दिखाई देता है।

वे आकाशवाणी, दूरदर्शन एव समाचार पत्र–पत्रिकाओं से सम्बद्व रहे है। परिणामस्वरूप उनकी काव्य भाषा में अखबारी पुट एवं पत्रकारिता का प्रभाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है, जो सच्चे यथार्थ की अभिव्यक्ति मे सहायक सिद्व होता है।

सहाय की रचनाओ से यह सिद्व होता है कि उन्होंने अपनी काव्य–भाषा को हिन्दी पत्रकारिता के उन स्रोतों से जोड़ा था जो जनोन्मुख एव जनाधारित थे। केवल इतना ही नहीं, रघुवीर सहाय ने अखबार की भाषा से राजनीति को लेकर उसे कविता में गढ़ने का सार्थक प्रयास किया है।

उनकी कविताओं को साक्ष्य बनाकर यह कहा जा सकता है कि उन्होंने अपनी भाषा में जिस अखबारी पुट का पयोग किया है, उनमे मानवीय रिश्ते–छिपे हुए है। उनकी पत्रकारिता वृहद् लोकतंत्र की पत्रकारिता है जिसमें कि पूँजीवादी व्यवस्था के अन्तर्गत घायल किये गये निम्न मध्यवर्गीय लोगों के दर्द का सफल चित्रण मौजूद है। उनकी भाषा से यह जाहिर होता है कि वह बिल्कुल साधारण और सामान्य लोगो की भाषा है, जिसके माध्यम से हर व्यक्ति अपने विचारो को सम्प्रेषित कर सकता है।

सच्चे यथार्थ को धरातल से जुड़े होने के कारण, सहाय ने अपनी काव्य भाषा के माध्यम से समाज की यथार्थ स्थितियो को चित्रित करने का भरसक प्रयास किया है। वास्तविकता को अपनी सारी जीवन्तता में व्यक्त करने का सही

एवं सटीक तरीका रघुवीर सहाय की भाषा मे परिलक्षित होता है। अन्य साठोत्तरी कवियो की तरह सहाय ने भी यह महसूस किया कि कविता मे बिम्बो के द्वारा सच्चे यथार्थ की अभिव्यक्ति मे अवरोध उत्पन्न होता है। इसलिए उन्होंने अपनी काव्य भाषा मे सपाटबयानी का खुलकर सहारा लिया है। सहाय की कविताए इस बात का भी उल्लेख करती हैं कि कावता बिम्ब का पर्याय नहीं है। एक सामान्य रूप मे जिसे बिम्ब कहा जाता है, उसके बिना भी कविताएं लिखी गयी है।

उनका यह स्पष्ट विचार रहा है कि बिम्बा के कारण कविता बोल-चाल की सामान्य भाषा से दूर हट जाती है और विशेषणो का भी बोझ बढ़ जाता है। इस कमी को दूर करने के लिए रघुवीर सहाय ने अपनी काव्य भाषा मे सपाटबयानी का सहारा लिया। अपने चारो ओर के परिदृश्य, कटु-सत्य, विसगति एवं विद्रूप को सही विश्वसनीय एवं सटीक अभिव्यक्ति के लिए भी उन्होंने अभिधात्मक भाषा अर्थात सपाटबयानी को स्वीकार किया, जो सीधे मार कर सके।

सहाय की काव्य भाषा को बहुत झटके के साथ नही पढ़ा जा सकता है। सचमुच वे एक पूरे वाक्य के कवि सिद्ध होते है और उनका वाक्य एक किस्म की क्लासकीय गठन मे बेहद कसा हुआ दिखाई देता है। यही कारण है कि सहाय की काव्य भाषा को प्रवाह में सायास पढ़ने पर असुविधा ही होती है। वास्तव में उनकी काव्य-भाषा मे सघन एव तुकात्मक गद्यात्मकता विद्यमान है। सच्चे यथार्थ की अभिव्यक्ति के लिये वे काव्य भाषा का गद्योन्मुख होना आवश्यक मानते हैं। यही कारण है कि उनके काव्य-संसार के लिए भाषा का गद्यीय ढाँचा एक आत्यान्तिक जरूरत बन गया। उनकी काव्य भाषा में सघन एवं तुकात्मक गद्य का प्रवेश एक गैर-जरूरी घुसपैठ नहीं, अपितु जीवन एवं

जगत के सच्चे यथार्थ को प्रस्तुत करने की आवश्यकता का प्रतिफल है।

रघुवीर सहाय की काव्य-भाषा मे त्रिलोचन जैसी नाटकीयता भी विद्यमान है। बोल-चाल का सहज लचीलापन, अतिसरलता एव सपाटबयानी तथा कोई न कोई ट्विस्ट देकर पाठक को शा॰ करने की इच्छा उनकी काव्य भाषा के आधारभूत तथ्य साबित होते हैं।

रघुवीर सहाय की रचनाओ से इस बात की पुष्टि होती है कि उन्होने एक नयी भाषा की खोज के लिए अथक प्रयास किया है। उनकी कविताए बिल्कुल समय की फरियाद प्रस्तुत करती हैं। जिसके कारण उनकी कविता की भाषा के लिए किसी विशेष साज-सज्जा की आवश्यकता नही होती है। बिल्कुल सामान्य बोलचाल और साधारण अनुभव का खुलना, उनकी कविताओं मे दिखाई देता है।

उनकी कविताएं यथार्थ को बिल्कुल समेटे हुए आगे बढ़ती हैं। उनकी साधारण बोल-चाल की भाषा मे कहीं भी लम्बी कविता का विधान नही प्राप्त होता है। उनकी बहुत छोटी-छोटी कविताओं में ही जीवन का इतना अधिक विस्तार और वैविध्य है कि मनुष्य, प्रवृत्ति और राजनीति की अनेक स्तरीय टकराहटों को बहुत ही सहज ढग से स्वीकार किया गया है।

उनकी कविताएं बोल-चाल के जीवन का एक अनन्त प्रवाह ही प्रस्तुत करती है। उनकी रचनाएं मनुष्य जीवन का बहुत बड़ा हिस्सा सिद्व होती है।

नि सन्देह रघुवीर सहाय जिस भाषा के द्वारा आम जनता के दर्द को उभारते है, उसी में उनके चारों ओर के विकृत एव दूषित परिवेश से उनकी गहरी अप्रसन्नता भी प्रकट होती है-

"वे जिन तकलीफों को जानकर
उनका वर्णन नही करते हैं
वही है कला उनकी"।

उन्होने अपनी काव्य भाषा का ढाँचा इस प्रकार सृजित करने का प्रयास किया है कि एक वाक्य जैसे दूसरे वाक्य के अन्दर घुसा हुआ, तीसरे वाक्य को आगे की ओर धक्का देता सा प्रतीत होता है। अपनी भाषा में सघन एवं तुकात्मक गद्यात्मकता, अखबारी पुट एव नाटकीयता तथा झटका देने की कला का समावेश करके उन्होंने यथार्थ की सच्ची तह खोलने मे सफलता पायी है। उन्होंने सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक आदि सभी क्षेत्रो से सम्बन्धित जिन कविताओ को चुना है, उसमे पाखण्ड एवं ढोग तथा व्यर्थ के दिखावे पर अपना धारदार व्यग्य एवं छींटाकशी का तीखा भाव उडेला है। वे अपनी व्यग्यात्मक काव्य–भाषा के द्वारा नेताओं की धूर्तता एवं पाखण्ड तथा शोषण की चालाक मुद्राओं एव क्रियाओं की सूक्ष्म पकड़ द्वारा ही उनके सारे भ्रष्ट आचरण एवं राजनीति की मूल्यहीनता की सहज पोल खोलने से नहीं चूकते हैं।

एक यथार्थवादी कवि होने के कारण सहाय ने अपनी काव्य–भाषा में सपाटबयानी का ही सहारा लिया है। बिम्ब एवं प्रतीक योजना/ उनकी काव्य–भाषा का कोई उद्देश्य नहीं रहा है। बिम्बों एवं प्रतीकों के प्रति अरूचि होते हुए भी सहाय के काव्य सृजन में वे अत्यन्त सहज रूप में अनायास ही आ गये हें।

"अब शीतल जल की चिन्ता में
लगती बहुओ की भीड़ कूएं पर ।
मँजी गगरियों पर से किरणें घूम–घूम
छिप जाती पनिहारिन के
साँवल हाथो की चूड़ियों में
धीरे–धीरे झुकता जाता है शरमाये नयनों सा दिन"।

रघुवीर सहाय की काव्य–भाषा मे तत्सम् शब्दो का प्रयोग कम है। यथार्थ की सच्ची अभिव्यक्ति के लिए तद्भव तथा देशज शब्दों का प्रयोग अधिक है। अभिधा की भाषा मे नयी शक्ति सक्रिय कर देना यदि नयी कविता की पहचान बनी है तो इसका बहुत कुछ श्रेय रघुवीर सहाय को ही है। उन्होंने अपनी काव्य भाषा मे जिन शब्दो को रूप की दृष्टि से अव्यय कहे जाने का गौरव प्राप्त है, उन्हें अर्थ की दृष्टि से अव्यय बना देने का सफल प्रयास किया है। रघुवीर सहाय ने उर्दू एवं अंग्रेजी के शब्दों का प्रयोग भी किया है।

किसी वर्णिक या मात्रिक जेसी परम्परित छन्द रचना की अनुपस्थिति के बावजूद सहाय की काव्य भाषा में अनिवार्य लय की छन्दात्मकता एवं संगीतात्मकता है। यह लय उत्पन्न करने वाली छन्दात्मकता आरम्भ से ही सहाय की कविता की शिल्प सरचना के केन्द्र मे रही है। पाँचवे दशक के अन्त में इनकी कविता में छन्द तथा लयात्मकता के बहुत से प्रयोग मिलते है। यही वह समय है जब वे अपनी काव्य भाषा मे विशेष प्रकार की लयात्मकता का सृजन करते हैं।

'अस्तु, "रघुवीर सहाय की काव्य–चेतना और रचना–शिल्प' के सभी पक्षों पर प्रकाश डालने के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि उनकी चेतना, आम आदमी की चेतना रही है। समाज के साधारण से साधारण लोगों की दर्द भरी चेतना। वे मानवीय सवेदनाओ के कवि रहे है, और उनकी यह सवेदना उनके काव्य एवं गद्य दोनो ही रचनाओ को स्पर्श करती है। यही कारण है कि अपने सामाजिक दायित्व का पूर्णरूप से निर्वाह करते हुए, सहाय ने अपनी काव्य रचनाओ की यात्रा की है। उन्होंने अपनी काव्य–भाषा मे समाविष्ट यथार्थ के कोरे आदर्श को समाविष्ट करने से सर्वथा इन्कार किया है। उन्होंने यथार्थ की पथरीली एव ऊबड़–खाबड़ धरातल पर ही चलने का प्रयास किया है।

उनकी कृति "लोग भूल गये हैं" को 1984 का राष्ट्रीय साहित्य अकादमी पुरस्कार, मरणोपरान्त हगरी के सर्वोच्च राष्ट्रीय सम्मान, बिहार सरकार

के राजेन्द्र प्रसाद शिखर सम्मान और आचार्य नरेन्द्र देव सम्मान से विभूषित होना उनके साहित्यिक गौरव को ही रेखाकित करता है।

समग्रत सहाय की साहित्यिक यात्रा के बारे मे जितना अधिक कहा जाय, वह बहुत कम है। काया इस नश्वर संसार मे किसी न किसी पड़ाव पर अवश्य ही साथ छोड़ देती है, लेकिन व्यक्ति अपने यश कार्य से सदा के लिए ऊपर उठ जाता है। रघुवीर सहाय भी अपनी अमर कृतियों से हिन्दी साहित्य मे प्राणवन्त चेतना फूँकी। प्रयोगवादी, नयी कविता तथा साठोत्तरी हिन्दी साहित्य मे वे अपना शीर्षस्थ स्थान निर्धारित करते हैं। अपनी काव्य चेतना एवं रचना शिल्प के माध्यम से उन्होने अपना जो परिचय प्रस्तुत किया है, उसे किसी भी स्थिति मे अनदेखा नही किया जा सकता है। अपनी सहज–सप्रेषण शक्ति के द्वारा उन्होंने समकालीन साहित्य मे अपना मूर्धन्य स्थान निश्चित करते हुए, एक मानवीय तथा यथार्थवादी साहित्यकार के रूप मे अपनी पहचान कायम किया है।

******

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

यथार्थ – यथास्थिति नही – (यथार्थ सम्बन्धी लेख और भेट वार्ताए)
सन् 1984 वाणी प्रकाशन, दिल्ली।

वरनम वन– शेक्सपीयर के मैकबेथ का पद्यानुवाद– सन् 1979
राजकमल प्रकाश, दिल्ली।

विरजीस कदर का कुनबा– "लोर्का" के हाउस आफ वर्नार्डा एल्वा" का उर्दू गद्य में अनुवाद सन् 1980, राजकमल प्रकाशन दिल्ली।

बारह हंगरी– कहानियाँ – अनुवाद– भारत भूषण अग्रवाल एवं रघुवीर सहाय,
सन् 1974, साहित्य अकादमी दिल्ली।

अर्थात – (जनसत्ता के अर्थात कालम मे प्रकाशित सहाय के निबन्ध संग्रह) संपादक– हेमन्त जोशी सन् 1994
राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।

भँवर लहरे और तरग– आलेख संग्रह– सन् 1983
राजकमल प्रकाशन दिल्ली।

2 **सन्दर्भ ग्रन्थ**

क) **काव्य**

तार सप्तक — सं0 अज्ञेय– भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन काशी, सन् 1943 ई0

दूसरा सप्तक — सं0 अज्ञेय– भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन काशी सन् 1951 ई0

तीसरा सप्तक — स0 अज्ञेय – भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, काशी सन् 1959

कुछ कविताएं — शमशेर बहादुर सिंह– जगत शखधर प्रकाशन, वाराणसी सन् 1959 ई0

जमीन पक रही है — केदारनाथ सिंह– प्रकाशन सस्थान शाहदरा दिल्ली, सन् 1980 ई0

जगत का दर्द — सर्वेश्वर दयाल सक्सेना– राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, सन् 1976 ई0

ख) **गद्य एवं आलोचनात्मक रचनाएँ**

ससद से सड़क पर — धूमिल– राजकमल प्रकाशन दिल्ली, सन् 1972 ई0

माया दर्पण — श्रीकान्त वर्मा– भारतीय ज्ञानपीठ काशी सन् 1967ई0

आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास — डा0 बच्चन सिंह– लोक भारती प्रकाशन इलाहाबाद, सन् 1994 ई0

रघुवीर सहाय का कवि–कर्म — सुरेश शर्मा, अरूणोदय– प्रकाशन शाहदरा, दिल्ली सन् 1992 ई0

रघुवीर सहाय — स0 विष्णु नागर/ असद जैदी, आधार– प्रकाशन, पचकूला हरियाणा, सन् 1993 ई0

हिन्दी साहित्य का इतिहास — स0 डा0 नगेन्द्र – नेशनल–पब्लिशिग हाउस, दिल्ली सन् 1994

साहित्यिक निबन्ध	डा0 गणपति चन्द्र गुप्त– लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद द्वादश सं0 सन् 1993 ई0
कवि कर्म और काव्य भाषा	डा0 परमानन्द श्रीवास्तव विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी सन् 1975ई0
नयी कविता का परिप्रेक्ष्य	डा0 परमानन्द श्रीवास्तव नीलाभ–प्रकाशन इलाहाबाद सन् 1968ई0
नये साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र .	मुक्तिबोध, राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली सन् 1971 ई0
आधुनिक साहित्य	मूल्य और मूल्याकन –डा0 निर्मला जैन राजकमल प्रकाशन दिल्ली, सन् 1980 ई0
भाषा और सवेदना	डा0 रामस्वरूप चतुर्वेदी लोक भारती प्रकाशन इलाहाबाद तृ0स0 सन् 1981 ई0
हिन्दी साहित्य और सवेदना का विकास	डा0 रामस्वरूप चतुर्वेदी लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद, सन् 1986 ई0
नयी कविताए एक साक्ष्य	डा0 रामस्वरूप चतुर्वेदी– लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद सन् 1976ई0
आधुनिक हिन्दी कविता मे बिम्ब विधान	केदारनाथ सिह – भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन दिल्ली सन् 1971 ई0
नये प्रतिमान पुराने निकष	लक्ष्मीकान्त वर्मा– ज्ञान पीठ प्रकाशन वाराणसी सन् 1966 ई0
नया काव्य–नये मूल्य	डा0 ललित शुक्ल, मैकमिलन आफ इण्डिया लि0 दिल्ली सन् 1975 ई0

काव्य भाषा पर तीन निबन्ध — स0 डा0 सत्य प्रकाश मिश्र, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद सन् 1989

आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ — डा0 नामवर सिह –लोक भारती प्रकाशन इलाहाबाद सन् 1990 ई0

कविता–समकालीन–कविता — डा0 सुन्दरलाल कथूरिया कुमार प्रकाशन नयी दिल्ली सन् 1984 ई0

कविता के नये प्रतिमान — डा0 नामवर सिह – राजकमल प्रकाशन–दिल्ली, सन् 1993 ई0

नयी कविता के सात अध्याय — डा0 देवेश ठाकुर सकल्प प्रकाशन, बम्बई द्वि0 स0 सन् 1992 ई0

समकालीन कविता का परिदृश्य — डा0 मदन गुलाटी, इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन दिल्ली सन् 1981 ई0

साठोत्तरी हिन्दी कविता — डा0 रतन कुमार पाण्डेय, अनिल प्रकाशन, इलाहाबाद सन् 1994 ई0

साठोत्तरी हिन्दी साहित्य का परिप्रेक्ष्य — संपादन हिन्दी विभाग पुणे, विद्यापीठ, पुणे, नेशनल पब्लिशिग हाउस दिल्ली सन् 1987

साठोत्तर हिन्दी कविता परिवर्तित दिशाए — विजय कुमार प्रकाशन संस्थान, दिल्ली सन् 1986

हिन्दी साहित्य . युग और प्रवृत्तियाँ — डा0 शिव कुमार शर्मा, अशोक प्रकाशन दिल्ली दशम् संस्करण, सन् 1986 ई0

नयी कविता में युगबोध — डा0 मंजू दूबे– अनुपम प्रकाशन पटना, सन् 1987 ई0

नयी कविता की भूमिका	डा0 प्रेमशंकर, नेशनल पब्लिशिग हाउस, दिल्ली सन् 1988 ई0
कविता से साक्षात्कार–मलयज	सभावना प्रकाशन हापुड़, सन् 1990 ई0
कविता और सघर्ष चेतना	डा0 यश गुलाटी, इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन दिल्ली सन् 1980 ई0
नयी कविता के प्रतिमान	लक्ष्मीकान्त वर्मा, भारतीय प्रेस प्रकाशन इलाहाबाद सवत् 2014
साहित्य के नये धरातल शंकाएं और दिशाए	केसरी कुमार राजकमल प्र0 दिल्ली
समकालीन अनुभव और कविता की रचना प्रक्रिया	डा0 हरदयाल जयश्री प्रकाशन नयी दिल्ली।
नयी कविता –विलायती सदर्भ	डा0 जगदीश कुमार, सन्मार्ग प्रकाशन दिल्ली प्र0सं0 1976 ई0
समकालीन हिन्दी कविता	डा0 विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, राजकमल प्रकाशन नयी दिल्ली।
हिन्दी काव्य भाषा की प्रवृत्तियाँ. नयी कविता	कैलाश चन्द्र भाटिया, तक्षशिला प्रकाशन असारी रोड, नयी दिल्ली।
सामाजिक विघटन और भारत	श्रीकृष्ण भट्ट– सन् 1974 ई0
सामाजिक विघटन और सुधार	सरला दुबे– सन् 1966 ई0
नयी कविता का आत्मसघर्ष तथा अन्य निबन्ध	गजानन माधव मुक्तिबोध– विश्वभारती प्रकाशन, नागपुर द्वि0स0 सन् 1977 ई0

नया सृजन नया बोध	कृष्णदत्त पालीवाल सन् 1974 ई0
नया हिन्दी काव्य	डा0 शिवकुमार मिश्र – सन् 1962 ई0
नयी कविता	डा0 कान्ति कुमार– मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी सन् 1972 ई0
नयी कविता–स्वरूप और समस्याए	डा0 जगदीश गुप्त, भारतीय ज्ञानपीठ सन् 1969 ई0
नयी कविता और अस्तित्ववाद	रामविलास शर्मा , सन् 1978 ई0
नयी कविता– नया मूल्याकन	डा0 प्रेम शंकर – सन् 1988 ई0
नयी कविता में मूल्य बोध	शशि सहगल सन् 1976 ई0
नयी कविता में वैयक्तिक चेतना	अवध नारायण त्रिपाठी सन् 1979 ई0
नयी कविता– सीमाए और समस्याए	गिरिजाकुमार माथुर, सन् 1966 ई0
समकालीन लम्बी कविता की पहचान	युद्धवीर धवन, सजीवन प्रकाशन, कुरूक्षेत्र सन् 1987 ई0
समकालीन साहित्य– एक नई दृष्टि	इन्द्रनाथ मदान,
हिन्दी नवलेखन	डा0 रामस्वरूप चतुर्वेदी
साहित्य और उसके स्थायी मूल्य	डा0 राम विलास शर्मा
आधुनिक हिन्दी काव्य और कवि.	सं0 रामचन्द्र तिवारी
आधुनिक हिन्दी काव्य मे अप्रस्तुत विधान	नरेन्द्र मोहन
स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी काव्य	रामगोपाल सिंह चौहान
नया हिन्दी काव्य और विवेचना	डा0 शम्भू नाथ चतुर्वेदी– नन्द किशोर एण्ड सन्स वाराणसी सन् 1964 ई0

सर्जन और भाषिक संरचना	डा0 रामस्वरूप चतुर्वेदी– लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद प्र0स0 सन् 1980 ई0
फिलहाल	अशोक बाजपेयी
नकेन	नलिन विलोचन शर्मा, केसरी कुमार और नरेश
भारत का स्वतत्रता सघर्ष	प्रो0 विपिन चन्द्र हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय दिल्ली विश्वविद्यालय दिल्ली, सन् 1990 ई0
आधुनिक भारत का इतिहास (एक नवीन मूल्यांकन)	बी0एल0 ग्रोवर, एस0चन्द्र एण्ड कम्पनी (प्रा0लि0) नयी दिल्ली
आधुनिक हिन्दी साहित्य की विचारधारा पर पाश्चात्य प्रभाव	हरिकृष्ण पुरोहित
स्वाधीनता कालीन हिन्दी साहित्य के जीवन मूल्य	डा0 रामगोपाल शर्मा दिनेश सन् 1973 ई0
व्यंग्य क्या, व्यग्य क्यों	संपादक श्याम सुन्दर घोष, सत्साहित्य प्रकाशन दिल्ली प्र0संस्करण सन् 1983 ई0
स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कविता मे व्यंग्य	डा0 शेर जग गर्ग साहित्य भारती दिल्ली प्र0संस्करण सन् 1973 ई0
हिन्दी काव्य में मार्क्सवादी चेतना	डा0 जनेश्वर वर्मा ग्रन्थम कानपुर द्वारा प्रकाशित प्र0 संस्करण सन् 1974 ई0
हिन्दी साहित्य मे हास्य और व्यंग्य	संपादक प्रेम नारायण टण्डन हिन्दी साहित्य भण्डार लखनऊ
आधुनिक परिवेश और नवलेखन	डा0 शिव प्रसाद सिह

आधुनिक हिन्दी काव्य मे राष्ट्रीय चेतना — डा0 शुभा लक्ष्मी, नचिकेता, प्रकाशन दिल्ली सन् 1986 ई0

सदाचार का ताबीज — हरिशंकर परसाई– भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन काशी तृ0 संस्करण, सन् 1975 ई0

कबीर — हजारी प्रसाद द्विवेदी– राजकमल प्र0दिल्ली सन् 1985 ई0

3 **हिन्दी शब्द कोश**

1 हिन्दी साहित्य कोश– भाग–1 सं0 धीरेन्द्र वर्मा, ज्ञान मण्डल लि0 वाराणसी द्वितीय संस्करण सन् 1986 ई0

2. हिन्दी साहित्य कोश भाग दो – डा0 शिव प्रसाद सिह

3 मानविकी पारिभाषिक कोश (साहित्य खण्ड) संपादक– डा0 नगेन्द्र

4 भारतीय साहित्य कोश – संपादक डा0 नगेन्द्र – नेशनल पब्लिशिग हाउस दिल्ली प्र0संस्करण सन् 1981 ई0

5 हिन्दी शब्द सागर – सपादक – डा0 श्याम सुन्दर दास सन् 1973 ई0

4 **अंग्रेजी ग्रन्थ**

1. My Picture of Free India- M.K.Gandhi
2. Metaphor and Symbol - D.E. James
3. The Poetic Image - C. Day Levis
4. Principles of Literary Criticism- I.A. Richards

5 **पत्र–पत्रिकाएं एवं अन्य सामग्री**

आजकल, वर्तमान साहित्य, नवभारत टाइम्स, जनसत्ता, साप्ताहिक हिन्दुस्तान, ब्राह्मण, आलोचना, प्रतीक, नयी कविता अक (1) से (8) तक, कल्पना, दस्तावेज, कुरूक्षेत्र, निकष, पल–प्रतिफल।

****

इति